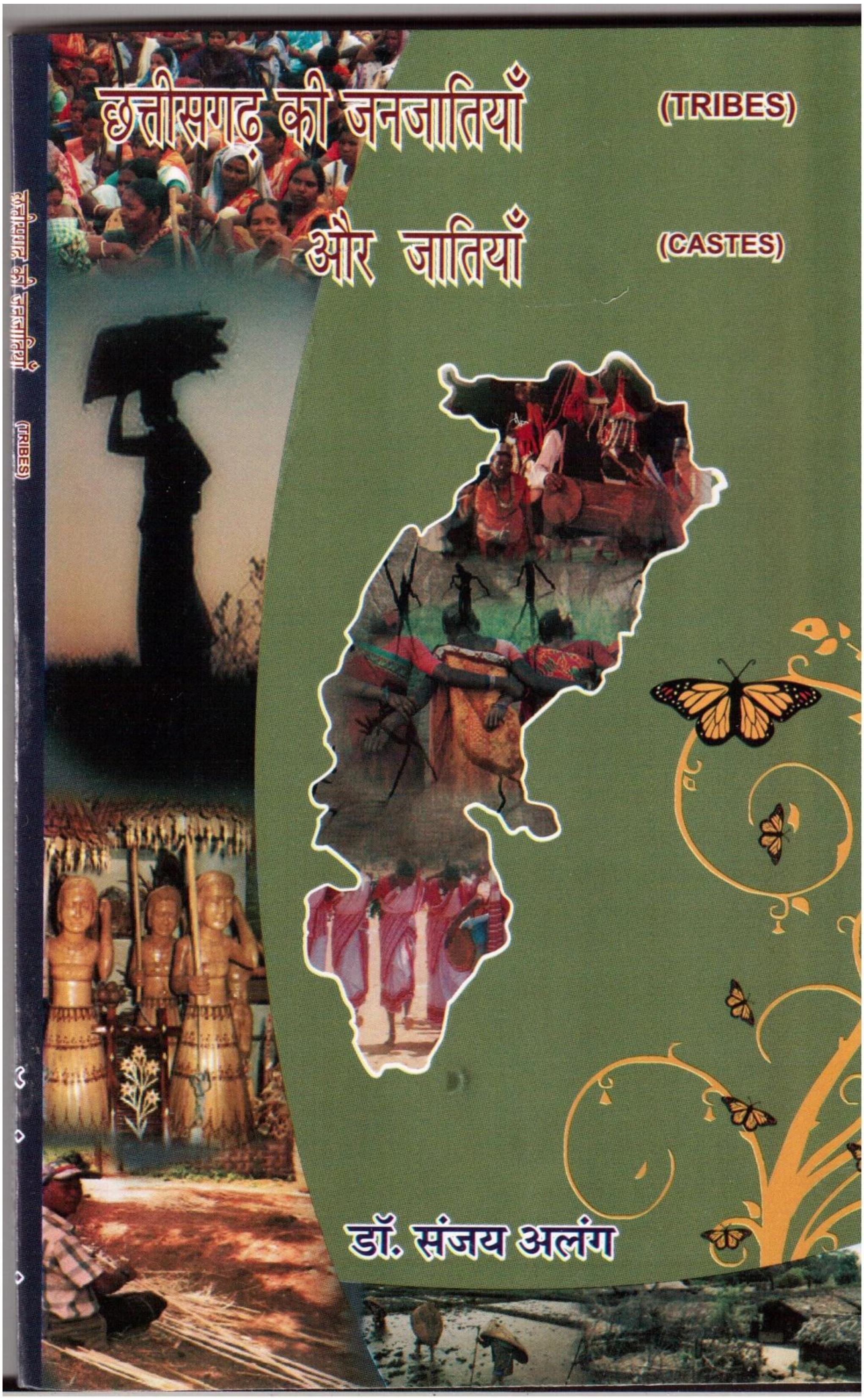
छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ
(TRIBES)
और जातियाँ
(CASTES)
डॉ. संजय अलंग

<u>छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ(Tribes) और जातियाँ(Castes)</u>

(ISBN: 978-81-89559-32-8, मानसी पब्लीकेशन,दिल्ली 6)

- डा.संजय अलंग

विषय सुचीः-

(एक) विशेष पिछड़ी जनजातियाँ

1. कमार
2. अबूझमाड़िया
3. पहाड़ी कोरवा
4. बिरहोर
5. बैगा

(दो) अन्य जनजातियाँ

1. अगरिया
2. भैना
3. भूमिया (भुईहार)
4. भतरा
5. भुंजिया
6. बियार
7. बिंझवार
8. धनवार
9. गदबा
10. गोंड़
11. हलबा
12. कंवर
13. खैरवार
14. खरिया
15. कोंध
16. कोल
17. माझी
18. मझवार
19. मुण्डा
20. नगेसिया
21. उराँव
22. पाव
23. परधान
24. पारधी
25. परजा
26. सौंता
27. सवरा

(तीन) अनुसूचित जातियाँ

1. औधेलिया
2. बसोर
3. बेलदार (सोनकर)
4. भंगी
5. चमार
6. चिकवा
7. देवार
8. डोम
9. गांड़ा
10. घसिया
11. महार

(चार) अन्य पिछ्ड़ा वर्ग की जातियाँ

1. अहीर (राउत)
2. बैरागी
3. बंजारा
4. बढ़ई
5. ढ़ीमर
6. दर्जी
7. धोबी
8. गड़रिया
9. कोष्टा (देवाँगन)
10. लोहार
11. सुनार
12. काछी
13. ठठेरा
14. कुम्हार
15. कुरमी
16. कलार
17. कोलता
18. नाई
19. पनका
20. तेली
21. रजवार

(पाँच) सामान्य जातियाँ

1. बनिया
2. ब्राह्मण
3. कायस्थ
4. मराठा या मराठी
5. पंजाबी
6. राजपूत
7. सिन्धी
8. तिब्बती

<u>छत्तीसगढ़ की</u>

<u>जनजातियाँ (Tribes) और जातियाँ (Castes)</u> -

-डा.संजय अलंग

भारत के छत्तीसगढ़ राज्य में कई जातियाँ निवास करती हैं। भारत में और उसी अनुक्रम में राज्य में भी जातियाँ, संगठनात्मक रूप से, सुदृढ़ हैं। यह भारतीय सामाजिक संरचना का विशिष्ठ रूप है। इनके उल्लेख और अध्ययन के बिना कोई भी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, एतिहासिक आदि अध्ययन अधूरा, सतही और अपूर्ण है। भारत में किसी भी क्षेत्र के विकास में जातियों की अहम भूमिका है और इसमें छत्तीसगढ़ का विकास भी सम्मलित है।

भारत में न्यूनतम तेरह **<u>नस्ल या मानव समूहों</u>** के आने के स्पष्ट प्रमाण हैं। अतः इनका प्रभाव छत्तीसगढ़ पर पड़ना स्वभाविक है, क्योंकि यह क्षेत्र भारत के उत्तरापथ और दक्षिणापथ अर्था संस्क्रितियों के सन्धि स्थल पर है। यह तेरह नस्ल या मानव समूह यह हैं:-

नीग्रो, औष्ट्रीक या आग्नेय (सम्भवतः इन्हें ही आर्यों ने निषाद कहा, जिसमें कोल, भील आदि थे।), द्रविड़ या द्राविड़ (सम्भवतः इन्हें ही आर्यो ने दास कहा।), आर्य, ग्रीक या यूनानी, यूची, शक, आभीर, हूण, मंगोल (सम्भवतः इन्हें ही आर्यो ने किरात कहा।), गैर मुस्लिम तुर्क, मुस्लिम और यूरोपीय इसाई।

मानव नस्ल अध्ययन Anthropometry अर्थात मानुषमिति और Anthropology अर्थात मानवशास्त्र या जनविज्ञान के तहत आता है।

Anthropology अर्थात मानवशास्त्र या जनविज्ञान में मानव समुदाय को तीन प्रमुख नस्लों में विभक्त किया गया है। यह हैं:-

(क) काले अर्थात इथोपियन, (ख) पीले अर्थात मंगोल और (ग) गोरे अर्थात काकेशियन।

अब इथोपिया (राष्ट्र) पूर्वी-उत्तर अफ्रीका, मंगोलिया (राष्ट्र) एशिया में रूस-चीन के मध्य और कौकेसस (पर्वत माला/ रूस-अरमेनिया-जार्जिया-अज़रबैजान-चेचेन्या में विस्तारित/ आख्यानिक कोहेकाफ क्षेत्र, इसी से 'कोहेकाफ की परियाँ या हूर' मुहावरा बना) एशिया-यूरोप अर्थात ब्लैक और कैसपियन सागर के मध्य का भौगोलिक क्षेत्र है।

मानव शास्त्र की दृष्टि से, वृहत भारतीय क्षेत्र के, मानव समूहों को छः मानव समूहों में विभक्त किया जाता है।

उक्त छ; में प्रथम दो समूह प्राचीनतम आने वाले लोगों के हैं। यह हैं- निग्रिटो और प्रोटो-आस्ट्रेलाइड़ या आग्नेय। यह दोनों समूह जनजातियों के हैं। इन्हें प्राचीनतम होने के कारण आदिवासी कहा गया। इन्हें काबीले भी कहा जाता है।

भारतीय भूमि पर सबसे प्रथम आने लोग नीग्रो ही माने गए हैं। इस समूह को निग्रिटो कहा गया। निग्रिटो समूह सर्वाधिक प्राचीन और अत्यल्प समूह है, जिसमें श्रावणकोर के कादन और पलियन, राजमहल पहाड़ी के बागड़ी, दक्षिण भारत की कुछ अन्य जनजातियाँ और अण्ड़मान और निकोबार द्वीप समूह की जनजातियाँ निग्रिटो के समाप्त प्राय होते अवशेष के बचे समूह हैं। इनका आगमन अफ्रीका अर्थात भारत के पश्चिम से अरब-ईरान होकर हुआ। यह लोग आस्ट्रेलिया, मलाया (मलेशिया आदि क्षेत्र), फिलिपींस, न्युगिनी, अंण्डमान आदि भारतीय मुख्य भूमि से ही गए। भारत में प्रोटो-आस्ट्रेलाइड़ या आग्नेय या लोगों के आगमन पर यह लोग लगभग नष्त प्राय हो गए। यह लोग कृषि नहीं करते थे और शिकार और पेड़ो या वन

से मिलने वाले स्वभाविक आहार पर निर्भर थे। इनका काल ईसा पूर्व 10 से 7 हजार वर्षों पूर्व का था। इनकी भाषा भी समाप्त प्राय हो गई। इसका नमूना मात्र अण्ड्मान में है। आर्य लोग नीग्रो के अत्यधिक बाद आए। क्योंकि भारतीय सभ्यता आर्यो से ही स्थिर हुई। अतः भारतीय सभ्यता और संस्कृति में निग्रिटो तत्व क्या हैं, इसे जानना अत्यधिक कठिन है। इसे साहसी समूह माना जाता है। यह लोग ही भारत से नावों पर सूदूर और अनजान आस्ट्रेलिया तक जा पहूँचे। इनकी भाषा से एक शब्द बादुड़ (पूर्वी भारत में चमगादड़ हेतु प्रयुक्त) को आर्य भाषा में चिन्हित किया गया है।

जनजातियों में वृहत्म समूह प्रोटो-आस्ट्रेलाइड़ या आग्नेय या औष्ट्रिक का है, जिसमें अधिकाँश जनजातिय समूह आ जाते हैं। बाद में इन हेतु मुण्ड़ या मुण्ड़ा और कोल या कोलयारिन शब्द भी सृजित हुए, जिसमें कई जनजातियाँ आईं। औष्ट्रिक या आग्नेय शब्द दिशा के आग्नेय या अग्नि कोण अर्थात पूर्व-दक्षिण में इनके पाए जाने से बना। इनका विस्तार वृहत्तर अविभाजित पश्चिम भारत से मड़ागास्कर और प्रशाँत अर्थात पैसेफिक सागर के ईस्टर द्वीप तक भी है। यह लोग पूर्व और पश्चिम से होकार कई बार गुजरे। स्वभाविक रूप से नीग्रो और मंगोल लोगों से सम्बन्ध हुए। इनके वंशज सभी ओर हुए। कोल और मुन्ड़ा जाति समूह के लोग; असम-म्यानमार या बर्मा-हिन्दचीन या पूर्व एशिया की मौन-खमेर जाति समूह के लोग; निकोबार-इण्ड़ोनेशिया या हिन्दएशिया-मलेशिया-पोलोनेशिया आदि के कई कृष्ण या काली देह वाले जाति समूह इन्ही के वंशज हैं। न सिर्फ यह लोग वरन कथित रूप से अंत्यज जातियों के कुछ समूह भी आग्नेय लोगों से निकले। जैसे- ड़ोम, भुइयाँ, मुसहार, चाँड़ाल आदि। चाँड़ालों की पृथ्क भाषा का उल्लेख बुद्ध के काल तक आता है। यह मत भी दिया जाता है कि, यह आग्नेय जातियाँ द्रविड़ लोगो से उत्पन्न हैं। आग्नेय इस भू-भाग पर शासक हुए। अतः राज्याभिषक, अनुष्ठान आदि के कई प्रसंग और परम्पराँएँ इस नस्ल की किसी न किसी जनजाति से जुड़ी और अब तक हैं। कोल, मुण्ड़ा और मौन-खमेर भाषाएँ औष्ट्रिक भाषाएँ हैं। आर्य भाषा में भी इसका प्रभाव है। वन, जीव आदि से सम्बन्धित अधिकाँश शब्द इनकी भाषा से ही आर्य भाषाओं में आए। जब आर्य आए तब यह लोग सिन्धू घाटी में भी थे और द्रविड़ लोगों के पड़ोसी थे। तब इन्हें निषाद कहा गया। इन्हें ही कोल और भील भी कहा गया। चिपटी नाक और काले रंग की हंसी उड़ाई गई। ईसा के 1,500 वर्षों पूर्व ही बहुत से आग्नेय लोग आर्य हो गए।

उक्त दो समूहों के लोगों को शबर कहा गया। प्रोटो-आस्ट्रेलाइड़ या आग्नेय या औष्ट्रिक लोगों को निषाद कहा गया। इनके हेतु कोल औरा भील शब्द भी प्रयुक्त हुए। अतः आदिवासी ही शबर और निषाद थे।

प्रोटो-आस्ट्रेलाइड़ या आग्नेय या औष्ट्रिक अन्धविश्वास के साथ भीरूता वाले माने गए हैं, जो आनन्दी भी रहे। यह लोग संचयी नहीं हुए। बसने को प्रेरित नहीं हुए। द्रविड़ और आर्य आगमन पर भी वनों में खिसक गए।

तीसरा समूह भी जनजातिय वर्ग में ही आता है, पर यह लोग उक्त दो के अतिरिक्त द्रविड़ और आर्यो के आगमन के उपराँत आए। हालाँकि किरात नाम का प्रयोग प्रारम्भिक आर्य साहित्य में मिलने और सिन्धू सभ्यता में उनके चिन्ह मिलने से यह भी अनुमान होता है कि, वे इनसे पहले आए। ऐसे में यह तीनों समूह प्राचीनत हो जाएँगे। यह समूह मंगोलाइड़ कहलाता है। उत्तर-पूर्व में मंगोलाइड समूह का संकेन्द्रण है। हालाँकि यह लोग मध्य भाग में भी हैं। यह लोग ईसा से ड़ेढ़-दो हजार वर्षों पूर्व इस क्षेत्र में आए। इस समूह के लोगों को किरात कहा गया। सामान्य बोलचाल में चीनी।

इन तीनों समूहों अर्थात जनजातीय समूह में छोटा कद, चौड़ी और चपटी नाक, घुँघराले बाल आदि शारीरिक लक्षण सामान्य हैं। कुछ मंगोलाइड़ समूहों को छोड़ शेष दोनों समूहों का देह रंग काला है।

अतः उक्त तीन से सामान्य बोलचाल के दो प्रमुख समूह बनते हैं। आदिवासी और चीनी या मंगोल।

चौथा समूह भूमध्य सागरीय या मेड़िटेरियन लोगों का है। इन्हें सामान्यतः द्रविड़ कहा जाता है। अब यह लोग अधिकाँशत: विन्ध्य या नर्मदा पार अर्थात दक्षिण में हैं। यह लोग आर्यो के पूर्व आए। इनका भी देह रंग काला, कद छोटा, मस्तक लम्बा, केश घने-कड़े-काले और कुछ घुंघराले तथा नाक खड़ी और चौड़ी है। इस समूह के लोगों को दास और असुर कहा गया। सामान्य बोलचाल में मद्रासी। दक्षिण की तमिल, मलयाली, कन्नड़, तेलगू, पश्चिम पाकिस्तान के बलूचिस्तान की ब्राहुई और बाँग्लादेश और मध्य, पश्चिम और

पूर्व भारत की उराँव जनजाति (प्रोटो-आस्ट्रायड़) की कुड़ुख भाषा इस समूह की है। अंग्रेजों ने जब फूट ड़ालो और राज करो को नीति के रूप में अंगीकृत किया तब उन्होंने आर्य और द्रविड़ को पृथ्क-पृथ्क नस्ल चिन्हित कर अलग किया। तब तक आर्य और द्रविड़ एक ही समूह अर्थात भारतीय माने जाते थे। द्रविड़ भौगोलिक संज्ञा थी। उनका धर्म और संस्कृति एक थी। आर्य हिन्दू दर्शन पक्ष का अधिकाँश भाग यहीं से आया। सामान्यतः यह स्थापित किया गया है कि, लगभग 3,500 ईसा पूर्व यह लोग मैड़ेटेरियन अर्थात भूमध्य सागर से भारत की ओर चले। रास्ते में एक शाखा ईराक-ईरान में रह गई और सुमेर सभ्यता की जनक हुई। रास्ते में एक टोली बलूचिस्तान में छूटी और ब्रहुई उनकी भाषा हुई। सिन्धू और सुमेर सभ्यता में कई सामांताएँ पाई गई हैं। सिन्धू सभ्यता को द्रविड़ो से जोड़ा जाता है। अतः इसे प्राचीन विश्व की सुसभ्य नस्ल माना गया है। इन्होंने ही कृषि विकास, सिंचाई प्रणाली, इस हेतु बाँध निर्माण नगर नियोजन, नगरीय सभ्यता, बड़े भवन और मन्दिरों का निर्माण, भण्डारण, समाज में मातृमूलक व्यवस्था की स्थापना, शैव मत, शिव और लिंग भक्ति, शाक्त मत, भक्ति वाद आदि को भारतीय समाज में स्थापित और विकसित किया। सभ्यता में यह लोग आगे आने वाले आर्य लोगों से भी आगे थे। इसका कारण यह माना जाता है कि, आर्य लगातार कई सदियों तक एक जगह जम कर नहीं रहते थे। आर्य शब्द ऋ धातु से बना है, जिसका आशय घुमक्कड़ी या गत्यात्मकता से ही है।

द्रविड़ों ने ग्राम और नगर बसाए। आर्यों ने पुर और नगरी नाश करने के कारण अपने प्रमुख देव इन्द्र को पुरन्दर ही कहा।

पाँचवा समूह पश्चिम वृत्त-कपालक अर्थात वेस्टर्न ब्रेसीशिफाल्स और छठा नार्डिक आर्यों का है।

आर्य समूह प्रमुख समूह है। आर्यों का कद लम्बा, वर्ण गोरा पर गेहुँआ, केश घने, मस्तक लम्बी, नाक पतली और नुकीली है। आर्य जब आए तब गोरे ही थे। यह वृहत्तर और अविभाजित भारत का प्रमुख समूह हुआ। यह लोग पारक्रमी थे। मेघा, वीरता और भावुकता को भी इनसे जोड़ा गया।

छत्तीसगढ़ के जनजातियों और जातियों के वर्णन को निम्नांकित भागों में बाँटा जा सकता है।

1. विशेष पिछ्ड़ी जनजातियाँ,
2. अन्य अनुसूचित जनजातियाँ,
3. अनुसूचित जातियाँ,
4. अन्य पिछ्ड़ा वर्ग में सम्मलित जातियाँ और
5. सामान्य जातियाँ।

इनके तहत आने वाली जातियों और जनजातियों का वर्णन आगामी पृष्ठों में, पृथ्क-पृथ्क, है। छत्तीसगढ़ में जनजातीय वर्ग की बहुलता है। स्वभाविक है कि, उनका वर्णन पहले किया जाए तथा तदुपरांत अन्य और सामान्य जातियों का। सर्वप्रथम जनजातियों पर ही चर्चा की जा रही है। यह उक्त प्रथम दो समूहों में हैं।

जनजातियों पर चर्चा प्रारम्भ करने के पूर्व **कुछ सामान्य और कामन जनजातिय तत्वों** का वर्णन अधोलिखित है, जिससे दोहराव से बचा जा सके।

सभी जनजातियों (विशेष पिछ्ड़ी और अन्य) की कुछ सामान्य **विवाह प्रथाएँ** और **आभूषण** यहाँ उल्लेखित हैं, जिससे आगे दोहराव नहीं हो।

छत्तीसगढ़ की जनजातियों में प्रचलित जनजातिय विवाह:-

पैठुल विवाह :- अगरिया जनजाति में इसे **ढूकू** तथा बैगा जनजाति में पैढू कहा जाता है । बस्तर सँभाग की जनजातियों में यह ज्यादा लोकप्रिय है । इसमें कन्या अपनी पसंद के लड़के के घर घुस जाती है । जिसे लड़के की स्वीकृति पर परिवार के बिरोध के उपराँत भी सामाजिक स्वीकृति मिलती है । कोरवा जनजाति में भी ढुकु विवाह होता है ।

लमसेना :- यह सेवा विवाह का रूप है और छत्तीसगढ़ की सभी जनजातियों में इसे सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है । इस विवाह में विवाह योग्य युवक को कन्या के घर जाकर सामान्यतः एक से दो वर्ष या कभी इससे अधिक समय तक अपनी शारीरिक क्षमता का परिचय देना पड़ता है । अपने भावी ससुराल में परिवार के सदस्य की तरह मेहनत करते हुए उसे कन्या के साथ पति की तरह रहने की स्वतंत्रता रहती है, किंतु विवाह का निर्णय संतुष्टि के पश्चात ही लिया जाता है। बस्तर में इस तरह के विवाह कभी-कभी, एक या अधिक बच्चों के जन्म के उपराँत भी होता है । इस तरह का विवाह पद्धति कंवर,गोंड,भील, मारिया,माड़िया बिंझवार, अगरिया,कोरवा आदि जनजातियों में अपनाया जाता है । कंवर इसे **घरजन** और बिंझवार **घरजिया** कहते है ।

गुरांवटः- यह एक प्रचलित विवाह पद्धति है, जो संपूर्ण छत्तीसगढ़ में जन जातीय के साथ छत्तीसगढ़ी गैर-जनजातिय जाति समूहों द्वारा भी अपनाई जाता है । इसमें दो परिवारों के बीच दो विवाह एक साथ संपन्न होते हैं , जिसमें दोनो परिवार की लड़कियाँ एक-दूसरे के लड़कों के लिए वधु के रूप में स्वीकार की जाती हैं। इसे बिरहारे जनजाति में **गोलत** विवाह भी कहा जाता है।

भगेली:- भगेली विवाह का प्रचलन गोंड़ जनजाति में हैं, यह लड़के और लड़की की सहमति से होता है। यह भाग कर किए जाने वाला प्रेम विवाह है। लड़की के मां-बाप के राजी नहीं होने की स्थिति में लड़की अपने घर से भागकर, रात्रि में, अपने प्रेमी के घर आ जाती है और छपरी के नीचे आकर खड़ी हो जाती है, तब लड़का एक लोटा पानी अपने घर के छ्पपर पर डालता है। जिसका पानी लड़की अपने सिर पर लेती है । इसके पश्चात लड़के की माँ उसे घर के अंदर ले आती है । फिर गाँव का मुखिया या प्रधान लड़की को अपनी जिम्मेदारी में ले लेता है और लड़की के घर उसने भगेली होने की सूचना देता है। फिर रात्रि में मड़वा गाड़कर भाँवर कराया जाता है, अकसर लड़की के माता-पिता अन्न और भेंट पाकर राजी हो जाते है।

चढ़ विवाहः- इस तरह के विवाह में दुल्हा बारात लेकर दुल्हन के घर जाता है और विधि-विधान तथा परंपरागत तरीके से विवह रस्म को पूर्ण करता है। इसके पश्चात वह दुल्हन को बिदा कराकर अपने साथ ले आता है। छत्तीसगढ़ की जनजातियों में यह विवाह की सबसे प्रचलित व्यवस्था है।

पठोनी विवाह :- इस विवाह में लड़की बारात लेकर लड़के के घर आती है और वहाँ ही मंडप में विवाह संपन्न होता है। तदुपरान्त वह दुल्हे को विदाकरा कर के अपने घर ले जाती है। इस तरह का विवाह छत्तीसगढ़ के अत्यन्त अल्प रूप में गोंड जनजाति में देखने को मिलता है।

उढ़रिया:- इस विवाह को पलायन विवाह कहना ज्यादा उचित है। इसे **उधरिया** भी कहा जाता है। इस तरह का विवाह भी प्रायः सभी जनजातियों में होता है। यह भी प्रेम विवाह है। जिसमें लड़का और लड़की एक दूसरे को पसंद कर लेते है। माता-पिता की अनिच्छा के पश्चात भी अपने सहेली और मित्रों के साथ किसी मेला-मड़ई या बाजार में मिलते हैं और वहीं से एक साथ हो किसी रिश्तेदार के यहां जा पहुंचते हैं । जहाँ उनके आंगन में डाली गाड़कर अस्थाई विवाह करा दिया जाता है। बाद में पंचों व रिश्तेदारों के प्रयास से मां-बाप को राजी कराकर स्थायी विवाह कराया जाता है।

छत्तीसगढ़ के सभी जनजातियों के प्रमुख आभूषण:-

लुरकी:- यह कानों में पहना जाता है। सामान्यतः पीतल, चांदी, ताँबा आदि धातुओं से बना होता है। इसे कर्णफूल और खिनवा भी कहा जाता है।

करधनः- चाँदी, गिलट या नकली चाँदी से बना यह आभूषण छत्तीसगढ़ के प्रायः सभी जनजाति की महिलाओं द्वारा कमर में पहना जाने वाला आभूषण है। यह अपेक्षाकृत भारी होता है। इसे **करधनी** भी कहते है।

सूतियाः- गले में पहना जाने वाला यह आभूषण एल्यूमिनियम, गिलट, चाँदी, पीतल आदि का बना होता है। सामान्यतः यह ठोस और गोलाई लिए होता है।

पैरीः पैर में पहना जाता है और गिलट या चांदी का बना होता है। इसे **पैरपट्टी, तोड़ा** और **सांटी** भी कहा जाता है। कहीं-कहीं इसे **लच्छा** भी कहते हैं।

बांहूटा :- बाँह में, स्त्री और पुरूष दोनों द्वारा पहना जाने वाला यह आभूषण सामान्यतः चाँदी या गिलट का होता है। इसे भैना जनजाति में **पहुंची** भी कहा जाता है। भुंजिया इसे **बनौरिया** कहते है।

बिछियां:- पैर की उंगलियों में पहना जाता है और चांदी का होता है। इस का एक अन्य नाम **चुटकी** है, जो बैगा जनजाति में अपनाया जाता है।

ऐंठीः- यह कलाई में पहना जाने वाला आभूषण है, जो कि चांदी, गिलट आदि से बनाया जाता है। इसे **ककना** और **गुलेठा** भी कहा जाता है।

बन्धाः- यह गले में पहने जाने वाली यह सिक्कों की माला है, जो पुराने चाँदी के सिक्कों से बनाई जाती है।

फुलीः- यह नाक में पहना जाता है। यह चाँदी, पीतल या सोने का होता है। इसे **लौंग** भी कहा जाता है।

धमेल :- गले में पहना जानेवाला यह आभूषण चांदी, पीतल अथवा गिलट का होता है। इसे **सरिया** और **हंसली** भी कहा जाता है।

नागकोरीः- यह कलाई में पहना जाता है।

खांचनीः- यह सिर के बालों में लगाया जाता है। बस्तर के मुरिया, माड़िया आदिवासी इसे लकड़ी से तैयार करते हैं। यह चाँदी या गिलट का भी बनता है। कहीं-कहीं पत्थर भी प्रयोग किया जाता है। अब बस्तर में प्लास्टिक कंघी का भी इस्तेमाल इस आभूषण के रूप में होता है। इसे **ककवा** भी कहा जाता है।

मुंदरी :- यह हाथ में उँगलियों में पहना जाने वाला धातु निर्मित आभूषण है। बैगा जनजाति की युवतियां इसे **चुटकी** भी कहती हैं।

सुर्डा या सुर्रा- यह गले में पहना जाता है । गिलट या चांदी निर्मित यह आभूषण छत्तीसगढ़ के आदिवासियों की एक विशिष्ट पहचान है।

छत्तीसगढ़ में सबसे प्राचीन काल से निवासरत अर्थात प्राचीनतम जनजाति बैगा जनजाति को माना जाता है। छत्तीसगढ़ में छोटा (या चुटिया) नागपुर क्षेत्र से सर्वप्रथम बैगाओं ने प्रवेश किया था और सरगुजा के इसी पठारी क्षेत्र में बसी थी।

2001 की जनगणना अनुसार अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या और प्रतिशत की दृष्टि से छत्तीसगढ़ में सर्वाधिक लोग बस्तर सँभाग में है, जहाँ कुल जनसंख्या का 67.29% अनुसूचित जनजाति का है। 2010 तक निर्मित जिलों में जिलेवार जनसंख्या में जनजातीय प्रतिशत की दृष्टि से सर्वाधिक, 77.58%, दक्षिण बस्तर (दंतेवाड़ा) में जनजातिय लोग हैं और जनजातियों की संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक जनजातिय लोग सरगुजा जिले में है, जो जनसंख्या का 55.4% हैं। राज्य में जनसंख्या प्रतिशत की दृष्टि से सबसे कम अनुसूचित जनजाति के लोग दुर्ग जिले में हैं। यहाँ यह प्रतिशत मात्र 12.43 है। संख्या की दृष्टि से सबसे कम जनजाति वाला जिला कवर्धा है।

जनजाति व्यक्तिवादी नहीं होती हैं। वे समाजोन्मुखी होते हैं। एक निश्चित भू-भाग की परिधि में रहने और अपने जीवन-यापन के कार्यो को समाज के अन्य लोगों के द्वारा सहभागिता के आधार पर करने के कारण जनजाति में सामुदायिक भावना पाई जाति है। ये परस्पर सहयोग से जीने के अभ्यस्त होते हैं। शिकार करना, जंगलों में प्रवेश करना, खेती करना, सिंचाई करना, मछली मारना आदि सभी कार्य ग्राम के सभी लोग या अधिकत्तर लोग मिलकर करते है।

सभी जनजातियों में टोटेम पाए जाते हैं। अंग्रेजी शब्द टोटेम का अर्थ है- विश्वास। ट्राइब, संगठित जनजाति या उसके गोत्र (गोष्ठी अर्थात समूह)[1] किसी भौतिक पदार्थ, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, फूल-फल, कीड़े-मकोड़े, जल-जीव आदि से अपना एक रहस्यमय संबंध होने का दावा करते हैं। वे ही ट्राइव या गोष्ठी नाम से

[1] गोष्ठी शब्द संस्कृत के गाय को सम्बोधित शब्द गौ से बना है। इस अनुक्रम में गोष्ठि का अर्थ समूह या झुड है, जो गाय के झुड हेतु व्यवहारित होता था।

जाने पहचाने जाते हैं। उनपर विश्वास या टोटेम मानते है।

जनजाति टाबू भी मानते हैं। टब्बू (Taboo) का अर्थ निषेध से है। इसके कारण इसका अर्थ धार्मिक या व्यवहारिक निषेध, व्यवहार में नहीं लाने, बध नहीं करने, व्यवहार में नहीं लाने, खाने में व्यवहृत नहीं करने आदि से होता है। जनजाति में प्रत्येक गोष्ठी (गोत्र) या समूह का एक निषिद्ध पदार्थ होता है। प्रत्येक जनजाति को किसी विशिष्ट नाम से जाना जाता है। जैसे बैगा, कोल, गोंड़, उराँव आदि।

जनजाति का एक निश्चित भू-भाग होता है। उनका एक निर्दिष्ट परम्परागत निवास भूमि होती है। किन्तु इस सम्बन्ध में विद्वानों के विचारों में भिन्नता है। डा. रिचर्ड का मत है कि, जनजाति के लिए एक निश्चित स्थाई निवास भूमि होना आवश्यक नहीं है। कई जनजातियाँ घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करती है। किन्तु डा. मजूमदार का मत है कि, घुमक्कड़ जनजातियाँ एक निश्चित भू-भाग यानि एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में ही घूमती है, सभी स्थानों पर नहीं। वैसे छत्तीसगढ़ क्षेत्र में बसने वाली अधिकत्तर जनजातियाँ इस क्षेत्र की स्थाई निवासी हो गई हैं। घुमक्कड़ जातियाँ भी इस क्षेत्र से बाहर नहीं निकली।

प्रत्येक जनजाति की अपनी स्थानिय विशिष्ठ भाषा होती है, जिसका प्रयोग उस जनजाति के सभी लोग करते हैं। जनजाति भाषा का हस्तान्तरण प्रमुख रूप से मौखिक रूप से होता है। इन जातियों की भाषाओं को लिपिबद्ध करने का प्रयास जनजातियों ने कम किया है। अतः इनकी लिपि नहीं मिलती। हाल-फिलहाल में लिपि तैयार करने की चेष्टा की गई है। द्रविड़ एवं आस्ट्रिक संस्कृति बाहरी आर्य हिन्दू-संस्कृति से भी प्रभावित हुई है। पर साथ ही हिन्दू धर्म भी इन संस्कृतियों से प्रभावित हुआ। केला, सुपाड़ी, नारियल, ईख और सिंदूर मूलत: द्रविड़ संस्कृति की नैवेद्य है। इसे हिन्दू संस्कृति ने अपनाया है।[2]

हिन्दू धर्म के विश्वास और धारणाएँ भी यहाँ आकर मिश्रित होने वाले कई विश्वासों और धारणाओं से मिल कर बनी, न की किसी एक विश्वास और धारणा पर। हिन्दू धर्म में आस्थाओं का विकास भी जातियों, नस्लों आदि के मिलन का सुस्पष्ट प्रमाण है। डा. भण्डारकर का मत है कि, हिन्दुओं में शिव भक्ति द्रविड़ों से आई और इसके विकास में आस्ट्रिक और नीग्रो संस्कृतियों ने भी योग दिया। लिंग पूजा आर्य आगमन के पूर्व से प्रचलित थी और इसी कारण से उन्होंने यहाँ पहले से रह रहे लोगों को शिश्नदेवा पुकारा। द्रविड़ों से ही शिव-उमा (पार्वती), कार्तिकेय (सुब्राह्मणयम), गणेश आदि की पूजा भी हिन्दुओं में आई। गणेश की कल्पना शुद्ध भारतीय है।

ऋग्वेद में विष्णु का उल्लेख सूर्य के लिए हुआ है। प्राचीन आर्यों में इन्द्र प्रमुख देवता थे, इसलिए अमरकोष (संस्कृत का प्रख्यात शब्दकोष) में विष्णु को उपेन्द्र इन्द्रावरज कहा गया। अब हिन्दू वैष्णव मत का प्रमुख पुराण श्रीमद्भागवत है। कृष्ण का इन्द्र विरोध विख्यात है। बाद में विष्णु (या वासुदेव) राम द्वारा तदुपरांत कृष्ण द्वारा प्रतिस्थापित हुए। रामकथा का रामयण और रामचरित मानस सर्वोच्च ग्रंथ बना। इनमें भक्ति की परम्परा द्रविड़ों से आई। इसमें कथा, किंवन्दंतियों का अपार भण्ड़ार हिन्दू पुराणों से आया।

आग्नेय लोगों से हिन्दुओं की पवित्रतम नदी गंगा को गंगा संज्ञा मिली, जो कि कियांग, कंग या घंघ शब्द से बनी थी। इन्हीं से चन्द्र गणना की तिथी, चावल की कृषि, पुर्नजन्म का सिद्धांत, पत्थर के खण्ड़ को देवता मानने की प्रथा आदि बातें हिन्दूओं में आईं। इसमें देवर-देवरानी और जेठ-जिठानी की प्रथा, सिन्दूर का प्रयोग, धार्मिक अनुष्ठानों में नारियल और पान के पत्ते का उपयोग आदि को भी जोड़ा जा सकता है।

हिन्दूओं में आर्यों से अधिकाँश दर्शन और विचार आए। जनता के दैनिक जीवन के कार्य और अनुष्ठान द्रविड़ और आग्नेय लोगों से आए। पूजा द्रविड़ों और आस्ट्रिक लोगों से आई तथा यज्ञ आर्यों से, पर आश्चर्यजनक रूप से यज्ञ पुरोहितों और पण्ड़ितों तक सीमित रह गया और पूजा घर-घर पहुँच गई।

---

[2] http://jharkhandrkm.blogspot.com/2010/06/blog-post.html

हिन्दूओं के धर्म ग्रंथों या धार्मिक विचारों के, प्रधानतः, दो विभाग हैं। एक वेद सम्मत है, जो यज्ञों पर बल देता है और हवन आदि के कर्मों को धर्म का प्रमुख कार्य मानता है। द्वितीय विभाग भक्ति, योग और तंत्र के विषय को समाहित करता है। दोनों विभागों को क्रमशः निगम और आगम कहा जाता है। निगम विचार वेदों से बन्धा है और मुख्यतः पण्ड़ितों के पास है। यह आर्यों की देन है। आगम विचार जनता के आचार और अनुष्ठानों का विचार है। इस विचार के कारण ही 33 वैदिक देवता 33 करोड़ बना दिए गए। आर्य और अर्येत्तर समुदायों में इतना मिलन हुआ कि कुछ अभी अन्य या अलग नहीं रहा। यहाँ तक कि मनु ने ग्राम देव/देवी पूजकों को पतित कहा था, पर आज ब्राह्मण भी ग्राम देवता/देवी की पूजा करते हैं और भूत-प्रेत को भी इस स्तर पर ले आए हैं। आरम्भ में इनके पुजा स्थानीय पुजारी करते थे, जो ब्राह्मणों द्वारा शूद्र माने जाते थे, परंतु आय के कारण ब्राह्मणों ने उन्हें अपदस्थ कर दिया। आर्य भी नदी और वृक्ष पूजने लगे। होली और बसंतोत्सव जैसे गैरआर्य त्योहार और उत्सव मनाने लगे।

हिन्दूओं में जिन देवताओं, तीर्थों, उत्सवों आदि की मान्यता है, उनमें से अधिकाँश आर्येत्तर मूल के हैं।

छत्तीसगढ़ की जनजातीय **भाषाओं** का चिन्हाँकन और उन पर कार्य का प्रारम्भ 1820 से हुआ। छतीसगढ़ में 93 भाषाओं (बोली, उपबोली आदि सहित) चिन्हित किया जा चुका है।

छत्तीसगढ़ में चार भाषा समूह हैं। इनमें तीन समूह पूर्व से हैं।[3] चौथा समूह विगत शताब्दी में ही आया। जो निम्नांकित हैं।:-

(क) मुण्डाः-

इस क्षेत्र में, मुण्डा भाषा परिवार की भाषाओं की उपस्थिति, को प्राचीनतम माना जा सकता है। इसके विकास को निम्नांकित चार्ट से समझा जा सकता है।

[3] इन तीन पर चर्चा हीरा लाल कृत्त छत्तीसगढ़ ज्ञानकोष के आधार पर।

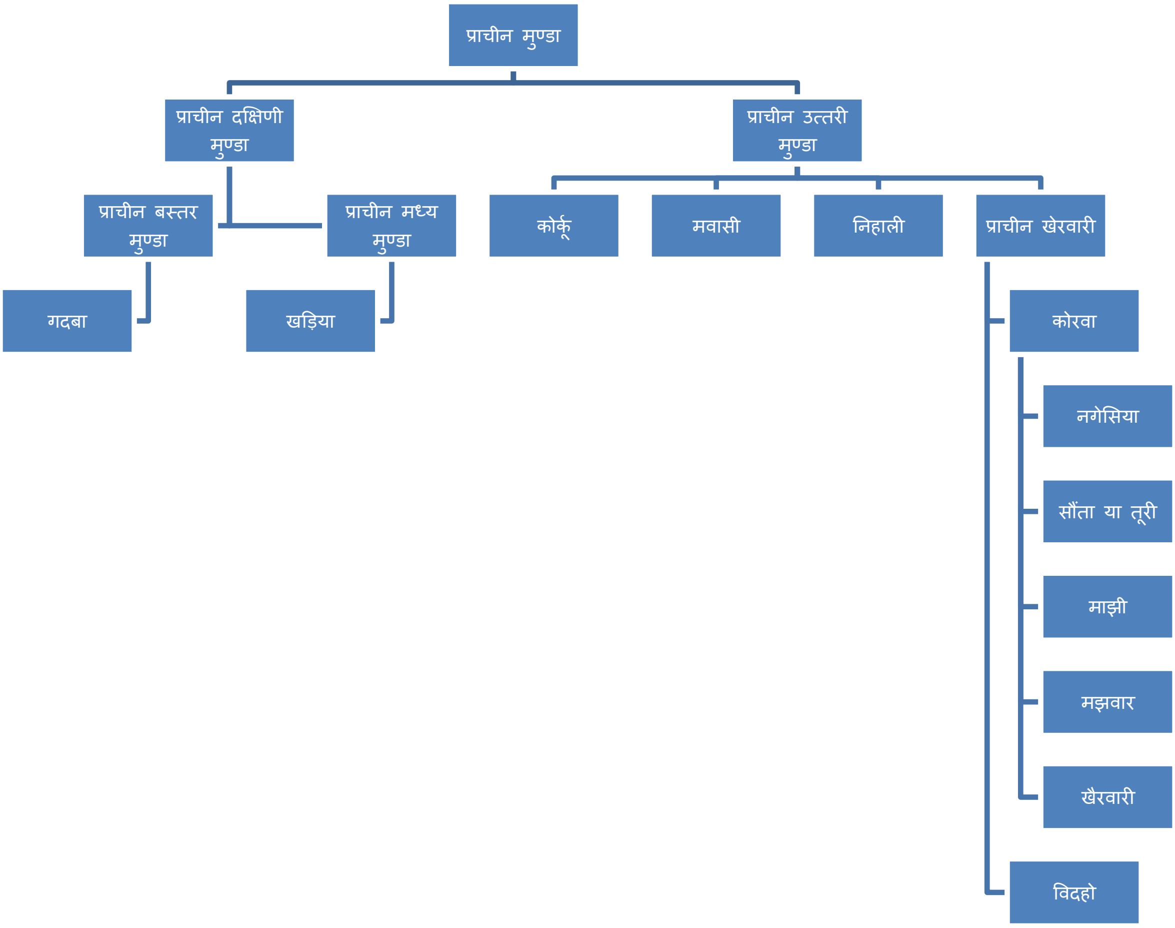

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में, 1971 की जनगणना में, मुण्डा भाषा परिवार की तीन भाषाओं को चिन्हित किया गया। यह कोर्कू, खड़िया और कोरबा थीं। इसमें कोर्कू प्रधान थी। खड़िया का विस्तार रायपुर सम्भाग तक था। इन तीन की उपबोलियाँ हैं- मुआसी, तूरी, निहाली मनकारी, खैरवारी, बिरहोड़, कोड़ाकू, ढेलकी, महतो, कोरी माझी, मुण्डा, मुण्डारी और संथाली। कई बोलियाँ विलुप्त होने वाली हैं। गदबा बोलने वाली अंतिम महिला (भालू) तो, बस्तर में, विगत वर्षों में चल बसी। खड़िया और कोरवा बोलने वाले सदरी और छतीसगढ़ी हिन्दी और कोर्कू बोलने वाले इन दो के साथ गोंड़ी भी बोलते हैं। इन भाषाओं और बोलियों का विस्तार महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, झारखण्ड और आन्ध्र प्रदेश में भी है। छातीसगढ़ में मुण्डा भाषाएँ और बोलियाँ उपेक्षित हैं।

इन भाषाओं में से कुछ पर थोड़े कार्य भी हुए हैं। खड़िया पर पर एस.सी.राय और आर.सी.राय, बिरहोड़ पर भी एस.सी.राय और एस.सी.मित्रा के पृथ्क-पृथ्क कार्य आदि।

खड़िया के तीन प्रकार हैं। दूध, ढेलकी और पहाड़ी। ढेलकी खड़िया जशपुर में है।

मुण्डा भाषा की बोलियों की ध्वनि में स्वर इ, उ और आ अधिक सशक्त हैं। तीन मध्य स्वर भी हैं। व्यंजन तो हैं ही। संज्ञाएँ दो हैं- सजीव और निर्जीव। लिंग-पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक के साथ सजीव और निर्जीव पर भी आधारित है। सर्वनाम की निजी विशेषता है और लिंग भेद विहीन है। यह पाँच- पुरूष, निश्चय, अनिश्चय, सम्बन्ध और प्रश्न- हैं। इसके दो भेद हैं- उत्तम और मध्यम। वचन तीन- एक, द्वि (कियार और किन) और बहु (कि और कू)- हैं। कारक सात हैं। इन कारकों से, निम्नांकित सारणी द्वारा, भाषा स्थिति और स्पश्त के जा सकती है।

सारणी 1 - छत्तीसगढ़ के मुण्डा भाषा परिवार की भाषाओं में कारक

स्रोत-हीरा लाल शुक्ल कृत्त छत्तीसगढ़ ज्ञानकोष,पृ.153

क्रमांक	कारक	खड़िया	महतो	माझी	कोरवा	मुंडारी	बिरहोर	ब्रिजिया	कोर्कू
1	कर्म	ते	शून्य	ले	ए	के	के	शून्य	त
2	करण	सोरि	शून्य	ले	ए	ते	ते	तुलि	ते
3	सम्प्रदान	धड़	लहि	नेग ? ड़	ले	नड़्	सतरि	लेना	लहि
4	अपादान	ते	मरि	अते	रे	एते	ते	एते	अरि
5	सम्बन्ध	आ ?	आ ?	आ ?	रा ?	रा	रा ?	रा ?	रा ?
6	अधिकरण	ते	रे	रे ?	रे	रे	रे	रे	रे
7	सम्बोधन	हन	ए	ए	हो ?	होद	हो ?	होना	हो

रंग, संख्या आदि के शब्द हिन्दी से अपभ्रंशित हैं। क्रिया दो- अकर्मक और सकर्मक- हैं। क्षेत्रिय रूप की विभिन्नता तो है ही।

(ख) द्रविंड़ः-

द्रविड़ भाषाओं का विकास निम्नांकित चित्र से स्पष्ट है।

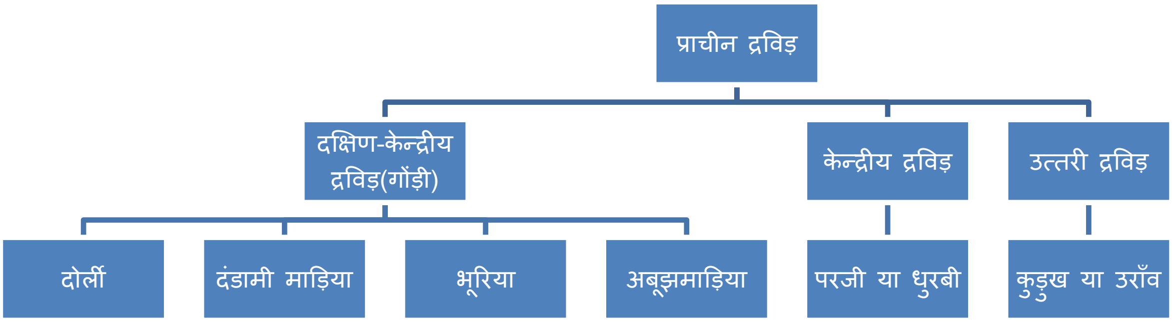

द्रविड़ भाषा का उत्तरी समूह कुड़ुख भाषा का है। यह उराँव जनजाति के लोग बोलते हैं। छतीसगढ़ में कुड़ुख बोलने वाले तीन लाख से अधिक हैं। इस पर राम राय, फर्द हान, एस.सी.राय, ए.जी.हान, डब्ल्यु.जी.आर्चर आदि प्रारम्भिक लेखकों के अतिरिक्त कई अन्य ने कार्य किया है और इस पर कार्य ज़ारी भी है। छतीसगढ़ के लोग भी इस पर कार्य कर रहे हैं। कुड़ुख में दस स्वर और 33 व्यंजन हैं। इसमें दो लिंग, दो वचन और 6 कारक हैं। सर्वनाम संख्या गोंड़ी की तरह हैं। संख्या चार तक द्रविड़ मूल की है और उसके पश्चात हिन्दी आर्य की। वर्तमान और भूत की सहायक क्रिया रच और भविष्य की मन धातु से है।

द्रविड़ के केन्द्रीय समूह में धुरबी या परजी है। यह बस्तर (और कोरापुट) की धुर्वा और परजी जनजाति के लोग बोलते हैं। इसे बोलने वाले 30 हजार से अधिक हैं। इसके छः क्षेत्रीय रूप हैं। यह स्थानिय भतरी, उड़िया, हलबी, तेलगू, दंडामि के मिश्रण से बने हैं। राय बहादुर हीरालाल,, .रामदास, एन.एस.सहगल, केदारनाथ थुसु, टी.बोरो आदि ने कार्य किया है। इसमें 10 स्वर और 30 व्यंजन हैं।

द्रविड़ भाषाओं में केन्द्रीय-दक्षिण समूह गोंड़ी से सम्बन्धित है। गोंड़ अपने आप को कोईतोर (या कोईतोल) कहते हैं। अतः इन्हे कोईतर बोलियाँ कह सकते हैं। सभी बोलियों का आधार एक ही है। द्रविड़ कोईतर बोलियों के मुख्य चार रूप हो सकते हैं- दोर्ली, दण्डामी मड़िया, अबुझमड़िया और घोटुल मुरिया। दोर्ली पर तेलगू का भी प्रभाव है। इसमें 10 स्वर हैं। ग्रासिम दण्डामी मड़िया को गोंड़ी से पृथ्क नहीं करता[4] है, परंतु एग्न्यु ऐसा करता[5] है। इसमें भी 10 स्वर हैं। 1213 के आसपास गायता या गैता का प्रयोग, 1855 (इलियट) से माड़िया (पहाड़) संज्ञा से हटा दिया गया और अबूझमाड़िया शब्द सामने आया। यह आर्य शब्द है। ग्रियसन (1939) हिल माड़िया ही लिखता है। यह दोर्ली और मुरिया के बीच की संक्राँति बोली है। इसमें भी 10 स्वर हैं। मुरिया में भी ऐसा है।

(ग) आर्यः-

छत्तीसगढ़ में प्रयुक्त 93 भाषाओं में से 70 आर्य हैं। इसका विकास-विभाजन इस प्रकार है।

---

[4] ग्रियसन-मड़िया गोन्डस आफ बस्तर,पृ.473

[5] एग्न्यु-जर्नल आफ अमेरिकन ओरिएंटल सोसाईटी,भाग-53,पृ.132

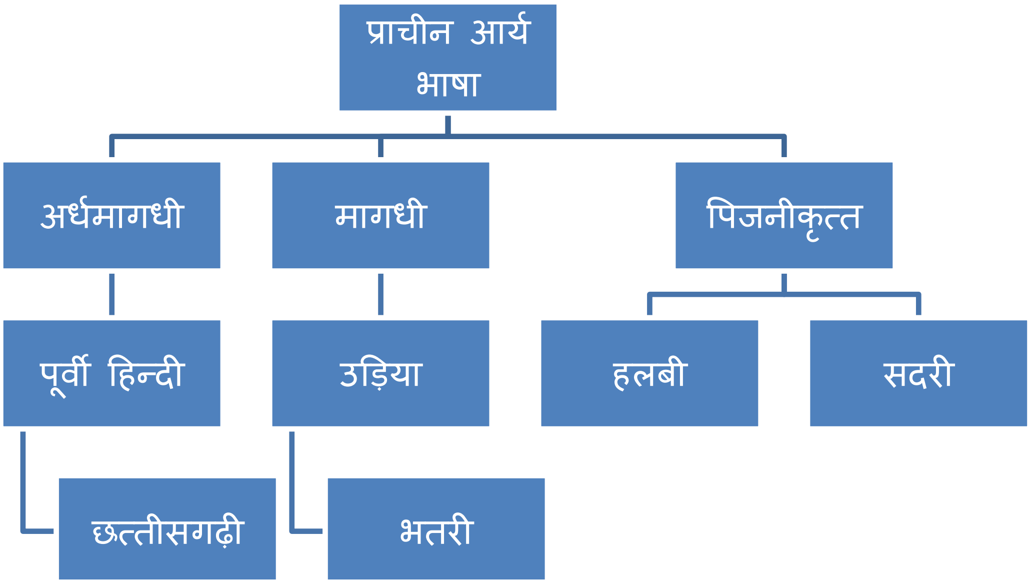

छत्तीसगढ़ में आर्यभाषा की छत्तीसगढ़ी हिन्दी प्रमुख भाषा है। यहाँ यह स्पष्ट करना महत्वपूर्ण संकेत देगा कि,- यदि कोई जनजाती या इस तरह का जातीय समूह अपनी मात्तृ या मूल भाषा से को छोड़ कर आर्यभाषा की बोली को अपना और विकसित कर लेता है तो वह सदरी कहलाती है। ऐसा छतीसगढ़ की प्राच्य क्षेत्र की जनजातियों के साथ हुआ। संस्कृति विस्तार और साँस्कृतिक साम्राज्यवाद की परणिति में ऐसा होता है। अब हिन्दी सहित अन्य आर्य भाषाओं पर भी यह स्थिति बन रही है। भाषा को बोलने वालों से (यथा-हिन्दी) च्युत कर सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के तहत अन्य भाषा (यथा-अंग्रेजी) को स्थापित करने की स्पष्ट और घोषित नीति तथा पद्धति है।

जब अंग्रेजी या अन्य भाषा द्वारा किसी हिन्दी या अन्य भाषा को हटाना होता है तो सर्वप्रथम प्रोसेस आफ काण्ड-ग्रेज्युलिज़्म का चरण अपनाया जाता है। यह सप्रयास षडयंत्र होता है, पर बाहर से पता नहीं चले कि यह सयास है। वरन यह लगे कि, यह तो एतिहासिक बदलाव और विकास की स्वभाविक प्रक्रिया है। जैसे हिन्दी और आर्य भाषाओं को बदलने (हिंग्लिश) की प्रक्रिया। इसमें शेयर्ड वकैब्युलरी अर्थात साम्राज्यवादी भाषा के शब्द को च्युत की जाने वाली भाषा के शब्दों में हटाने के लिए उपयुक्त शब्द नहीं मिलने देना, को बढ़ाया जाता है। जैसे- रेल, पोस्टकार्ड, मोटर, शेयर रेडियो, टेलीवीजन आदि। इनका अधिक प्रयोग किया जाने को बढ़ावा दिया जाता है। अर्थात हिन्दी में अंग्रेजी के शब्दों को प्रवेश कराना। द्वितीय चरण को प्रोसेस आफ डिसलोकेशन कहते हैं। इस चरण में सप्रयास षडयंत्रपूर्वक मातृ/देशज भाषा के शब्दों को शैनः-शैनः बोलचाल और जीवन से हटाया जाता है। मूल भाषा के कारक मात्र रह जाते हैं और शेयर्ड वकैब्युलरी को लगातार बढ़ा लिया जाता है। जैसे पेरेंटस, स्कूल, हास्टल, स्टुडेंट, संडे, युनिवर्सिटि आदि। तृतीय चरण को स्नो-बाल थ्योरी कहते हैं, जिसका आशय है कि, बर्फ के दो गोलों को आपस में दबाकर मिलाकर एक करने की क्रिया। ऐसा भाषा के साथ किया जाता है। वह रणनीति जिससे अंग्रेजी या अन्य भाषा के शब्द इतने मिल जाएँ कि, अलग करना मुश्किल हो। जैसे पहले भी हुआ-सब्जी, चोली-दामन, स्याही, शादी-ब्याह और अब- रेल टिकट, सुप्रीम कोर्ट, पूरी की पूरी गिनती आदि। चौंथा चरण रिप्लेसमेंट का है। अब पूरे वाक्याँश घुसाए जाते हैं। यथा- आऊट आफ टर्न, आऊट आफ रीच, बियांड डाउट, नन अदर दैन, P.T.O. आदि। पाँचवा चरण इल्यूज़न आफ स्मूथ ट्रांजिशन कहलाता है। अब देशज (हिन्दी) के स्थान पर अंग्रेजी या अन्य भाषा को निर्विघ्न ढ़ंग से स्थापित किया जाता है। अगला और छठा चरण क्रियोल कहलाता है। इस चरण में चंगी भाषा से उसके रोज़मर्रा के साँस लेते शब्दों को हटाना और उसके व्याकरण को छीन कर भाषा से बोली में बदल देना होता है। जैसे हिन्दी से हिंग्लिश। अब सातवें चरण में डिक्रियोल किया जाता है। यह, काण्डा-ग्रेजुलिज़्म के हथकण्डों के उपरांत पूरी तरह अंग्रेजी से विस्थापन की क्रिया है।

आठंवाँ चरण फायनल असाल्ट का है। भाषा की सप्रयास और षडयंत्र पूर्ण हत्या साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की पूर्ण योजनाबद्ध क्रिया है। अब लिपि बदल कर रोमन की जाती है। यह अंतिम प्राणघातक प्रहार देवनागरी को अपठनीय और फिर मृत्त बनाएगा। इसी युक्ति से गुयाना में हिन्दी (43%) को फ्रेंच द्वारा डि-क्रियोल किया गया। तदुपरांत त्रिनिदाद, मारिशस आदि में। अंतिम और नौवाँ चरण विचार और सोच परिवर्तन का है। वही सोचवाना, जो हम सोचें। जैसे- पेयजल, इराक, आताँक, एड्स, ग्लोबलाइजेशन (राष्ट्रीयता हटाना) आदि। इसमें सभी तरह के हथकण्डे (साम-दाम-दण्ड-भेद) अपनाए जाते हैं।

दक्षिणात्य जनजातियों की आर्य भाषा हलबी के रूप में विकसित हुई।

हलबी एक पिजिन भाषा है। इसमें द्रविड़ भाषा के शब्दों के उपयोग के बावज़ूद, यह आर्य भाषा के रूप में विकसित हुई। यह बस्तर में स्थापित हुई। पूरे बस्तर क्षेत्र में भाषाओं का अति और विचित्र संगम हुआ है। तेलगू, उड़िया, मराठी, छत्तीसगढ़ी हिन्दी, कई जनजातिय बोलीयाँ और भाषाएँ-गोंड़ी, गदबा, (मुण्डा) आदि भाषाओं के क्षेत्र और वक्ता होने से हलबी उन सब के मिश्रण की सम्पर्क भाषा के रूप में सामने आई। हलबा जाति से सम्बन्धता के कारण हलबी संज्ञा मिली। यह (हलबा) बस्तर शासकों की अंगरक्षक जनजाति थी। हलबी बोलने वाले साढ़े तीन लाख से अधिक हैं। इसे भी क्रयोल भाषा में रखा जाता है। ग्लासफोर्ड और स्टेन कोनो हलबी को छत्तीसगढ़ी की उपबोली मानते हैं। जार्ज ग्रियसन और आर.के.एम.बेट्टी इसे मराठी की उपबोली मानते हैं। गंगाधर सामंत, ई.एस.हायड और सुनीति कुमार चटर्जी हलबी को उड़िया और मागधी के निकट मानते हैं।[6] वैसे हलबी में उड़िया शब्द ही अधिक हैं। हलबी में छत्तीसगढ़ी हिन्दी, उड़िया, मराठी, गोंड़ी और मुण्डा गदबी का प्रभाव है। उच्चारण छत्तीसगढ़ी की तरह है। छत्तीसगढ़ के प्रवासी और उत्तर-दक्षिण समंवय की प्रतिनिधि प्रतीक हलबा ही प्रतीत होती है। यह जनजातीय भाषा बस्तर रियासत में भी प्रयुक्त होती थी। इसे बस्तर क्षेत्र की मुख्य भाषा माना जाता है। विभिन्न जातियाँ और जनजातियाँ अलग-अलग प्रकार की हलबी बोलती है, जो उसी जाति की हलबी के नाम से जानी जाती है। कमारी, भुंजिया, नाहरी, राजमुरिया, मिरगानी, चंडारी, महरी, बस्तरी और भतरी इसकी बोलियाँ हैं। हलबी में 12 स्वर हैं। लिंग भेद सजीव में ही है। निर्जीव को स्त्रिलिंग में रखा गया है।

सदरी छतीसगढ़ के उत्तरी भाग में बोली जाती है। इसका विस्तार पश्चिम बंगाल, असम और उड़ीसा में भी है। इसे गवारी, नागपुरिया, नागपुरि और नगपुरिया हिन्दी भी कहा जाता है। ग्रियर्सन ने इसे मगही और चटर्जी ने पश्चिम मागधी में रखा। यह बिहारी और भोजपुरी के निकट है। इसमें छत्तीसगढ़ी के समान 10 स्वर हैं।

किसी बोली का क्षेत्र विकसित होने और एक ही ढ़ंग से लिखे और बोले जाने पर भाषा के रूप में विकास हो जाता है। छत्तीसगढ़ी बोली को इसमें रखने के प्रयास हो रहे हैं। इसकी भी उपबोलियाँ हैं। यथा-सरगुझिया, लरिया (सम्बलपुर जिले से लगे भाग में), खलौटी (बालाघाट जिले से लगे भाग में)। जाँजगीर के आसपास के क्षेत्र की छतीसगढ़ी अधिक सम्पन्न मानी जाती है, परंतु प्रतिनिधि प्रतीक दुर्ग-रायपुर की छत्तीसगढ़ी को माना जाता है। छत्तीसगढ़ी की लिपि भी देवनागरी ही है। यह उत्तर में बघेली से, पूर्व में उड़िया से, दक्षिण में तेलगू से और पश्चिम में मराठी से प्रभावित है। ग्रामीण और नगरीय छतीसगढ़ी अलग-अलग है। यह अभी स्थिर भी नहीं हो पाई है। लगातार विकास और बदलाव हो रहे हैं। शताब्दी पूर्व हीरा लाल बन्दोपाध्याय द्वारा व्याकरण लेखन प्रयास के दौरान ही यह तथ्य सामने आ गया था कि, करण और अपादान में ले के स्थान पर से का प्रयोग बढ़ रहा है। अब कर्म और सम्प्रदान में का के स्थान पर खा आने लगा है। छत्तीसगढ़ में इसे 2007 में राज्य भाषा कहा गया है। अभी इसके व्याकरण, शब्दकोष आदि प्रारम्भिक कार्य तो हुआ है पर अभी इन सहित सभी बिन्दुओं पर और कार्य होना है। यह नई बोली है। इसमें प्राचीन साहित्य नहीं है। इसकी क्रियाओं में द्विवचन नहीं होता। संज्ञा को क्रिया में भी बदल लिया जाता (यथा- गोठियाइस, उहरियाइस, थपरियाइस आदि) है।

---

[6] सुनीति कुमार चटर्जी-ओरीजन आफ बंगाली,पृ.14

(घ) तिब्बतीः-

छत्तीसगढ़ में, हाल में, एक नए भाषा समूह का प्रवेश हुआ है। चीन द्वारा तिब्ब्त को हथियाने के उपरांत तिब्बत के लोग, वहाँ से पलायन कर भारत में शरण हेतु आए। उन्हें छतीसगढ़ में भी बसाया गया। उनकी भाषा तिब्बती है।

यह लोग तिब्बती भाषा का प्रयोग करते हैं, जो साइनो-तिब्बतन समूह की तिब्बतो-बर्मन है। यह भाषा चीनी अधिक है। इनकी अपनी लद्दाखी और दोजांखा लिपीयाँ है, जो प्राचीन ब्राह्मी और संस्कृत से व्युत्पन्न हुई है। ब्राह्मी लिपी भारत की प्राचीन लिपी थी। तिब्बती बौद्ध साहित्य संस्कृत में भी लिखा गया। भारत में जब मुस्लिम अक्राँता भारतीय संस्कृत साहित्य को नष्ट करने लगे, तब उसे तिब्बत ही ले जाकर सुरक्षित रखा गया था। इसी तरह चीन द्वारा तिब्ब्त पर कब्जा करने और उसकी संस्कृति को नष्ट करने के वर्तमान प्रयास के दौरान तिब्बती साहित्य पश्चिम के देशों में ले जाया गया। पश्चमी विद्वानों वर्तमान तिब्बती भाषा को कोलोक्वियन तिब्बतियन संज्ञा से भी पुकारना प्रारम्भ किया।

अब पाँचो समूहों की जनजातियों और जातियों का पृथ्क-पृथक विवरण निम्नाँकित है। सर्वप्रथम जनजातियों को वर्णित किया जा रहा है।

(एक). विशेष पिछ्ड़ी जनजातियाँ :-

भारत सरकार द्वारा, छत्तीसगढ़ प्राँत में निवासरत जनजातियों में से, अति पिछ्ड़ी और अविकसित पाँच जनजातियों को विशेष पिछ्ड़ी जनजाति के रूप में चिन्हित किया गया है। यह जनजातियाँ हैं। :-
1. कमार, 2. अबूझमाड़िया, 3. पहाड़ी कोरवा, 4. बिरहोर और 5. बैगा।

अब सर्वप्रथम छ्त्तीसगढ़ की पाँच विशेष पिछ्ड़ी जनजातियों पर चर्चा।:-

1. कमारः-

कमार विशेष पिछ्ड़ी जनजाति है। यह छ्त्तीसगढ़ के मात्र रायपुर सम्भाग में ही निवास करती है।[7] कमार लोग बाँस हस्तशिल्प निर्माण का पारम्परिक कार्य करते हैं।

कमार जनजाति रायपुर सम्भाग के रायपुर और धमतरी जिलों के 11 विकास खण्डों में पाई जाती है। रायपुर जिले के गरियाबन्द, छूरा और मैनपुर तथा धमतरी जिले के नगरी विकास खण्डों में, इनका, अधिक संकेन्द्रण है। 2001 की जनगणना में कमार जनजाति की जनसंख्या 23,113 थी।

कमार जनजाति की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिक और एतिहासिक शोध नहीं हुए हैं। वे स्वतः अपनी उत्पति रायपुर जिले के मैनपुरी विकासखण्ड के देवडोंगर ग्राम से बताते हैं। यहीं उनके प्रमुख देव- वामन- भी स्थापित हैं।

रहवास के आधार पर कमारों के दो विभाजन हैं- पहाड़पतिया अर्थात पहाड़ वासी और बुन्दरजीवा अर्थात वन निवासी। इनके प्रमुख गोत्र हैं- नेताम, कुंजाम, मरकाम, मरई, सोढ़ी, जगत आदि।[8]

---

[7] Dr.Mahendra Kumar Mishra-Identity and Oral narratives (A case study on Kamar Tribe of Kalahandi adjoining Chhatishgarh) (http://www.asgporissa.org/mahendra/IdentityandOralNarrative.html)

[8] S.C.Dubey-The Kamar

कमार जनजाति के आवास गृह कच्चे होते हैं। वह मिट्टी, घाँस और बाँस से बने होते हैं। बाँस या काष्ठ का एक ही प्रवेश द्वारा होता है। छत बाँस, खपड़े, घाँस आदि की होती है। फर्श मिट्टी का होता है, जिसे स्त्रियाँ गाय गोबर से लीपती हैं। श्वेत मिट्टी से दिवारें पोती जाती हैं। घर में चक्की, कोठी, टोकनी, सूपा, चटाई, मृद भाण्ड, खाट, मूसल, बाँस से हस्तशिल्प बनाने के उपकरण, ओढ़ने-बिछाने-पहनने के वस्त्र आदि ही होते हैं। यह लोग कृषि भी करते हैं। अतः उसके कुछ उपकरण भी इनके पास होते हैं। यथा- फावड़ा, गैती, कुल्हाड़ी, हँसिया आदि। यह लोग शिकार भी करते हैं। अतः तीर-धनुष और मत्स्य आखेट का जाल भी रखते हैं।[9]

कमार लोग स्वच्छ रहते हैं। प्रति दिन स्नान और दातौन करते हैं। पुरूष छोटे और महिलाएँ लम्बे केश रखती हैं, जिसे वे कखवा (कंघी) की सहायता से चोटी या जूड़े के रूप में संवरती हैं। कमार स्त्रियाँ हस्तशिल्प से हाथ-पैरों पर गोदना गुदवाती हैं और चमकीली धातु (नकली चाँदी) और गिलट के आभूषण धारण करती हैं। यह हैं- कलाई में ऐंठी, नाक में फूली, कान में खिनवा आदि। पुरूष पुंछा (छोटी धोती), बंड़ी और सलूका तथा महिलाएँ लुगड़ा और पोल्का पहनती हैं।

लोककला और हस्तशिल्प छत्तीसगढ़ की जनजातियों में घर करती है। यह अति पिछड़ी जनजाति में भी मुखर हो कर सामने आती है। लोककला का एक अंग बाँस हस्तशिल्प कला के रूप में कमार जनजातिय लोगों का पारम्परिक व्यवसायिक उपक्रम है। छत्तीसगढ़ और रायपुर सम्भाग का प्रचलित और प्रसिद्ध सूवा (सुआ) लोक नृत्य कमार महिलाएँ भी करती हैं।

2001 की जनगणना के अनुसार मात्र 32.26% कमार साक्षर थे, जिसमें पुरूष साक्षरता 43.05% और महिला साक्षरता 21.88% थी। यह प्राँतीय औसत से कम था।

शिक्षा, संचार, आवागमन, विकास कार्यक्रम, सेवाओं का विस्तार, बाह्य सम्पर्क, औद्योगिकीकरण आदि के कारण कमार लोगों की वेशभूषा, रहन-सहन, भाषा, लोककला आदि में परिवर्तन आया है। स्थानतरीय कृषि भी स्थाई होने लगी है। पंछा और बंड़ी के स्थान पर पैंट-कमीज़, लुगड़ा और पोल्का के स्थान पर साड़ी, ब्लाउज और पेटीकोट, झाड़-फूक के स्थान पर अस्पताल से रोगोपचार, आधुनिक संचार तंत्र यथा टेलीविजन, सेल (मोबाईल) फोन आदि का प्रयोग हो गया है। इससे बाँस हस्तशिल्प को बाज़ार भी मिला है और उसमें गुणात्मक सुधार का दबाव बढ़ा है। घरेलू समान के अतिरिक्त सजावटी समान की माँग बढ़ी है। बाँस हस्तशिल्प निर्माण सामग्री तैयारी हेतु मशीनों की ज़ानक़ारी हो गई है, पर धनाभाव और इस हेतु अत्यधिक कच्चे सामग्री तथा बड़े बाज़ार की माँग ने उसका व्यापक उपयोग रोक रखा है। सूवा (सुआ) नृत्य का वस्त्र विन्यास भी बदला है। इसमें ब्लाउज का जुड़ना महत्वपूर्ण है। अंतःवस्त्रों के प्रति भी रूझान बढ़ा है। आभूषणों के डिजाईन भी बदले हैं। लोककला और हस्तशिल्प भी प्रभावित हुआ है।

2. अबूझमाड़िया [माड़िया (पहाड़ी) गोंड़]:-

अबूझमाड़िया जनजाति का यह नाम अबूझमाड़ क्षेत्र में रहने से पड़ा। यह बस्तर सम्भाग का भाग है। अबूझ का अर्थ बूझा नहीं जा सकने से है। दशकों पहले इस क्षेत्र में बाहरी लोगों के प्रवेश के लिए 3 वर्षों हेतु प्रतिबन्धित भी कर दिया गया। इससे यह भ्रम फैला कि इस क्षेत्र में जाना सदा हेतु प्रतिबन्धित हो गया है। इस भ्रम को दिनाँक 23 जून’2010 की दक्षिण क्षेत्र और बस्तर आदिवासी विकास परिषद की बैठक में ही दूर किया जा सका। हालाँकि इससे यह क्षेत्र और अबूझता की ओर बढ़ गया। बाहरी परिवर्तन भी नहीं पहुँचे और न ही अबूझमाड़िया बाहर गए। यह क्षेत्र सघन वनों और दुर्गम पहाड़ियों से आच्छादित है। यहाँ मानव प्रवेश कठिन और दुर्लभ कर दिया गया है। यहाँ तक कि, यह छत्तीसगढ़ प्रदेश का असर्वेक्षित भाग है।

[9] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान परिषद की जनजाति विषयक परिचय पुस्तिकाएँ

ओरक्षा इस क्षेत्र का प्रवेश द्वारा माना जाता है। माड़िया का अर्थ पहाड़ से है। इस अबूझ और दुर्गम जंगल-पहाड़ पर रहने वाले गोंड़ ही अबूझमाड़िया कहलाए।

प्रारम्भिक उल्लेखों में Hill Mariya शब्द भी प्रयुक्त हुआ था। 1213 के आसपास गायता या गैता का प्रयोग, 1855 (इलियट) से माड़िया (पहाड़) संज्ञा द्वारा हटाया गया और अबूझमाड़िया शब्द सामने आया। यह आर्य शब्द है। ग्रियसन (1939) ने हिल (पहाड़ी) माड़िया लिखा था। इन्हें माड़िया (पहाड़ी) गोंड़ भी कहा जाता है। इस क्षेत्र पर माओवादी नक्सलाईट लोगों के प्रभाव के कारण विषम परिस्थितियाँ और बढ़ी हैं।

विशेष पिछड़ी जनजाति के रूप में चिन्हित अबूझमाड़िया जनजाति छत्तीसगढ़ के मात्र बस्तर सम्भाग में निवास करती है। यह लोग इस सम्भाग के नारायणपुर, बीजापुर और दंतेवाड़ा (दक्षिण बस्तर) जिलों में निवास करते हैं। 2002 के एक सर्वेक्षण में, इनकी जनसंख्या, 19,401 थी।[10]

अबूझमाड़िया जनजाति की उत्पत्ति और विकास के सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिक शोध नहीं हुए हैं और न ही एतिहासिक सन्दर्भ उपलब्ध हैं। वे स्वयं यह मानते हैं कि, बस्तर के माड़िया गोंड़ समुदाय का एक प्रेमी युगल, सामाजिक भय से, सामान्य क्षेत्र से पलायन कर दुर्गम वन और पर्वत्त क्षेत्र में भाग आया। यह क्षेत्र अबूझमाड़ था। यहाँ यह युगल विवाह कर बसा और उनके वंशज ही अब अबूझमाड़िया हैं।[11]

अबूझमाड़िया लोग पहाड़ की तलहटियों और घाटियों में रहते हैं। स्थानिय स्तर पर घुमंतु और स्थानानतरीय कृषि करते हैं। इसे पेन्दा कृषि और इसके स्थान को कघई कहते हैं।[12] स्थान और उसके आसपास के संसाधनों को उपयोग कर आगे बढ़ जाने की प्रवृति अब रूक सी रही है। अब स्थाई कृषि और बसाहट करने लगे हैं।

अबूझमाड़िया लोगों के निवास छोटी झोपड़ी में होते हैं, जिसे लकड़ी और मिट्टी से बना कर उस पर घाँस-फूस की छप्पर डालते हैं। इस पूरे ढ़ाँचे का निर्माण, वे स्वयं करते हैं। सामान्यतः इसमें परछी (बरामदा), अगहा (बैठक), आँगड़ी (रसोई), लोनू (स्टोर) और बाड़ी होती है। लोनू में ही कुल देवता का निवास रखते हैं। इसमें खिड़की और रोशनदान नहीं होते हैं।

घरेलू समान सीमित है। सोने के लिए अल्पांजी, बैठने के लिए पोवई (चटाई), अन्न कूटने की ढेक़ी और मूसल, अन्न पीसने के लिए जाता, भोजन बनाने और खाने-पीने हेतु बर्त्तन (मिट्टी, एल्युमीनियम, लौह, पीतल), पीसने की सिल आदि; कृषि उपकरणों में हल, कुदाली, गैंती, रापा (फावड़ा), हसिया आदि; शिकार हेतु तीर-कमान, फरसा, टाँगी (कुल्हाड़ी), फाँदा आदि; मछली पकड़ने हेतु जाल, चोरिया, डगनी आदि होते हैं।

अबूझमाड़िया स्त्रियों में गोदना हस्तशिल्प से शरीर गोदवाना अनिवार्य सा है। वे इसे स्थाई गहना मानते हैं। यह माना जाता है कि, गोदना मृत्यु उपराँत भी साथ जाता है। मस्तक, नाक के समीप, हाथ, ठुड्डी आदि दृष्टव्य स्थानों पर गोदना हस्तशिल्प का प्रयोग कराया जाता है। वे गिलट या चमकीली धातु (नकली चाँदी) के आभूषण धारण करती हैं। तोड़ा (पैर), पैर पट्टी, करधन, चूड़ी, सुड़ेल (ऐड़ी), सुता (गला), रूपईया माला, चेन, मूँगा माला, खिनवा (कान), झुमका, बाला, फुली (नाक) आभूषण हैं। केश कई प्रकार की पिनों से सजाती हैं।

पुरूष मात्र लगोटी जैसा वस्त्र और स्त्रियाँ मात्र लुगड़ा धारण करती हैं।

अबूझमाड़ियायों के भोजन में चावल, माड़िया, कोदो, कुटकी, मक्का आदि का पेज और भात; उड़द, मूँग, कुल्थी आदि की दाल; वनीय कन्द, मूल, भाजी, विभिन्न पशु-पछी (पड़की, मोर, बगुला, कौआ, तोता, खरगोश, लोमड़ी, साही, मुर्गी-मुर्गा, बकरी-बकरा आदि) और मछली माँस, महुआ शराब, सल्फी ताड़ी आदि सम्मलित हैं। माँस और शराब या सल्फी ताड़ी किसी भी संस्कार या आयोजन का अनिवार्य अंग है।

---

[10] छत्तीसगढ़ शासन के आदिम जाति कल्याण विभाग का वर्ष 2002 का सर्वेक्षण

[11] T.B.Naik-The Abhujmariyas

[12] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान परिषद की जनजाति विषयक परिचय पुस्तिकाएँ

इस जनजाति के लोगो का आर्थिक जीवन पेन्दा स्थांतरीय कृषि, शिकार, वनोपज और कन्द-मूल संग्रह पर आधारित रहा हैं। अब स्थाई कृषि और मजदूरी होने लगी है। बाड़ी भी लगाने लगे हैं, जिसमें मक्का, कोसरा, मूँग, उड़द, ऋतु शाक आदि बोते हैं। मज़दूरी की ओर झुकाव कम है। वन से मधु, तेन्दूपत्ता, कोसा, लाख, गोन्द, धवई फूल, हर्रा, बहेरा, चार चिरौंजी आदि एकत्र कर बेचते हैं। छोटे पशु-पछिओं का शिकार करते हैं। गाय-बैल, बकरी, सुअर और मुर्गी पालते हैं।

अबूझमाड़िया जनजाति पितृ वंशात्मक, पितृनिवास स्थानिय और पितृसत्तात्मक है। सभी भारतीय जातियों के समान, इसमें भी, कई वंश और गोत्र (गोती, गोष्ठी) हैं। इनके गोती (गोत्र) हैं- अक्का, मंडावी, धुर्वा, उसेंडी, मरका, गुंठा, अटमी, लखमी, बड्डे, थोंड़ा आदि।

प्रसव बुजुर्ग महिला द्वारा कराया जाता है। पहले, इस हेतु, पृथ्क झोपड़ी कुरमा बनाई जाती थी। शिशुनाल को तीर या छुरी से काटते हैं। जच्चा पाँच दिनों तक खिचड़ी और काढ़े (हल्दी, सोंठ, तुलसी, पीपर, गुड़, अजवाईन आदि से) पर निर्भर रहती है। छठी पर जच्चा-बच्चा की शुद्धि करते हैं। स्नान करा नवीन वस्त्र धारण कराए जाते हैं। और देवता दर्शन करा नाम रखा जाता है। सामाजिक समारोह कर माँस-मदिरा का सेवन करते हैं।

विवाह की सामान्य उम्र युवकों हेतु 18-19 और युवतियों हेतु 16-17 वर्ष है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। वधू पिता की सहमति पर सूक (वधु-धन) नियत किया जाता है, जिसमें अन्न, दाल, तेल, गुड़, नगद रूपए आदि होते हैं। वधु को लेकर वर के गाँव जाते हैं, जहाँ विवाह रस्में, बुजुर्ग सम्पन्न कराते हैं। बिधेर (घर से भाग कर विवाह), ओड़ियत्ता (घुसपैठ या घर में घुस कर जबरदस्ती) और चूड़ी पहनाना (विधवा या परित्यक्ता पुनर्विवाह) प्रथा है।

मृतक को दफनाते हैं, पर दाह पर भी रोक नहीं है। विशिष्ट व्यक्ति की कब्र पर गाथा (लकड़ी का हस्तशिल्प से निर्मित नक्काकाशी किया खम्बा) लगाते हैं। यह विशिष्ठ परम्परा है। तृतीय दिवस मृत्य भोज दिया जाता है।

परम्परागत जाति पंचायत भी है। इसका माढ़ (क्षेत्र) प्रमुख माँझी होता है और उसके अधीन पटेल, पारा मुखिया और गायता होते हैं। यह लोग माढ़ में शांति, व्यवस्था आदि बनाए रखने, विवाद निराकरण, जाति नियम निर्माण/संशोधन आदि के कार्य करते हैं।

अबूझमाड़ियों के अराध्य हैं- बूढ़ा देव, ठाकुर देव (टालू भेंट), बूढ़ी माई या डोकरी, लिंगोपेन, विभिन्न गृह देव (छोटा पेन, बड़ा पेन, मंझला पेन), गोत्र कुल देवता, लगभग सभी हिन्दू अराध्य, स्थानिय नदी, स्थानिय पहाड़, नाग, सूर्य, चन्द्र आदि। अराध्य उपासना में पशु बली (मुर्गा, बकरा या सुअर) सम्मलित है।

प्रमुख त्योहार हैं- काकसाड़, पंडुम आदि। जादू-टोना और भूत-प्रेत पर विश्वास है। अनुष्ठान कराने वाले और तंत्र-मंत्र जानने वाले को
गायता या सिरहा कहते हैं।

नृत्य और गीत अबूझमाड़ियों का पसन्द है। काकसाड़, गेंड़ी और रिलो प्रमुख नृत्य हैं। काकसाड़ मुरिया जनजाति में भी प्रचलित है।[13] ददरिया, रिलो, पूजा, विवाह, सगाई, छठी आदि के लोक गीत हैं।

अबूझमाड़ी लोग माड़ी बोली बोलते हैं। यह द्रविड़ भाषा परिवार की गोंडी बोली का एक रूप है।

2002 के एक सर्वेक्षण में मात्र 19.25% अबूझमाड़ी लोग ही साक्षर थे। कुछ परिवर्तन भी सामने आने लगे हैं। यथा- बच्चों को शाला भेजना, स्थाई बसना और स्थाई कृषि करना, वस्त्रों को धारण करना, दैनिक रोज़ग़ार आदि।

अबूझमाड़ी लोग अत्यधिक पिछड़े हुए हैं। धन, सम्पति, कृषि भूमि आदि का पूर्ण अभाव है। कृषि, रोज़ग़ार, शिक्षा, पोषण आदि अत्यधिक कम है। अन्धविश्वास अधिक है। अभाव के साथ जीवन ही नियति बन गया है।

[13] हीरा लाल शुक्ल-आदिवासी संगीत (ग्रंथ अकादेमी, भोपाल, 1986)

3. पहाड़ी कोरवाः-

पहाड़ी कोरवा भी विशेष पिछ्ड़ी जनजाति है। छत्तीसगढ़ राज्य में यह सरगुजा सम्भाग के जशपुर और सरगुजा और बिलासपुर सम्भाग के कोरबा जिले में पाई जाती है। कोरबा नाम कोरवा जनजाति से ही बना है। 2005-06 के सर्वेक्षण में इनकी जनसंख्या 15 विकासखण्डों में 34,122 थी।[14]

कोरवा जनजाति की उत्तपति और विकास के सम्बन्ध में आधुनिक, वैज्ञानिक और जैनेटिक शोध नहीं हुए हैं। डाल्टन[15] इन्हें कोलयारिन समूह[16] से निकली जनजाति मानता है।[17] कोलयारिन समूह मुद्दे पर और चर्चा आगे मुण्ड़ा जनजाती के विवरण के समय की गई है। एंथ्रोपोलाजी में इन्हें Austro-Asiatic family का माना गया है।[18] वे आस्ट्रिक परिवार की मुण्डारी भाषा/बोली बोलते हैं।[19]

कोरवा जनजाति की उत्तपति के विषय में तीन कथाएँ प्रचलित हैं। तीनों कथाओं का मूल कथ्य और भावना एकसी है। मात्र देवताओं के नाम परिवर्तित हुए हैं।

प्रथम कथा[20] यह है कि, कोरवा लोग स्वयं के लिए यह कहते हैं कि- वे लोग खुरिया (जिला जशपुर) के मूल निवासी हैं। सरगुजा के किसी शासक ने, उन्हें, अपने क्षेत्र में बसाया। कोरवा लोग अपने डरावने और कुरूप स्वरूप का कारण यह बताते हैं कि, सरगुजा में वनीय पशु उपजों को अत्यधिक नुकसान पहुँचाते थे। उन्हें डराने को कुरूप और डरावने बिजूखे बनाए गए। बड़े देव ने उनमें प्राण डाल दिए, जिससे उनके भक्तों को वन पशुओं से कभी भय नहीं हो। कोरवा लोग अपने को उसी का वंशज मानते हैं।

द्वितीय कथा[21] में बड़ा देव के स्थान पर राम-सीता हैं। बनवास काल में, सीता ने खेतों के समीप से गुजरते हुए, राम से बीजूखों में प्राण डालने का आग्रह किया और उन्हों ने इसे क्रियांवित कर दिया। तृतीय कथा[22] में यह है कि, शंकर ने सृष्टि निर्माण हेतु रतनपुर राज्य के काला और बाला पर्वत्त से मिट्टी लेकर दो मनुष्य- काइला और घुमा- सृजित किए। तदुपरांत दो नारी मूर्तियों से में प्राण डाले। वह सिद्धी और बुद्धि बनीं। काइला और सिद्धी तथा घुमा और बुद्धि के विवाह हुए। प्रथम युगल से तीन पुत्र- कोल, कोरवा और कुड़ाकू (कोड़ाखू) हुए। इस द्वितीय पुत्र कोरवा के दो पुत्र हुए। प्रथम पहाड़ पर जाकर स्थानांतरीय दहिया खेती करने लगा और पहाड़ी कोरवा कहलाया। द्वितीय पुत्र वनों को साफ कर हल द्वारा स्थाई खेती करने लगा और डिहारी कोरवा कहलाया।

---

[14] छत्तीसगढ़ शासन, आदिम जाति कल्याण विभाग

[15] डाल्टन (1857 में राँची कमीश्नरी का प्रशासक रहा था, जिसका उल्लेख क्राँति काल में भी आता है। उसने इस क्षेत्र का अध्ययन कर पुस्तक लिखी।)

[16] अर्थात मूलतः कोल जनजाति से व्युतपति या सम्बन्धित। कृप्या आगामी पृष्ठों पर मुण्डा भी देखें, जिसमें इस विषय पर और चर्चा की गई है।

[17] रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड झनकार,पृ.33

[18] cjtdp.cg.gov.in/tribes.htm

[19]http://books.google.co.in/books?id=fU8Thf35iIEC&pg=PA42&lpg=PA42&dq=Pahari+korwa+tribe&source=bl&ots=LYmypAl6DQ&sig=5EU7V7QGh1saAE3Duno2MBM3--g&hl=en&ei=e4nzS7n8K4GY6gO569SADA&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=10&ved=0CDYQ6AEwCQ#v=onepage&q=Pahari%20korwa%20tribe&f=false

[20] रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड झनकार,पृ.33-34

[21] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान परिषद की जनजाति विषयक परिचय पुस्तिका(टी.के.वैष्णव-छ.ग. की अ.ज.जातियाँ,पृ.69)

[22] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान परिषद की जनजाति विषयक परिचय पुस्तिका(टी.के.वैष्णव-छ.ग. की आदिम ज.जातियाँ,पृ.-42)

कोरवा लोगों के दो समूह हैं। पहाड़ पर रहने वाले और पहाड़-पहाड़ घुमंतु जीवन बिताने वाले पहाड़ी कोरवा और डिह (गाँव) में रह स्थाई कृषि करने वाले डिहारी कोरवा।

पूर्व सरगुजा और जशपुर रियासत के, यह लोग, प्राचीन निवासी प्रतीत होते हैं। इस आधार पर उन्हें मूल निवासी भी कहा जाता है। कोरवा लोग खुरिया सहित 4 स्थानों पर जमीन्दार रहे, जिसमें से 2-2 सरगुजा और जशपुर रियासत में थीं। सरगुजा की जमीन्दारियाँ झगड़ते रहने के कारण गँवानी पड़ी थीं। खुरिया के जमीन्दार, कोरवाओं के प्रमुख जैसे मान लिए गए। वे जशपुर रियासत के परम्परागत दीवान भी रहे। कोरवा लोग, इन दोनों रियासतों के, कुछ भागों पर शासक भी रहे।[23]

कोरवा जनजाति मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करती है। अब यह लोग मैदानों में भी रहने लगे हैं। सामान्यतः कंवर, उराँव, नगेसिया, मुण्डा आदि जनजातियों के लोगों के साथ। यह लोग मिट्टी से बने और घाँस-फूस से छाए घर में रहते हैं। पहाड़ पर रहने वाले बाँस और काष्ठ का भी उपयोग करते हैं। फर्श मिट्टी का ही होता है और इसीसे या गाय के गोबर से लीपा जाता है। घर में 1 या 2 कमरे ही होते हैं।

घर में भोजन बनाने और खाने के बर्त्तन, तीर-धनुष, कुल्हाड़ी, बाँस टोकनी आदि होती है।

अस्वच्छ रहते थे। स्नान लगभग साप्ताहिक ही था। केश भी नहीं काटते थे और न ही साफ करते थे। उसकी लम्बी जटा बना कर लपेटते लेते थे। अब मैदान में आने पर कुछ सुधार आया है।

महिलाएँ काष्ठ और गिलट के आभूषण पहनती हैं। पुरूष मात्र लंगोट और महिलाएँ मात्र लुगड़ा पहनती थी। अब कुछ पुरूष बंडी भी पहनते हैं।

भोजन में कोदो, कुटली, गोदली की पेज; कभी-कभी चावल का भात और वनीय कन्द, मूल, शाक इनका खाद्य है। यह लोग सभी पशु और पक्षी खा लेते हैं। मछली और केकड़े भी खाते हैं। महुआ शराब और चोंगी पीते हैं।

शिकार और वनोपज खाद्य संग्रह ही मुख्य आर्थिक क्रिया कलाप है। अब छुट-पुट खेती भी करते हैं। वन कन्द पहचानने और तीर-धनुष निशाना लगाने में निपुण होते हैं।

शिकार पर जाते समय कहानी कहते हैं। यह कहानियाँ संग्रहित की जानी हैं। एक कहानी रघुवीर प्रसाद ने झारखण्ड झनकार में दी है।[24] पहले शिकार नहीं मिलने पर लूट किया करते थे। हत्या भी कर देते थे। चोरी से डाके को बेहतर मानते थे। बच्चे के रुदन को अपशगुन मानते थे और कभी-कभी उसे ही मार देते थे।

यह लोग गोंड़, कंवर आदि लोगों के यहाँ भोजन कर लेते हैं, परंतु ब्राह्मण के यहाँ भोजन नहीं करते। अन्य हिन्दू भी इनसे छुआछूत नहीं मानते हैं।

पहाड़ी कोरवा जनजाति के गोत्र हैं- मुडिहार, हसदा, ऐदमे, फरमा, समाउरहला, गोन, बंड़ा, इदिनवार, सोनवानी, भुदिवार, बिरवानी आदि।

शिशु जन्म भगवान की देन माना जाता है। प्रसव हेतु पृथक पर्ण कुटी- कुम्बा- बनाई जाती है। स्थानिय दाई- डोंगिन- प्रसव कराती है। शिशु नाल तीर या चाकू से काटते हैं और झोपड़ी में गाड़ते हैं। प्रसूता को हल्दी मिला भात खिलाया जाता है। कुल्थी, एंठीमुड़ी, छिन्द जड़, सरई छाल, सोंठ, गुड़ आदि से बना काढ़ा पिलाते हैं। छठी पर शुद्धी करते हैं। जच्चा-बच्चा को स्नानोपरांत सूरज, धरती और कुल देवी को प्रणाम कराते हैं। महुआ शराब पीते पिलाते हैं।

लड़के-लड़की अपना विवाह स्वयं करते हैं। उसमें माता-पिता की स्विकृति की आवश्यकता ही नहीं होती है। दहेज भी अति अल्प रूपयों का होता है और यदि यह दिया जा सके तो 8-10 तक विवाह कर लेते हैं। एक बच्चा होने तक युगल साथ रहता है, फिर औरत अलग रहने लगती है। वह अपना कन्द-मूल ला कर अलग बनाती है और उसका एक अंश पति को देती है। अतः जिसकी जितनी औरतें उसे उतना ही अधिक भोजन और आराम।

---

[23] रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड झनकार,पृ.33

[24] पृ.36

विवाह उम्र लड़कों हेतु 14-18 और लड़कियों हेतु 13-16 है। विवाह प्रस्ताव लड़का रखता है। विवाह में अनाज, दाल, तेल, गुड़, कुछ रूपए आदि लड़की के पिता को सुक में दिए जाते हैं। विवाह के चार चरण हैं- मंगनी, सूतबधौनी, विवाह और गौना। गौना विवाह के 2-3 वर्ष उपराँत होता है। फेरा करने का कार्य जाति मुखिया कराता है। इनमें गुरावट (विनिमय), लमसेना (सेवा विवाह), पैठू (घुसपैठ या जबरदस्ती), उढ़रिया (सह पलायन), विधवा पुनर्विवाह, देवर-भाभी पुनर्विवाह मान्य है।

शव दफनाते हैं। 10 वें दिन शुद्धि कर भोज देते हैं। जिस झोपड़ी में मृत्यु हुई है, उसे नष्ट कर दूसरी बनते हैं।

पारम्परिक जाति पंचायत है। प्रमुख को मुखिया कहते हैं। इसमें पटेल, प्रधान, भाट आदि पदाधिकारी होते हैं। काई जाति पंचायतों का मुखिया तोलादार कहलाता है। इसमें वधु मूल्य, विवाह, तलाक, अन्य जाति विवाह, अनैतिक सम्बन्ध आदि के मुद्दे निराकृत किए जाते हैं। जाति के आराध्य देवी देवताओं की पूजा व्यवस्था भी जाति पंचायत करती है।

कोरवा लोगों के अराध्य हैं- ठाकुर देव, खुरिया रानी, शीतला माता, दुल्हा देव, सतबहिनी देवी आदि। खुरिया रानी को अधिक मानते हैं। पहले 30-30 भैसों और अत्यधिक बकरे आदि, हर मौके पर, बलि दिए जाते थे। अब मुर्गा चढ़ाते हैं।

पूर्व जशपुर रियासत में खुरिया रानी का मन्दिर प्रसिद्ध है। उच्च सम भूमि के कोरवा, इसी से अपनी उत्पति मानते हैं। यह जिस चट्टान पर बना है, वह दुर्गम है। प्राचीन काल में इस कार्य का किया जाना उच्च तकनीकि योग्यता दर्शाता है। यहाँ स्थापित मूर्ति बुद्ध जैसी प्रतीत होती है। यहाँ खुरिया इलाकेदार के गद्दी पर बैठते समय ही मुख्य पूजा होती थी।[25]

पहाड़ी कोरवाओं के तीन त्योहार प्रमुख हैं। पूस में देवथान, जब सब देवताओं की पूजा और बलिदान किया जाता है। क्वाँर में नवाखाई, जब नया अन्ना खा और शराब पी नाचते हैं और चैत्र में होली। अन्य हिन्दू त्योहार भी मनाते हैं।

भूत-प्रेत, जादू-टोना पर विशवास है। इनमें मंत्र, टोना, जादू आदि के जानकार को देवार बैगा कहते हैं।

करमा, बिहाव, परधनी, रहस आदि नृत्य करते हैं। करमा, बिहाव, फाग आदि गीत गाते हैं।

2005-06 के एक सर्वेक्षण में इनमें साक्षरता 22.02% थी। यह परिवर्त्तन का एक लक्षण माना जा सकता है। बलि, लूट, डाका, हत्या आदि नगण्य हो गई है। रहने का ढ़ंग, खान-पान, पहनना-ओढ़ना आदि भी बदला है। स्थाई कृषि, शिक्षा, मजदूरी आदि के प्रति रूझान हुआ है। कुछ सुधरा रूप निम्नांकित चित्र से भी दर्शित होता है।

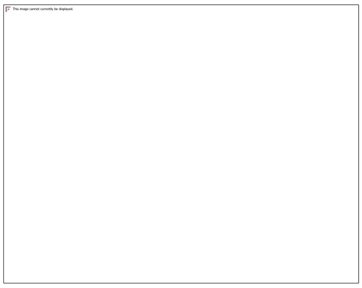

चित्र 1 - पहाड़ी कोरवा स्रोत-indianetzone.com

[25] रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड-झनकार,पृ.76

धन, स्थाई सम्पत्ति आदि का अभाव है। कन्द, मूल, अस्वच्छ पशुओं का माँस ही मुख्य आहार है। पौष्टिक आहार, अन्न आदि दूर ही है। शासकीय योजनाओं ने नमक, चावल आदि सहज उपलब्ध कराया है, पर अभी भी अभावग्रस्त जीवन ही है।

करेला नीम भी चढ़ता है जब इसमें अशिक्षा, अन्धविश्वास, उपचार अभाव, कुपोषण, अस्वच्छता, रोग आदि भी जुड़ जाते हैं।

प्रसिद्ध चित्रकार जगदीश स्वामीनाथन ने जब पहली बार सरगुजा और रायगढ़ की जनजाति पहाड़ी कोरवा को रंग ब्रश प्रदान किया और परिणामस्वरूप जो चित्र सामने आये उसे देख कर स्वामीनाथन ने 'जादुई लिपि' नामक मोनोग्राफ लिखा और पहाड़ी कोरवा द्वारा बनाये गये चित्रों को समकालीन आधुनिक चित्रकारों के चित्रों के साथ एवं समानांतर विश्लेषित किया।[26]

4. बिरहोरः-

बिरहोर छत्तीसगढ़ की अल्पसंख्यक और विशेष पिछड़ी जनजाति है। बिरहोर लोग अधिकांशतः बिहार राज्य में रहते हैं। 2001 की जनगणना में छत्तीसगढ़ में मात्र 1,744 बिरहोर लोग थे, जो राज्य जनसंख्या का 0.026% ही है। यह जनजाति सरगुजा सम्भाग के जशपुर और बिलासपुर सम्भाग के रायगढ़ और बिलासपुर जिलों के 14 विकासखण्डों में है। यह लोग पर्वत्तीय क्षेत्रों में निवास करते हैं। हस्तशिल्प का पारम्परिक व्यवसाय करते हैं। मोहलाइन की छाल से रस्सी, बाँस से टुकना, झंऊहा, सालेह आदि और पोटे वृक्ष की लकड़ी से ढोलक, बेहंगा आदि बनते और बेचते हैं। यह पारम्परिक हस्तशिल्पी जनजाति है।

बिरहोर जनजाति के इतिहास, उत्पति आदि के विषय में वैज्ञानिक शोध आदि नहीं हुए हैं। इन्हे भी कोलयारिन समूह[27] की जनजाति माना जाता है।[28] यह भी डाल्टन का प्रतिपादन हो सकता है।

बिरहोर लोग यह मानते हैं कि, सूर्य द्वारा सात भाई पृथ्वि पर गिराए गए, जो खैरागढ़ (कैमूर पहाड़ी क्षेत्र) से इस क्षेत्र में आए। चार पूर्व की ओर गए और तीन रायगढ़ जिले में रह गए। यह तीन भाई तात्कालिन देश राजा से य्द्ध हेतु निकले। एक भाई के सिर का कपड़ा पेड़ से अटक गया। वह इसे अशुभ लक्षण मान वन गमन कर गया। शेष दो ने राजा को हरा दिया। उन्हे वापसी में तीसरा भाई वन में चोप काटते दिखा। वे उसे बिरहोर अर्थात जंगल का आदमी या चोप काटने वाला कहने लगे। उनकी बोली बिरहोरी में, बिर अर्थात वन और होर अर्थात मानव है।[29] वन में रहने वाले मानव को बिरहोर कहा गया।

बिरहोर कुड़िया (झोपड़ी) में रहते हैं। कुड़िया लकड़ी और घास-फूस की बनती है और मात्र एक कमरे की होती है।[30]

बिरहोर घर में धान कूटने का मूसल, चटाई, बाँस की टोकरी, टोकरा, सूपा, मिट्टी और एल्युमीनियम के कुछ बर्त्तन, तीर-कमान, कुल्हाड़ी, मछली पकड़ने का जाल आदि ही होता है। इनके पास ओढ़ने-बिछाने के पर्याप्त साधन नहीं हैं। सामान्यतः यह लोग पैरा बिछा कर सोते हैं। ठंड में पूरा परिवार अलाव में आग जला कर उसके चारों ओर सोता है।

पुरूष मात्र लंगोट या छोटा पंछा और महिलाएँ मात्र लुगड़ा पहनती थीं। स्त्रियाँ पीतल या गिलट का पटा या ऐंठी, माला, खिनवा (कान), फूली (नाक) आदि आभूषण पहनती हैं।

---

[26] नवल शुक्ल-आदिवासी साहित्य की उपस्थिति (तदभव-दलित विशेष अंक) (http://www.tadbhav.com/dalit_issue/aadibasi_sahitya.html#adibasi)

[27] अर्थात कोल जनजाति से व्युतपत्ति और सम्बद्ध

[28] छत्तीसगढ़ अभिलेख प्रभाग में उपलब्ध बिरहोर जनजाति का सन्क्षिप्त मानवशास्त्रीय अध्ययन (मोनोग्राफिक अध्ययन)

[29] मध्य प्रदेश आदिम जाति अनुसन्धान संस्थान,भोपाल की पुस्तिका बिरहोर जनजाति(पी.सी.काबरा)

[30] छत्तीसगढ़ अनुसन्धान और प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की पुस्तिका(टी.के.वैष्णव-छ.ग.की आदिम जनजातियाँ)

इनके भोजन में चावल या कोदो का पेज; बेलिया, कुल्थी या उड़द की दाल; जनगली कन्द, मूल और ऋतु शाक; मुर्गी, बकरा, खरगोश, हिरण, सुअर, बन्दर, जंगली पक्षियों का माँस; महुआ शराब आदि सम्मलित हो सकते हैं। इनके पास प्रमुख खाद्य कम ही होते थे। यह लोग जंगली कन्द- नाकौआ कांदा, डिटे कांदा, पिठास कांदा, लागे कांदा आदि को उबाल या भून कर खाते हैं। वर्षा में मछली भी पकड़ते हैं।

बिरहोर लोग शिकार, वन से कन्द-मूल-शाक और अन्य उपज संग्रह पर निर्भर हैं। इनका पारम्परिक हस्तशिल्प कार्य भी है, जिसका उल्लेख ऊपर आ चुका है।

बिरहोरों में उपजाति नहीं है। पर घुमंतु लोग उधलू और स्थाई निवास करने वाले जघीस कहे जाते हैं। बहिर्विवाही गोत्र हैं। इनके गोत्र हैं- सोनियल गातिया, बन्दर गातिया, बघेल, बाड़ी, कछुआ, छतेर सोनवानी, मुरिहार आदि।

प्रसव काल में स्त्री को पृथक कुड़िया (झोपड़े) में रखा जाता है और वह प्रसवोपरांत एक माह तक वहाँ रहती है। सजातीय कुसेरू दाई प्रसव कराती है। सातवें दिन शुद्धि का स्नान करा सूर्य दर्शन कराते हैं। शराब सेवन करते और कराते हैं।

लड़कों हेतु विवाह की सामान्य उम्र 16-18 और लड़कियों हेतु 14-16 है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। विवाह तय होने पर वर पिता वधु पिता को दो खंड़ी चावल, पाँच कुड़ी दाल, दो हड़िया शराब, वधु हेतु लुगड़ा और भायसारी देता है। बिहोर ढ़ेड़ा (पुजारी) विवाह रस्म सम्पन्न कराता है। ढूकू, उढ़रिया (भाग कर प्रेम विवाह), गोलत (विनिमय) विवाह मान्य हैं। सभी स्त्रियों (सधवा या विधवा) को दूसरे व्यक्ति से पुर्विवाह को भी मान्यता है।

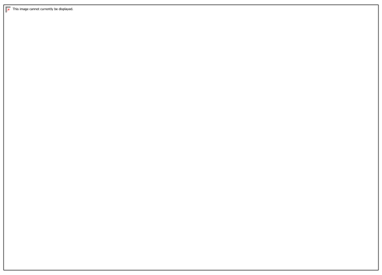

चित्र 2 - बिरहोर स्रोत-panoramio.com

पारम्परिक जाति पंचायत है। इसके प्रमुख को मालिक कहते हैं। इसमें ढूकू विवाह, सहपलायन, सधवा नारी द्वारा पहले पति को छोड़ दूसरा विवाह करने पर सूक वापस करना, अनैतिक सम्बन्ध आदि के विवाद निराकृत्त किए जाते हैं।

बिरहोर जनजाति के प्रमुख आराध्य सूर्य हैं। अन्य आराध्य हैं- बूढ़ी माई, मरी माई, (पूर्वज) पहाड़, वृक्ष आदि। पूजा बलि और शराब के साथ ही होती है।

भूत, प्रेत, जादू, टोना, तंत्र, मंत्र आदि मानते हैं। तंत्र-मंत्र और जड़ी-बूटी जानने वाले को पाहन कहते हैं। अन्य जनजातियाँ बिरहोर लोगों को जादू-टोना करने में प्रवीण मानती हैं और इस कारण से उनसे डरती हैं।

प्रमुख त्योहार हैं- नवाखाई, दशहरा, सरहुल, करमा, सोहराई, फगुआ आदि।

बिरहोरों में करमा, फगुआ, बिहाव नाच आदि लोक नृत्य और गीत हैं। प्रमुख वाद्य हैं- मांदर, ढ़ोल, ढ़फली आदि।

वर्ष 2001 की जनगणना में बिरहोर जनजाति में पुरूष साक्षरता का प्रतिशत 25.43 और महिलाओं में 14.84% था।

विकास कार्यक्रमों, शिक्षा, संचार, यातायात, बाह्य सम्पर्क आदि के विस्तार से बिरहोर लोगों में भी थोड़ा परिवर्त्तन आया है। अब स्थाई झोपड़ी बना कर रहने लगे हैं। वस्त्र विन्यास, खान-पान आदि में विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ है। कुछ लोग अति अल्प खेती भी करने लगे हैं और मोटा साठी धान, मक्का, कोदो आदि उगाते हैं। लोककला और हस्तशिल्प में भी अल्प बदलाव ही है।

बिरहोर जनजाति में गरीबी, शिक्षा की कमी, अन्धविश्वास, अस्वछता, रोग, कुपोषण आदि व्याप्त है।

5 बैगाः-

बैगा जनजाति छत्तीसगढ़ की विशेष पिछड़ी जनजाति है। यह लोग राज्य में, 2001 में, 69,993 थे। यह राज्य की कुल जनजातिय जनसंख्या का 1.06% है। प्राँत में बैगा लोग रायपुर सम्भाग के कबीरधाम (कवर्धा) और राजनाँदगाँव; बिलासपुर सम्भाग के के बिलासपुर और सरगुजा सम्भाग के कोरिया जिले में रहते हैं। यह माना जाता है कि, वर्त्तमान में ***छत्तीसगढ़ राज्य में रह रही समस्त जनजातियों और जातियों में बैगा ही सबसे पुराने हैं। अर्थात वे ही सबसे पहले इस क्षेत्र में आए।*** उनका आगमन छोटा (चुटिया) नागपुर क्षेत्र से हुआ। स्वभाविक है कि सरगुजा का क्षेत्र उनका प्रथम आवास बना।

बैगा जनजाति की उत्पति के विषय में आधुनिक शोध नहीं हुए हैं। रस्सेल्ल[31] और ग्रियसन[32] का मानना है कि, बैगा जनजाति भूमिया (भूईंया) का एक पृथक समूह है।

बैगा किवन्दंती के अनुसार, ब्रह्मा ने सृष्टि रचना हेतु दो व्यक्ति उत्पन्न किए। एक को नागर (हल) दिया और वह खेती करने लगा। वह गोंड़ हुआ। दूसरे को टंगिया (कुल्हाड़ी) दी और वह वन काटने गया। अनुपलब्धता के कारण उसने वस्त्र धारण नहीं किए। वह नंगा बैगा कहलाया। इसके वंशज बैगा कहलाए।[33]

बैगा लोग दुर्गम पहाड़ी और वन क्षेत्रों में रहते हैं। यह लोग मिट्टी से बने और घास-फूस या खपरैल से छाए गरों में रहते हैं। दीवार पीली या श्वेत मिट्टी से करते हैं। फर्श महिलाओं द्वारा मिट्टी या गोबर से लीपा जाता है। घर पर कोठी (अन्न भण्डारण), मूसल (धान/अन्न कुटाई), बाहना, जाता (अन्न पिसाई), बाँस टोकरी, सूपा, मिट्टी-एल्युमीनियम-पीतल के थोड़े बर्त्तन, ओढ़ने-बिछने के कपड़े, तीर-धनुष, टंगिया, कुमनी (मत्स्य आखेट), दुट्टी, ढोल (वाद्य), नगाड़ा, टिसकी आदि होते हैं।

बैगा महिलाओं में गोदना हस्तशिल्प गुदवाने की परम्परा है। यह सामान्यतः हाथ, पैर और चेहरे पर गुदाया जाता है। पुरूष मात्र लंगोट या पंछा और महिलाएँ घुटने तक आने वाला लुगड़ा पहनती हैं। पुरूष, अब बंड़ी भी पहनने लगे हैं। महिलाएँ गिलट या नकली चाँदी की करधन, रूपिया माला, चेन, सुतिया, काँच चूड़ी, ऐंठी (कलाई), लौंग, खिनवा (कान), कर्णफूल आदि पहनती हैं।

इनके खाद्य चावल, कोदो, कुटकी- की पेज या भात; उड़द, मूँग, अरहर- की दाल; ऋतु शाक; वनीय कन्द, मूल, फल; मुर्गा, मछली, बकरा, केकड़ा, खरगोश, वनीय सुअर, वन पक्षी, हिरण आदि- का माँस सम्मलित है। महुए से स्वयं द्वारा निर्मित शराब पीते हैं। पुरूष तम्बाकू को तेन्दू पत्ते में लपेटकर चोंग़ी बना कर पीते हैं।

बैगा लोग पहले स्थानांतरीय बेवर कृषि करते थे। अब पहाड़ी ढ़लान पर स्थाई कृषि भी करने लगे हैं। इसमें वे कोदो, मक्का, मड़िया, साढी धान, उड़द, मूँग, झुरगा आदि उगाते हैं। जंगली कन्द-मूल, तेन्दूपत्ता, तीखुर, बेचांदि आदि एकत्र कर बेचते हैं। पहले जंगली जानवरों का अधिक शिकार भी करते थे। वर्षा में मछली पकड़ते हैं।

---

[31] The Cast and Tribe of Centeral Province and Berara

[32] जाति आधारित जनगणना

[33] वेरियर आल्विन-द बैगा

बैगा लोग पारम्परिक हस्तशिल्प व्यवसाय में हैं। बैगा महिलाएँ बाँस हस्तशिल्प से सूपा, टोकरी आदि बनाती हैं।

बैगा लोगों में विवाही उपजातिया हैं। यह हैं- बिंझवार, भारोटिया, नरोटिया, रामभैना, दुधभैना, कोड़वान या कुड़ी, गोंड़भैना, कुरका बैगा, सावत बैगा, आदि। यह उपजातियाँ बहिर्विवाही गोती या गोत्र में विभक्त हैं। यह हैं- मरावी, धुर्वे, मरकाम, परतेती, तेकाम, नेताम आदि। प्रत्येक गोत्र के टोटम हैं। बैगा जनजाति पितृवंशी, पितृसत्तात्मक और पितृनिवास स्थानिय है।

प्रसव घर पर सुनमाई (दाई) कराती है। प्रसूता को गुड़, सोंठ, पीपर, अजवाईन आदि का लड्डू खिलाते हैं। छठी पर शुद्धि कर कुल देवी या देवता को प्रणाम कराते हैं। घर की लिपाई-पुताई करते हैं। रिश्तेदारों को शराब पिलाते हैं।

लड़को की विवाह उम्र 16-18 और लड-अकियों की 14-16 है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। मामा, बुआ की संतानों के मध्य विवाह होता है। वर पक्ष वधु पक्ष को खर्ची (वधुधन) में चावल, दाल, हल्दी, तेल, गुड़ और रूपए देता है। विवाह रस्म बैगा बुजुर्ग की देखरेख में सम्पन्न होती हैं। लमसेना (सेवा विवाह), चोरी विवाह (सह पलायन), पैढू (घुसपैठ), गुरावट (विनिमय) और खोड़नी (पुनर्विवाह) को मान्यता है।

मृतक को दफनाते हैं। तृतीय दिन साफ सफाई कर शुद्धि करते हैं। पुरूष सिर, दाढ़ी, मूँछ काटते हैं। दसवें दिन दसकर्म करते हैं। मृत्यु भोज देते हैं।

बैगा लोगों में पारम्परिक जाति पंचायत है। इसमें मुकद्दम, दीवान, समरथ और चपरासी आदि पदाधिकारी होते हैं। विवाह विवाद (पेठू, चोरी, तलाक, अनैतिक सम्बन्ध अदि) इसी में निराकृत्त होते हैं। सामाजिक भोज और जुर्माना जैसे पारम्परिक तरीके अपनाए जाते हैं।

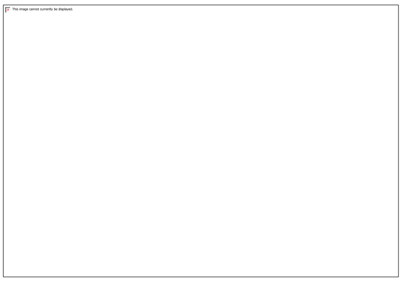

चित्र 3 - बैगा ग्राम स्रोत-gutenberg.org

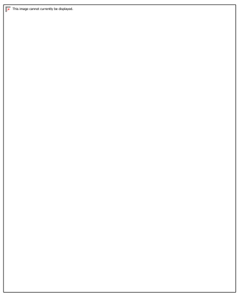

चित्र 4 – गोदना और आभूषण के साथ बैगा महिला स्रोत-kamat.com

बैगाओं के आराध्य हैं- बूढ़ा देव, ठाकुर देव, नारायण देव, भीमसेन, धनशामदेव, धरती माता, ठकुराईन माई, खैर माई, रात माई, बाघ देव, बूढ़ी माई, दुल्हा देव अदि। बलि देते हैं। नारिय ल और दारू से भी पूजा सम्पन्न करते हैं।

इनके त्योहार हैं- हरेली, पोला, नवाखाई, दशहरा, काली चौदस, दीवाली, करमा पूजा, होली आदि। जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत आदि मानते हैं। इनका पुजारी और भूत-रेत भगाने वाला भूमका कहलाता है।

इनके लोक नृत्य हैं- करमा, बिलमा (विवाह में), झटपट (दशहरा में) आदि। छेरता (नकटा-नकटी) नृत्य नाटिका है। लोक गीत हैं- करमा, ददरिया, सुआ, विवाह, माता सेवा, फाग आदि। लोक वाद्य हैं- मांदर, ढोल, टिमटी, नगाड़ा, किन्नरी, टिसकी आदि।

2001 में इनकी साक्षरता 31.35% थी, जो पुरूषों में 43.87% और महिलाओं में 18.68% थी। यह राज्य साक्षरता से कम है।

विकास के फैलाव ने परिवर्तन भी प्रेरित किया है। स्थाई खेती, खपरैल की छत, पहनावा, खान-पान, रहन-सहन, नौकरी, लोककला आदि ऐसे ही संकेत हैं। बाँस हस्तशिल्प में बदलाव आए हैं।

गरीबी, अशिक्षा, अन्धविश्वास, भोजन और उस पर भी पौष्टिक भोजन की कमी, अन्धविश्वास, अस्वच्छता आदि जीवन को कठिन बनाते हैं। अर्थ प्रमुख समस्या है। खाद्यान्न की कमी ही रहती है।

(दो). अन्य जनजातियाँ :-

विगत पृष्ठों पर छत्तीसगढ़ की पाँच विशेष पिछ्ड़ी जनजातियों पर चर्चा की गई। तीन- बिरहोर, कमार और बैगा- हस्तशिल्प के कार्यों के पारम्परिक व्यवासय को भी अपनाए हुए हैं।

छत्तीसगढ़ की अन्य जनजातियाँ भी, आधुनिक सन्दर्भों में, उन्नत या विकसित नहीं हैं। मात्र यह कहा जा सकता है कि, वे विशेष पिछ्ड़ी जनजातियों से थोड़ा बेहतर स्थिति में हैं। हालाँकि कुछ जनजातियाँ, कुछ अन्य की तुलाना में, तीव्रता से आगे बढ़ रही हैं।

यह बिड़म्बना ही है कि, सम्पूर्ण धरती के किसी भी भाग में, वहाँ रहने वाला प्राचीनतम या कथित मूल निवासी ही सर्वाधिक गरीब और पिछ्ड़ा है। क्या यह मानव के कथित रूप से सभ्य कहलाने पर प्रश्नचिन्ह नहीं खड़ा करता? साथ ही यह प्रश्न भी सामने आता है कि, कथित सभ्य समाज की मुख्य धारा सभ्यता है या कथित मूल निवासियों का सहजपन? जबकी विश्व के सभी मानवों का मूल कोई न कोई जनजाति (काबीला या ट्राईब) ही है। जैसे इसे जनजातिय के उल्लेख तक भी रखें तो भी यह तथ्य उल्लेख में आता है कि, अब पाकिस्तान-अफगानिस्तान सीमा के कबीलियाई (ट्राईब) क्षेत्र में बोली जाने वाली ब्राहुई भाषा द्रविड़ समूह की है और छत्तीसगढ़ में बोली जाने वाली द्रविड़ भाषाओं का उदगम इंगित होती है। इससे यह संकेत लिया गया कि, छत्तीसगढ़ क्षेत्र में द्रविड़ भाषी जनजतियों के पूर्वज सिन्धु क्षेत्र या हिन्दुकुश क्षेत्र से यहाँ आए। पहले कुड़ुख बोलने वालों का समूह लगभग 2,500 वर्षों पूर्व, फिर लगभग 1,500 वर्षों पूर्व गोंडी बोलने वालों का समूह और फिर लगभग 1,200 वर्षों पूर्व परजी बोलने वालों का समूह छत्तीसगढ़ क्षेत्र में आया।[34] संस्कृति विकास के अनुक्रम में गाँडा और पनका जैसी जातियाँ अपनी संस्कृति भूलने के कारण जनजातिय दायरे ही बाहर होती गईं और परधान, ओझा, नागर्ची आदि भी इसी राह पर आ गए।

छत्तीसगढ़ में, सामान्यतः, 31 जातीय समूहों को जनजाति के रूप में मान्य किया गया है। इनमें से ही विशेष पिछ्ड़ी जनजाति की पाँच जनजातियों पर चर्चा की जा चुकी है। शेष 26 जनजातियों पर चर्चा आगे के पृष्ठों पर की जा रही है। यह संख्यात्मक रूप से 27 होगा, क्योकिं गोंड़ में अबूझमाड़िया भी सम्मलित माने जाते हैं।

1. अगरियाः-

अगरिया छत्तीसगढ़ की एक जनजाति है। बिहार में इसे ही **असुर** कहा जाता है। राज्य में 2001 में इनकी जनसंख्या 54,574 थी। यह लोग रायपुर सम्भाग के कबीरधाम (कवर्धा); सरगुजा सम्भाग के सरगुजा, कोरिया और जशपुर तथा बिलासपुर सम्भाग के बिलासपुर जिले में निवास करते हैं।

[34] M.S.Andrpov (1980:18)

अगरिया जनजति की उत्तपत्ति के विषय में एतिहासिक और वैज्ञानिक शोध अभी होने हैं। यह जनजाति भी गोंड़ जनजति से पृथ्क हुआ समूह है। यह द्रविड़ भाषा परिवार से सम्बन्धित है।[35] पहले यह गोंड़ जनजाति की उपजाति रही और कालांतर में इसे पृथक जनजातीय समूह मान लिया गया।[36] यह लोग सरगुजा क्षेत्र में असुर या असुर अगरिया, बिलासपुर क्षेत्र में खंटिया चोक या महाली असुर या महाली असुर अगरिया, रायपुर क्षेत्र में गोड्डुक अगरिया और कुछ क्षेत्रों में केल्हा अगरिया कहलाते हैं। यह लोग अपने को लोहार भी कहते हैं, पर लोहार एक पृथक जाति भी है।

इनकी किंवन्दंति यह है कि, प्राचीन काल में दो गोंड़ भाईयों में विवादोपरांत छोटा भाई वन गमन कर गया। भूख से व्याकुल हो आग जला पास पड़े पत्थरों को उसमें डाल दिया। यह लौह-पत्थर (लौह-अयस्क) था। अतः लोहा गल कर पृथक हो गया। अतः उसने लौह अयस्क को गला कर लोहा अलग करने के कार्य को अजीविका के रूप में अपना लिया। इसके वंशज, आग से जीवकोपार्जन करने के कारण, अगरिया कहलाए।

सामान्यतः अगरिया लोग अन्य स्थानिय जनजातियों के साथ दूरस्थ वन और पहड़ी ग्रामों में निवास करते हैं। इनके घर मिट्टी के और धाँस-फूस या खपरैल की छत वाले होते हैं। इसमें दो से तीन कक्ष होते हैं। मिट्टी की दिवारों को श्वेत या पीत मिट्टी से पोता जाता है। मिट्टी के फर्श को महिलाएँ गोबर या मिट्टी से लीपती हैं। घर में कोठी (अन्न भंडारण), मूसल, ढेकी, चक्की, बाँस टोकरी, सूपा, बर्त्तन (मिट्टी, एल्युमीनियम, पीतल), कपड़े (ओढ़ने, बिछाने, पहनने), लौह भट्टी, धौंकनी, चिमटा, हथौड़ा, हथौड़ी, संसी, छैनी, धनुष-तीर, हंसिया, फावड़ा, कुल्हाड़ी, कुदाल आदि वस्तुए होती हैं।

अगरिया लोग प्रतिदिन स्नान करते हैं। महिलाएँ गुदना हस्तशिल्प गुदवाती हैं। पुरूष पंछा और बंड़ी तथा महिलाएँ लुगड़ा पहनती हैं।[37]

भोजन में चावल, कोदो और कुटकी का भात; मक्का रोटी; मूँग, उड़द, अरहर और कुल्थी की दाल; ऋतु शाक; मछली, मुर्गा, बकरा, हिरण, जंगली सुअर, खरगोश आदि का माँस; महुआ शराब आदि सम्मलित हैं। पुरूष तेन्दूपत्ते में तम्बाकू भर कर चोंगी पीते हैं।[38]

लौह अयस्क से लौह उत्पादन इनका व्यवसाय है। इससे वे हस्तशिल्प उत्पाद यथा- हँसिया, फावड़ा, कुल्हाड़ी, कुदाल, नागर (हल) का लोहा, तीर की नोंक आदि बनाते हैं। इनकी आजीविका और जीवकोपार्जन हस्तशिल्प आधारित है। लौह अयस्क में कोयला मिलाकर, मिट्टी की लगभग 3 फुट ऊँची भट्टी में डाला जाता है। नीचे आग जला कर ताप दिया जाता है। महिलाएँ चमड़े की धौंकनी को पैरों से दबा कर भट्टी को हवा देती हैं। लौह अयस्क से लोहा गलकर अलग होता है। इससे हस्तशिल्प से वस्तुएँ बना कर बेचते हैं। अतः इन्हें, सामान्य बोलचाल में, लोहार पेशे से सम्बन्धित किया जा सकता है। ये लोग बैगा आदिवासियों के लिए विवाह और दूसरे खुशी के समारोहों में जलाये जाने वाले *दीवट* (एक किस्म की

---

[35] R.V.Russell-The Tribes And Castes of the Central Provinces of India, Page 3 (http://books.google.co.in/books?id=H6rOX1nXCJcC&pg=PA3&lpg=PA3&dq=Agaria+tribe&source=bl&ots=kjyAr9mYov&sig=IFok48DpY08pSmoT52_tS4EWLY&hl=en&ei=PcLzS4fIH4PDrAf5q4CTDQ&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=5&ved=0CCcQ6AEwBA#v=onepage&q=Agaria%20tribe&f=false

[36] वारियर एल्विन-द अगरिया

[37] छत्तीसगढ़ अभिलेख प्रभाग की अगरिया जनजाति का सन्क्षिप्त मानवशास्त्रीय अध्ययन(मोनोग्राफिक)

[38]http://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%85%E0%A4%97%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE

संरचना जिसमें बहुत सारे दीपक होते हैं) बनाया करते थे; किन्तु अब लागत बढ़ने और मजबूती कम होने के कारण आंगन को रोशन करने वाले दीपक का उपयोग ही बैगाओं ने बंद कर दिया।[39] दीवट को हस्तकला का बेहतरीन नमूना माना जाता है। हरियाली त्यौहार के मौके पर अगरिया किसान के घर जाकर उनकी खाट, चौखट अथवा देहरी पर छोटी सी कील लगा देते हैं तो उन्हें परिवार के लिए एक दिन का भोजन मिलता है। जंगल की लकड़ियों से ही वे कोयला बनाकर लाते हैं। जब नये औजार बनते हैं तो एक दिन में एक बोरा कोयला खप जाता है और साल भर में उन्हें औसतन 70 बोरे कोयले की आवश्यकता पड़ती है। अब इसकी पूर्ती में वन विभाग कानून के आधार पर आड़े आता है। अपने आप टूटी हुई लकड़ियों का उपयोग भी अब मूल्य विहीन और आसान नहीं रहा। उनकी आजीविका पर कथित आधुनिक विकास का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है।[40] इसके अतिरिक्त वे वनों से कन्द-मूल, महुआ, तेन्दूपत्ता, गुल्ली आदि एकत्र भी करते हैं। जिसके पास कुछ भूमि हो वह मक्का, कोदो, कुटकी उड़द, मूँग आदि की खेती करता है। वर्षा में स्वयं के उपयोग हेतु मछली पकड़ते हैं।[41]

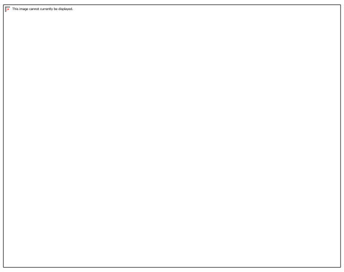

चित्र 5 - अगरिया लौह भट्टी स्रोत-bhaskar.com

अगरिया जनजाति में भी पितृवंशीय, पितृसत्तात्मक और पितृनिवास स्थानिय है। इनमें पथारिया और खूँटिया उपजातियाँ हैं। पथरिया नाम पत्थर पर लोहे को रख कर कूटने से और खूँटिया नाम लौह खूँटी पर रखकर पीटने की हस्त कार्य की क्रिया से जनित हुआ। इनमें बर्हिरविवाही गोत्र हैं। जैसे- मराई, मरावी, सोनवानी, तेकाम, उईके, मरकाम, धुरवा, बघेल, बसेरा, तिलाम, नाग, करेआम, मसराम आदि। प्रत्येक गोत्र में टोटम हैं।

गर्भावस्था में विशेष संस्कार नहीं है। प्रसव स्थानिय बुजुर्ग महिला द्वारा घर पर कराया जाता है। बच्चे की नाल हसिया या चाकू से काटते हैं और वहीं गाड़ देते हैं। जच्चा को महुआ, जामुन और तेन्दू की छाल, अतिगन, पोपोड़, गुड़ आदि का काढ़ा पिलाते हैं। तीसरे दिन भात और अरहर दाल देते हैं। छठी पर शुद्धै करते हैं। स्नान और नव वस्त्र धारण करा देवी-देवता को प्रणाम कराते हैं। रिश्तेदारों को शराब पिलाते हैं।

सामान्यतः लड़कों की विवाह आयु 16-18 और लड़कियों की 15-17 वर्ष है। विवाह का प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। वर पिता वधु पिता को खर्ची (वधुधन) में चावल, दाल, हल्दी, तेल, गुड़, कपड़ा और नगद देता है। विवाह संस्कार परधान या बुजुर्गों द्वारा कराया जाता है। घर जमाई, गुरांवट, मामा या बुआ की संतानों से विवाह मान्य है। ढुकू (घुसपैठ या जबरदस्ती) और उढ़रिया (सह पलायन या भाग कर प्रेम

[39] http://www.merikhabar.com/news_details.php?nid=1638

[40] http://www.merikhabar.com/news_details.php?nid=1638

[41] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान और प्रशिक्षण संस्थान की पुस्तिका-छ.ग. की अ.ज.जातियाँ(टी.के.वैष्णव)

विवाह) में सामाजिक दण्ड दे कर स्विकृति दी जाती है। विधवा और परित्यक्ता का पुर्नविवाह होता है और समाजिक मान्यता है।[42]

मृतक को गाड़ते (दफनाते) हैं। तीसरे दिन तीज नहावन करते हैं। परिवार और रिश्तेदार पुरूष सिर और दाढ़ी-मूछ मुड़ाते हैं। घर की सफाई करते हैं। दसवें दिन भोज देते हैं।

अगरिया लोगों में भी पारम्परिक जाति पंचायत है। इसका प्रमुख गोटिया कहलाता है। इसमें विवाह, तलाक, वधू-मोल्य, अनैतिक सम्बन्ध आदि के विवाद हल किए जाते हैं।

अगरिया लोगो के अराध्य हैं- बूढ़ा देव, लोहासुर, ठाकुर देव, दुल्हा देव, शीतला माता, बाघ देव, जोगनी, धुरलापाट आदि। यह लोग हिन्दू देवी-देवताओं को भी अराध्य मानते हैं। इसके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, पहाड़, नदी, सर्प आदि भी आराध्य हैं।

इनके त्योहार हैं- नवाखाई, दशहरा, दीवाली, होली, करम पूजा आदि। नवाखाई नई फसल आने पर मनाया जाता है। दशहरा में लोहासुर को काले मुर्गे की बली देते हैं। भूत-प्रेत और जादू-टोना में विश्वास है।

यह लोग करम पूजा में करमा, दीवाली में पड़की, विवाह में विवाह नाच नाम नृत्य करते हैं। करमा, ददरिया, सुआ, विवाह, फाग, भजन आदि लोक गीत गाते हैं।[43]

परिवर्तन की बयार अगरिया लोगों तक भी पहुँची है। औद्योगिकीकरण और सामाजिक दबाव ने मुख्य व्यवसाय, लोहा निर्माण, को ही दूर किया है। लोहा बाज़ार से क्रय कर कृषि उपकरण आदि बनाने लगे हैं। हालाँकि इस ओर भी रूझान कम हुआ है। वन काष्ठ से कोयला प्राप्ति कठिनतम भी हुई है। घर, वस्त्र-विन्यास, रहन-सहन, खान-पान आदि में भी परिवर्त्तन आया है। लोक कला तो पर्याप्त प्रभावित हुई है, विशेषकर हस्तशिल्प।

आर्थिक समस्या अधिक है। लौह अयस्क और कोयला प्राप्ति कठिन हो गया है। लोहा बाज़ार से क्रय किया जाने लगा है। उससे बने उपकरण भी, अब, विक्रय योग्य कम रह गए हैं। इस कारण से मजदूरी, वनोपज संग्रह आदि की ओर रूझान बढ़ा है। लोहे से अन्य कलात्मक और सजावटी वस्तुए बनाने की ओर भी आकृष्ट हुए हैं। यह नवाचार है। शिक्षा कमी, गरीबी, अन्ध विश्वास आदि भी समस्याएँ हैं।

2. भैनाः-

भैना जनजाति छत्तीसगढ़ राज्य का आदिवासी समूह है। 2001 की जनगणना में, यह लोग, 46,452 थे। 1911 में इनकी जनसंख्या 17,000 थी।[44] यह लोग बिलासपुर सम्भाग में निवास करते हैं। अधिकांशतः बिलासपुर जिले में और कुछ रायगढ़ जिले में।

---

[42] वारियर एल्विन-द अगरिया

[43] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान और प्रशिक्षण संस्थान की पुस्तिका छ.ग. की अ.ज.जातियाँ(टी.के.वैष्णव)

[44] R.V.Russell-The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Page 306 (http://books.google.co.in/books?id=69W858aghUC&pg=PA306&lpg=PA306&dq=bhaina+tribe&source=bl&ots=dEan0m38gO&sig=Oko325ooHyx8WE7F5S3x4cu0Ws&hl=en&ei=dSj2SCfAoTBcd6P0fcL&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=2&ved=0CBcQ6AEwAQ#v=onepage&q=bhaina%20tribe&f=false)

भैना जनजाति की उत्पति के विषय में एतिहासिक और वैज्ञानिक शोध नहीं हैं। कुछ विद्वान भैना जनजाति को बैगा और कंवर जनजाति से पृथक हुआ समूह मानते हैं। मध्य प्रदेश के मण्डला जिले में बैगा जनजाति में राजभैना उपसमूह भी पाया जाता है। यह भी माना जाता है कि, बैगा और कंवर तथा कुछ अन्य जनजातियों के अनैतिक जाति वाह्य निम्न जाति सम्बन्धों से भैना जनजाति की उत्पति हुई। भैना अपने जादू-टोने के लिए भी जाने गए, जिसके आधार पर भी उन्हें बैगा पुजारियों से जोड़ा गया।[45] बैगा और कंवर जनजाति से उनके सहज सम्बन्ध भी रहे हैं। यह माना जाता है कि, पेंड्रा (बिलासपुर जिला) और फुलझर (रायपुर जिला) के जमीन्दार भैना थे, जो कंवर और गोंड़ जनजाति के जमीन्दार द्वारा प्रतिस्थापित किए गए।

भैना जनजाति के लोगों के घर मिट्टी का बना होता है, जिस पर घाँस-फूस या खपड़े की छत होती है। इसमें एक परछी (बरामदा) और दो से तीन कमरे होते हैं। फर्श गोबर से और दिवार सफेद मिट्टी से लीपते हैं। पशु कोठा पृथक होता है।

घरेलू वस्तुओं में कोठी, चारपाई, कपड़े (ओढ़ने, बिछाने और पहनने के), बर्त्तन (भोजन बनाने और खाने के), कृषि उपकरण, कुल्हाड़ी, ढ़ेकी, मूसल, चक्की, टोकरी, सूपा अदि होते हैं।

प्रतिदिन शौच, दातौन, स्नान आदि करते हैं। पुरूष बाल भी कटवाते हैं। महिलाएँ बाल संवारती और काढ़ती हैं। महिलाएँ चेहरे, हाथ और पैर पर हस्तशिल्प से गुदना गुदवाती हैं। आभूषण भी धारण करती हैं। यह हैं- बिछिया, सांटी लच्छा (पैर), करधन, ऐंठी (कलाई), चूड़ी, पहुँची (बाहु), सुर्रा (गला), रूपिया माला, खिनवा (कान), फूली (नाक) आदि। पुरूष पंछा-बंड़ी, सलूका और धोती-कुर्त्ता और महिलाएँ लुगड़ा और पोलका पहनती हैं।

इनके भोजन में चावल और कोदो के भात की बासी; उड़द, मूँग, अरहर, तिवड़ा, कुल्थी आदि की दाल; ऋतु शाक; मछली, मुर्गा, बकरे आदि का माँस; महुआ शराब आदि सम्मलित हैं।

भैना लोगों का जीवकोपार्जन कृषि, मजदूरी, वन उपज संग्रह आदि पर निर्भर रहा है। इनकी असिंचित कृषि कोदो, धान, उड़द, मूँग, तिवड़ा, तिल, तुवेर आदि तक सीमित है। वनों से तेन्दूपत्ता, तेन्दू, चार, महुआ, गुल्ली, गोन्द, लाख, हर्रा, आँवला आदि एकत्र कर उपयोग करते और बेचते हैं। वर्षा में मछली भी पकड़ते हैं। भूमिहीन लोग मजदूरी पर निर्भर हैं। अब शिकार नाममात्र को रह गया है।

भैना जनजाति भी पितृसत्तात्मक, पितृवंशी, पितृनिवास स्थानिय वंश परम्परा पर ही आधारित है। इनमें चार उपजातियाँ- लारिया (छत्तीसगढ़िया), उड़िया, झलयारा (पर्ण कुटी अर्थात झाला में रहने के कारण) और घटियारा (द्वारा पर घंटी बाँधने के कारण)- हैं। उपजातियाँ अंतःविवाही हैं। उपजातियाँ गोत्र में विभक्त हैं। यह हैं- नाग, बाघ, चितवा, गिधवा, बेसरा, बेन्दरा, लोधा, बतरिया, गबड़, दुर्गाचिया, मिरचा, धोबिया, अहेरा, मनका, मालीन आदि। गोत्र में टोटम हैं, जो कई संज्ञाओं से भी स्पष्ट हैं।[46]

गर्भावस्था में संस्कार नहीं हैं। प्रसव सुन्नदाई द्वारा कराया जाता है। नाल चाकू या ढलेड़ से काट घर में गाड़ते हैं। प्रसूता को तिल, सोंठ, गुड़, पीपल, अजवायन, घी, नारियल आदि का लड्डू खिलाते हैं। छठी को शुद्धि करते हैं। पुरूष भी बाल कटाते और दाढ़ी बनवाते हैं। जच्चा-बच्चा को नहला कर कुल देवी-देवता को प्रणाम कराते हैं। रिश्तेदारों को भोज कराते और दारू पिलाते हैं।

भैना लड़कों की सामान्य विवाह आयु 16-18 और लड़कियों की 15-17 है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। वर पक्ष वधू पक्ष को चावल, दाल, तेल, गुड़, कुछ नगद सूक (वधु मूल्य) देता है। विवाह के चार सोपान हैं- मंगनी, फलदान, बिवाह और गौना। पहले विवाह जाति के बुजुर्ग कराते थे, अब ब्राह्मण भी बुलाने लगे हैं। इस जनजाति में विनिमय, सेवा विवाह, सहपलायन, घुसपैठ, पुर्नविवाह और देवर-भाभी पुर्नविवाह मान्य है।

---

[45] R.V.Russell-The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Page 306

[46] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियाँ(डा.टी.के.वैष्णव)

मृतक को गाड़ते (दफनाते) हैं। तृतीय दिवस मुण्डन कराते हैं। तेरहवें दिन पूर्वज पूजा कर भोज देते हैं।

इनमें भी पारम्परिक जाति पंचायत है। इसका प्रमुख गौंटिया कहलाता है। इसमें वधू धन निर्धारण, विवाह, तलाक आदि के विवाद निराकरण, अनैतिक सम्बन्ध नियंत्रण, पूजा व्यवस्था अदि कार्य होते हैं।

भैना लोगों के प्रमुख आराध्य हैं- ठाकुर देव, बूढ़ा देव, गोरईया देव, भैसासुर, शीतला माता आदि। इसके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, पहाड़, नदी, वृक्ष, बाघ, नाग सहित हिन्दू देवी-देवाता भी आराध्य हैं। पूजा में बकरा या मुर्गा बलि भी करते हैं। भूत-प्रेत, जादू-टोना पर विश्वास है। यह लोग जादू, मंत्र आदि के जानकार को बैगा कहते हैं।

इनके प्रमुख त्योहार हैं- हरेली, तीजा, पोला, पितर, नवाखाई, दशहरा, दीपावली, होली आदि हैं।

इन लोगों में प्रचलित नृत्य हैं- करमा, रहस, रामधूनी, बिहाव नाच आदि। परचलित गीत हैं- करमा, ददरिया, रहस, भजन, सुआ, बिहाव आदि।

साक्षरता का प्रतिशत 12 है। महिला साक्षरता नगण्य है।

क्रमिक विकास या समय अनुक्रम में परिवर्त्तन की हवा ने भी प्रभावित किया है। खेती विधि, वस्त्र-विन्यास, रहन-सहन, खान-पान, कलाएँ आदि इससे प्रभावित हुए हैं।

अर्थ समस्या को और बढ़ाता है। शासकीय योजनाओं के कारण भोजन जुटा पाते हैं, अन्यथा वर्ष भर खाने का इतज़ाम नहीं होता है। शिक्षा और रोगोपचार की कमी, अन्ध विश्वास, कुपोषण की समस्याएँ तो साथ में हैं हीं।

3. भूमियाः-
(या भुईहर, पालिहा, भारिया, भरिया, भूमिया, भूइयाँ, भूईंहर पाँडो आदि)

भारिया जनजाति द्रविड़ समूह से विकसित हुआ जनजातिय समूह है। यह लोग पृथ्क- पृथ्क क्षेत्रों में पृथ्क-पृथ्क नाम से जाने जाते हैं। यथाः-

- मध्य प्रदेश में:-
  - > छिन्दवाड़ा और सिवनी जिलों में- भारिया,
  - > जबलपुर, मण्डला और शहडोल जिलों में- भूमिया आदि;
- छत्तीसगढ़ में:-
  - > बिलासपुर में- भूमिया,
  - > कोरिया, सरगुजा, रायगढ़ और बिलासपुर जिलों के कुछ भागों में- भूईंयां या भूईंहर
  - > सरगुजा और बिलासपुर के कुछ भागों में इनकी कुछ अधिक पिछड़ी उपजाति- पाण्डों या पंडो।

इन सभी में आपसी विवाह सम्बन्ध नहीं हैं।

2001 की जनगणना में भूमिया लोगों की जनसंख्या 88,981 थी। छिन्दवाड़ा पातालकोट में यह लोग भारिया कहलाते हैं और वे वहाँ विशेष पिछ़ड़ी जनजाति है।[47] सरगुजा आदि में पण्डो भी अत्यधिक पिछडे हैं, हालाँकि वे यहाँ विशेष पिछ़ड़ी जनजाति नहीं हैं।

भूमिया का अर्थ है- भू स्वामी या भूमि धारक। यह लोग ग्राम देवता के पुजारी होने के कारण भूमिया कहलाए।[48]

---

[47] डा.संजय अलंग-पातालकोटःएक अध्ययन,पृ.10

[48] R.V.Russell-The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Page 242-250

इनकी उत्तपति और विकास पर भी एतिहासिक और वौज्ञानिक शोध होने हैं। किंवन्दंती में वे अपने आप को पाँडवों से जोड़ते हैं। महाभारत युद्ध में अर्जुन ने भरू घाँस को, मंत्र द्वारा, सैनिक बनाया गया और उसने युद्ध में भाग लिया। उसे ही भुईंहर लोग अपना पूर्वज मानते हैं। यह भी कहा जाता है कि, महादेव द्वारा भूमि निर्माणोंपरांत त्रिशूल द्वारा अन्य आंतरिक निर्माण यथा- नदी, पहाड़, पेड़, जंतु आदि किए गए। इसी अनुक्रम में, भूमि उपयोग हेतु, मानव नर-मादा सृजित किए गए। इनकी संततियों में से एक पुत्र भूमि और देव पूजा के कार्य में लगा और भूमिया कहलाया। इनकी संज्ञा उत्तपति के प्रसंग में भी यह तथ्य आता है। अन्य पुत्र कृषि कार्य में लगे और उनसे गोंड़, कोल आदि हुए।

आर.व्ही.रस्सेल्ल इन्हें भार जनजाति से व्युत्पन्न मानते हैं।[49] भार जनजाति का शासन दहाल राज्य (जबलपुर क्षेत्र का मूल नाम) में 1040 से 1080 ई. में था। क्रुक इन्हें द्रविंड़ मूल का मानने के साथ चेरों और सिंओरिओं के निकट मानता है। हालाँकि वे सामान्यतः गोंड़ों के अधिक समीप हैं। ड्रायडेल इसी आधार पर, उन्हें, कोलेरियन और मुण्डा समूह के अधिक समीप मानता है। रघुवीर प्रसाद भी इनके कोलवंशी होने का ही उल्लेख करते हैं और साथ ही यह भी उल्लेखित करते हैं कि, यह लोग अपनी मूल बोली भूल गए हैं।[50]

भूमिया लोग मध्य प्रदेश के छिन्दवाड़ा और सिवनी जिलों में गोंड़, परधान और ओझा; जबलपुर, मण्डला और शहडोल जिलों में बैगा, कोल, गोण्ड आदि और छत्तीसगढ़ के कोरिया, बिलासपुर, सरगुजा और रायगढ़ जिलों में धनवार, गोंड़, कंवर, उराँव, मुण्डा, खारिया, कोन्ध आदि जनजतियों के साथ निवास करते हैं।[51] उत्तर छत्तीसगढ़ में यह लोग प्राचीनतम निवासी हैं। कोरिया आदि जिलों में इन्हें मूल निवासी माना जाता है।[52]

इस जनजाति के लोगों के घर भी मिट्टी के बने होते हैं, जिस पर घाँस-फूस या खपरैल की छत होती है। दीवार और फर्श, दोनों, गाय के गोबर से महिलाओं द्वारा लीपे जाते हैं। घर में अनिवार्यतः दो दरवाजे रखते हैं। एक से रजस्वला स्त्री ही आती-जाती है।[53] वह इन दिनों भूमि पर सोती है। वह अशुद्ध समझी जाती है। पुरूष उन्हें छू लें तो 21 दिन तक अशुद्ध माने जाते हैं। पशुओं हेतु स्थान पृथ्क होता है।

इनके घरों में उपयोग की सामान्य वस्तुएँ ही होती हैं। यथा- कोठी, चक्की, मूसल, बाँस टोकरी, मिट्टी और एल्युमीनियम बर्त्तन, कपड़े, कुछ कृशि उपकरण, कुल्हाड़ी, कुमनी (मछली पकड़ने को), चोरिया (मछली हेतु) आदि।

भूमिया महिलाएँ मस्तक, हाथ, पैर, कपोल, ठुड्डी, गले आदि पर हस्तशिल्प से गुदना गुदवाती हैं। पैडी (पैर), तोड़ा, चूड़ी, कंकना (हाथ), गुलेठा (हाथ), ऐंठी (हाथ),, बहोटा (बाँह), पहुँची (बाँह), हमेल (गला), सरिया (गला), हंसली, उमेठा (कान), खिनवा (कान), लौंग आदि इनके आभूषण हैं। सभी जनजातियों की तरह, इनके आभूषन भी महंगी धातुओं के नहीं बने होते हैं।

पुरूष धोती, पंछा, बंडी और कभी-कभी कुर्ता तथा महिलाएँ पोलका और लुगड़ा पहनती हैं।

इनके भोजन में मक्का और ज्वार की रोटी, कोदो और चावल का भात, वनीय कन्द-मूल-शाक, स्थानिय दाल सम्मलित है। माँसाहारी हैं। मुर्गी, तीतर, बटेर, हरिल, मछली, केकड़ा, कछुआ, बकरा, सुअर, हिरण आदि का माँस खाते हैं। रजस्वला स्त्री को मिट्टी पात्र या पत्तल में भोजन देते हैं और इन्हें, भोजनोपरांत, फेंक देते हैं। गर्भवती महिला को खटाई और मिर्च खाने की मनाही है। जच्चा को वर्ष भर हरी शाक नहीं खिलाते हैं, क्योंकि यह लोग यह मानते हैं कि, इससे उसका दूध कमजोर हो जाएगा।[54]

---

[49] R.V.Russell-The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Page 242-243

[50] रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड-झनकार,पृ.99

[51] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ।

[52] डा.संजय अलंग-कोरिया रियासत का प्रशासनिक अध्ययन,पृ.19

[53] रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड-झनकार,पृ.101

[54] रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड-झनकार,पृ.101

इनका जीवकोपार्जन पहाड़ी ढ़लान पर की जाने वाली आदिम बेवर (पेड़-झाड़ी गिरा जला देना) और डाही (पेड़-झाड़ी की शाखाएँ मात्र काटना और खेत में फैला कर जलाना) कृषि और वनोपज संग्रह पर निर्भर है। हल चला कर खेती नहीं करते हैं। कृषि उपज कम है। वह भी मात्र मक्का, ज्वार, कोदो, कुटकी, कुलथी आदि तक ही सीमित है। अधिकांश वनोपज संग्रह भी पूस-माघ तक सीमित रहता है। शिकार के लिए हाँका करते हैं। मछली मारने के लिए थूहे का दूध छोड़ देते हैं। मछली मारने का एक अन्य तरीका यह अपनाते हैं कि, रात में मशाल का प्रकाश कर मछलियों को आकर्षित कर बर्छी, फर्सी या डंडे से मारते हैं। अब मजदूरी भी करने लगे हैं।[55]

भूमिया जनजाति में पृथ्क-पृथ्क क्षेत्रों में पृथ्क-पृथ्क उपजाअतियाँ हैं और उनके नाम भी अलग-अलग हैं। इन उपजातियों में विवाह सम्बन्द्ध नहीं हैं। यह हैं- भूमिया, भारिया, (भरिया), भुईया, भुईंहर, पण्डो आदि। प्रत्येक उपजाति में गोत्र भी अलग-अलग हैं। उदाहराणार्थः- भारिया (छिन्दवाड़ा) में- कुमरा, उइका, तेकाम, परतेती, पेदराम, सरेआम, भलावी, धुर्वा, नगदरिया, दाढ़ोलिया, पहाड़ी ओलिया, पचेलिया, गोवालिया, खमरिया, रावतिया, ढ़करिया, बचलिया, भर्तीया आदि। भूमिया (मण्डला) में-वाडिया, दारकुर, धुर्वा, जिकराम, कवाची, औंचौ, कारेआम, हसरा, मरावी, मरकाम, पिडौवा, पेटोटिया, पेड्रो, पोटा, टेकाम, सुखाम आदि। प्रत्येक गोत्र के अपने पृथ्क टोटम हैं।

यह जनजाति भी पितृवंशीय, पितृसत्तात्मक और पितृनिवास स्थानिय होती है।

इनकी अपनी बोली लुप्त हो गई है। छत्तीसगढ़ी हिंदी पर आश्रित बोली बोलने लगे हैं। प्रथाएँ भी हिन्दुओं से ग्रहण करते हैं।

वयस्क विवाह है, पर विवाह प्रथा अन्य जातियों और जनजातियों से अलग है। ममेरे और फूफेरे भाई-बहनों में विवाह होता है। वर पिता दो बोतल शराब और कुछ नगद रूपयों के साथ विवाह प्रस्ताव रखता है। सहमति पर लड़की के साथ वापस आता है। वह लगभग एक पखवाड़े अपने भावी पति के घर रहती है और यदि उसका प्रेम लड़के से नहीं हुआ तो लड़की को वापस पहुँचा दिया जाता है। यदि प्रेम हो गया तो वर पिता इस नव युगल को लेकर वधु घर जाता है और वधु पिता को पुनः शराब और धन देता है। उसी समय लड़का लड़की को चूड़ी पहना देता है। कुछ दिन यह सभी लोग वधु घर में उसके पिता के अतिथि रहते हैं। तब वधु पिता वर पिता से कहता है कि, बहू को ले जा और चार-पाँच दिन में वापस कर देना। तब उत्तर मिलता है कि, अच्छा लड़की ले जाता हूँ, जब सुविधा होगी शादी करूँगा। वर पिता नव-दम्पति को लेकर वापस आ जाता है। यदि लड़की की कोई बहन हुई तो वह भी साथ जाती है। घर पहुँच कर नव-दम्पति को काठ पटे खड़ा कर माँ और बहन पैर धोते हैं और घर प्रवेश करा देवताओं को प्रणाम कराते हैं। इसी दिन समुदाय भोज दिया जाता है। छठवें दिन लड़का लड़की को उसके घर पहुँचा आता है। साथ में अन्न, शराब और धोती ले जाता है। कुछ दिन वहीं रहता है। वधु पिता कुछ कपड़े देता है। अब विवाह के व्यय सहित विवाह की तैयारी की जाती है। सब व्यवस्था हो जाने पर इस जाति का कोई सयाना व्यक्ति शराब, तिल या सरसों और हल्दी लेकर लड़की के घर जाता है। अब मण्डप, विवाह आदि की तिथी नियत होती है। निश्चित विवाह तिथी को बारात जाती है। बारात के साथ नगद, लड़की और उसकी बहनों के लिए धोतियाँ, लड़की की माँ के लिए नगद और लड़की के मामा के लिए धोती जाती है। गाँव-घर वालों की अगवानी पश्चात समधी गले मिल एक कम्बल पर बैठाते हैं और एक-दूसरे को रूपिया देते हैं।अब वर-वधू को पीले वस्त्र पहना मण्डप में आया जाता है। वधू भाभी गाँठ बाँधती है और नेग लेती है। नव-दम्पति सात फेरे इस भाभी के साथ ही लेते हैं। फेरे में लड़की की भाभी के पीछे वधू और उसके पीछे वर चलता है। भाभी ही वधू को सिन्दूर लगाती है और वर का सिर ओढ़नी से ढ़क देती है। तदुपरांत खिचड़ी लाकर, युगल को, खिलाती है और विवाह की क्रिया पूर्ण करती है। अब बारात के साथ लाया गया सामान लड़की की माँ या नानी को दिया जाता है। अब भोज होता है। अगले दिन लड़की की विदाई की जाती है।[56]

---

[55] डा.संजय अलंग-कोरिया रियासत का प्रशासनिक अध्ययन

[56] रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड-झनकार,पृ.100-101

घर जमाई, घुसपैठ, सह पलायन, विनिमय विवाह मान्य हैं। विधवा और परित्यक्ता का पुर्नविवाह मान्य है।

बच्चा पैदा होते ही चावल, चुन (कोढ़ा-भूसा) से उपटन करते हैं। छुरी से नाल काट कनारी आदि घड़े में रख छीन्द वृक्ष के नीचे गाड़ देते हैं। घर में किसी पूर्वज ने जन्म लिया है या नहीं और किसने लिया है? यह सब जानने को बैगा को बुलाते हैं। वह दिया जलाकर एक-एक पुरखे के नाम का चावल निकालता है, जिसके नाम का चावल तीन भागों में बँट जाए बच्चा उस पूर्वज का अवतार माना जाता है। जच्चा को गुड़, सोंठ, अजवाईन, पीपर आदि से बना सूतक पिलाते हैं। छठी पर शुद्धी कर भोज देते हैं।

मुर्दों को गाड़ते हैं। दस दिन तक अशुद्ध समझे जाते हैं। दसवें दिन मुर्गी काट कर उसका रक्त कन्धों पर लगा कर शुद्ध होते हैं।

इनमें पारम्परिक जाति पंचायत है। इसका प्रमुख मुखिया कहलाता है। इसमें अनैतिक सम्बन्ध, अंतर्जातीय सम्बन्ध, विवाह विवाद, विवाह-विच्छेद आदि के वाद निराकृत्त किए जाते हैं। अराध्यों की पूजा की व्यवस्था भी जाति पंचायत करती है।

भूमियाँ या भुईंहार लोग काले या श्वेत पत्थर को वृक्ष के नीचे रख उसे बड़ावन देवता की संज्ञा दे अराधना करते हैं। बकरे की बली देते हैं। उसका चमड़ा तक खा जाते हैं। फाल्गुन प्रतिपदा को पाँडवों की पूजा करते हैं। पाँचो पाँड़वों को होम देकर मुर्गी की बली दे उसका माँस खाते हैं। अन्य आराध्य हैं- हरदूल लाला, मठुआ, पनघट, भीमसेन, धुर्लापाठ, बाघदानो, जोगनी, खैरमाई, मेढ़ोदेव, चंडीमाई, बूढ़ादेव, ठाकुरदेव, भैसासुर, सभी हिन्दू देवी-देवता, सूरज, नदी, पहाड़, वृक्ष, नाग आदि। पीपल और बड़ वृक्ष में भूत-प्रेत का निवास मान उसमें सिन्दूर, टिकली, चूड़ी आदि चढ़ा कर पूजते हैं।

भूत-र भूमका कहलाता है। वह रोगोपचार भी जड़ीटोना आदि मानते हैं। इसका जानका-जादू ,प्रेत-टोने से करता है। बैगा सूपे में जलता दिया लेकर हिला हिला कर मंत्र पढ़ता है। यदि रोगी -बूटी और जादू अच्छा होता नहीं दिखता है तो उसको दवा देनी भीबन्द कर देते हैं।

करमा और होलीमा भादों में नहीं मना कुंवार एकादशी को प्रमुख त्योहार हैं। यह लोग कर ,इनके , गाते हैं। -रोटी खा कर शराब पी कर रात भर नाचते-मनाते हैं। दिन में उपवास रखते हैं। रात में कुम्हड़ा होली में भी दिन में उपवास करते हैं। रात को म ा ंसाहार कर नाचते गाते हैं। अन्य त्योहार हैं ,बिदरी -नोरता आदि। दशहरा और दीपावली भी मनाते हैं। ,पितर ,पोरा ,आठे ,तीजा ,पंचमी ,जीवति ,अखाड़ी

दीपावली पर शैलाविवाह पर बिहाव आदि नृत्य करते हैं। ,पोला में गुन्नर ,होली पर रहस , महिलाओं का एक नृत्य पड़की भी है।

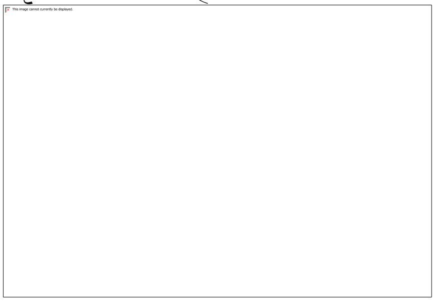

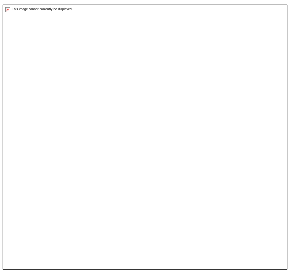

चित्र 6 - भूमिया घर और 7 - भूमिया वृद्धा

दोनों चित्रों का स्रोत्त-flickr.com

छठी में सूदक, विवाह में विवाह, होली में फाग, दीपावली में अहिराई, ज्वार में सेवा गीत आदि गाते हैं।

साक्षरता अत्यधिक कम है। क्रमिक विकास में पहनावा, खान-पान, रहन-सहन और लोककला थोड़ी बदली है।

जीवकोपार्जन की कठिन परिस्थितियाँ और धनाभाव प्रमुख समस्या है। कभी मात्र कन्द-मूल और माँस ही आहार था। भोजन उपलब्धता ही मुख्य ध्येय रहा। शिक्षा की कमी और अन्धविश्वास ने समस्या को और मुखर ही किया।

4. भतराः-

छत्तीसगढ़ राज्य में भतरा जनजाति, मुख्यतः, बस्तर सम्भाग के बस्तर जिले में ही रहती है। 2001 में, इनकी जनसंख्या 185,514 थी। उड़ीसा में इन्हें **भोतड़ा** कहा जाता है। इनकी जनसंख्या महाराष्ट्र में भी है।

इनकी उत्पति पर भी एतिहासिक और वैज्ञानिक जीन आदि आधारित साक्ष्यों पर शोध होना है। इन लोगों के अनुसार, इनके पूर्वज बस्तर शासक के पास सेवक के रूप में कार्य करते थे। पहरेदारी और घरेलू कामकाज में विश्वासपात्र होने के कारण भत्तरी कहा गया। इससे भत्तरा और अब भतरा कहलाए। बस्तर या दण्डकारण्य क्षेत्र इनका आदि निवास बना।[57]

भतरा जनजाति के लोग अन्य जनजातियों के साथ, मिट्टी से बने घरों में, ग्रामों में निवास करते हैं, जो कई पारों में बँटे होते हैं। मिट्टी से बने घरों का निर्माण वे स्वयं करते हैं। छत स्थानिय खपरैल की होती है। मकान में चार-पाँच कमरे होते हैं। पशु कोठा पृथक होता है। सामने बैठने का चबूतरा (बरामदा) होता है। पुताई स्थानिय सफेद मिट्टी से करते हैं। मिट्टी के फर्श को प्रति सुबह गाय के गोबर से लीपते हैं।

घर में सामान्यतः चारपाई, चक्की, मूसल, कपड़े (ओढ़ने, बिछने और पहनने के), बर्त्तन (एल्युमीनियम, काँसा, स्टील, लोहा, मिट्टी आदि के), कृषि उपकरण (हल आदि), बैलगाड़ी, कुल्हाड़ी, मत्स्य आखेट का जाल आदि रहते हैं।

स्नान नित्य प्रातः है। दातौन नीम और बबूल की है। महिलाएँ रीठे से सिर धोती हैं। वे बालों में तेल लगा, बालॉ को पीछे कर, जूड़ा बाँधती हैं।

पुरूष गोंछी (धोती) और महिलाएँ अब साड़ी पहनती हैं।

मुख्य भोजन भात (चावल या कोदो का) और पेज है। इसके साथ स्थानिय शाक-भाजी, दाल आदि ले लेते हैं। मछली, मुर्गा आदि खाते हैं। पुरूष तम्बाखू और बीड़ी भी पीते हैं।

पिछड़ी कृषि, वनोपज संग्रह, वन से लकड़ी काटना, कृषि मजदूरी आदि पर अर्थ और जीवकोपार्जन है। कोदो, धान, तिवरा, अरहर आदि ही बोते हैं। सिंचाई नगण्य प्राय है। कृषि पिछड़ी हुई है। उपज कम है। वनों से महुआ, शहद, कोसा, गोन्द, तेन्दूपत्ता, लाख आदि संग्रह कर बेचते हैं। वर्षा में नालों आदि से मछली पकड़ते हैं।

भतरा जनजाति में पीत, अमनीत, सान आदि उपजातियाँ हैं, जो क्रमशः ऊँचे और नीचे माने जाते हैं। इनमें गोत्र हैं- कश्यप, मोहरे, बघेल, नाग (कोरमी), पुजारी आदि। गोतत्रों में टोटम भी हैं।

गर्भावस्था में विशेष संस्कार नहीं है। प्रसव पति घर में होता है। दाई और बुजुर्ग महिलाएँ यह कार्य कराती हैं। नाल घर में गाड़ते हैं। जच्चा को तीन दिनों तक वनीय जड़ी-बूटी और गुड़ आदि का काढ़ा पिलाते हैं। छठी को शुद्धी कर सूर्य और कुल देवी को प्रणाम करते हैं। भोज दे दारू पिलाते हैं।

व्यस्क विवाह है। प्रस्ताव वर पक्ष देता है। यह पक्ष ही धान, दाल, नारियल, हल्दी, सुपाड़ी, वधु-वस्त्र, मिठाई, नगद आदि भी देता है।

पुर्नविवाह, पलायन, विधवा विवाह आदि को सामाजिक दण्द उपराँत मान्य किया जाता है।

---

[57] एस.एस.भण्डारी-भतरा जनजाति

मृत्तक को गाड़ते हैं। कुछ सम्पन्न परिवार दाह भी करते हैं। बच्चे दफनाए ही जाते हैं। दसकर्म पर मुण्ड़न और भोज है।

इनके प्रमुख अराध्य हैं- ठाकुर देव, बूढ़ा बाबा, माती देवी, परदेशिन माता, दंतेश्वरी माई, बूढ़ी माई आदि। हिन्दू देवी-देवता भी आराध्य हैं, विशेषकर हनुमान, शिव और दुर्गा आदि।

भूत-प्रेत, जादू-टोना पर विश्वास है। इसके जानकार को सिरहा कहते हैं।

त्योहारों में हरियाली, नवाखाई, नागपंचमी, दशहरा, होली, दीपावली आदि सम्मलित हैं।

करमा, बिहाव, रामसत्ता आदि नृत्य करते हैं। गौरा, रहस आदि गीत गाते हैं। नवरात्रों पर रामलीला नाटक खेलते हैं।

लोक कथाएँ भी प्रचलित हैं।

शिक्षा अल्प है। क्रमिक विकास से पहनावे, श्रृंगार, खान-पान, रहने के ढ़ंग, शारिरिक स्वच्छता, आवास व्यवस्था, लोककला आदि में परवर्त्तन दिखने लगे हैं।

धनाभाव और अभावग्रस्तता समस्या का केन्द्र है। अन्धविश्वास, कुरीति, कुपोषण आदि से समस्या और बढ़ती है।

5. भुंजियाः-

भुंजिया जनजाति छत्तीसगढ़ प्रांत के रायपुर सम्भाग के रायपुर जिले में प्राचीनतम जनजाति है और इस जिले में इसे इस कारण से मूल जनजाति माना जाता है। सूनाबेड़ा पठार (लगभग 21° 25/ और 21° 30/ उत्तर latitude and 82° 35/ पूर्व longitude) को इनकी मूल भूमि माना जाता है।[58] यह भू-भाग रायपुर जिले की खरियार जमीन्दारी का भाग रहा, जो अप्रैल'1936 तक सेंट्रल प्रोविंस (मध्य प्रांत) के छत्तीसगढ़ सम्भाग के रायपुर जिले का पूर्व-दक्षिण भाग था। यह भू-भाग अब उड़ीसा राज्य के नूआपाड़ा जिले के कोमा विकासखण्ड में है।[59] अब यह लोग रायपुर जिले की गरियाबन्द तहसील तक संकेन्द्रित हैं। यह लोग उड़ीसा के कलाहाँडी जिले में भी हैं। छत्तीसगढ़ में इनकी संख्या कम है। 2001 में यह लोग मात्र 9,357 थे।[60]

भुंजिया जनजाति की उत्तपति, विकास आदि पर एतिहासिक और वैज्ञानिक शोध नहीं हैं। भुंजिया का अर्थ भूमि से उत्तपन्न या भूमि से पैदा करने से सम्बद्ध किया जाता है।[61] के.सी.दुबे इन्हें बस्तर के हलबा लोगों से पृथ्क हुई शाखा मानते हैं, जो धाकारों से झगड़े के कारण इधर आए।[62] यह लोग हलबी बोलते हैं। यह आर्य भाषा के रूप में विकसित हुई और बस्तर में स्थापित हुई। पूरे बस्तर क्षेत्र में भाषाओं का अति और विचित्र संगम हुआ है। छत्तीसगढ़ी हिन्दी, तेलगू, उड़िया, मराठी, कई जनजातिय बोलीयाँ और भाषाएँ- गोंड़ी, गदबा, (मुण्डा) आदि भाषाओं के क्षेत्र और वक्ता होने से हलबी उन सब के मिश्रण की सम्पर्क भाषा के

---

58 http://en.wikipedia.org/wiki/Bhunjia

59 Atik Ahamed Khan-Sunadei - The Epicentre of Bhunjia life(Orissa Review ,September-October – 2007,P.18-20) (http://www.orissa.gov.in/e-magazine/Orissareview/sept-oct2007/engpdf/Pages18-20.pdf)

60 छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ।

61 ए.एल.नाहरिया-भुंजिया जनजाति(पेपर)

62 Atik Ahamed Khan-Sunadei - The Epicentre of Bhunjia life(Orissa Review, September-October – 2007,P.18-20) (http://www.orissa.gov.in/e-magazine/Orissareview/sept-oct2007/engpdf/Pages18-20.pdf)

रूप में सामने आई। हलबा जाति से सम्बन्धता के कारण इसे हलबी की संज्ञा मिली। यह (हलबा) बस्तर शासकों की अंगरक्षक जनजाति थी।

इस जनजाति के लोग अपनी उत्पति की दंतकथा यह बताते हैं कि, चौखुटिया भुंजिया जनजाति हलबा पुरूष और गोंड़ महिला के विवाह से उत्पन्न हुई। रिजले चिन्दा भुंजिया की उत्पत्ति बिंझवार और गोंड़ विवाह से मानते हैं। हालाँकि गोंड़ इस क्षेत्र में बाद में आए, पर भुंजिया लोगों का विवाह सम्बन्द्ध उनसे ही है। उन्होंने उनके अराध्यों और रीति रिवाजों को भी अपनाया।[63] यह लोग गोंड़, कमार आदि के साथ रहते हैं।

भुंजिया लोगों के घर दो-तीन कमरों के होते हैं। पुताई स्थानिय पीत या श्वेत मिट्टी से करते हैं। मिट्टी के फर्श को गाय के गोबर से लीओअते हैं। चौखुटिया भुंजिया लोग राँधा घर अलग से बना, उसकी दीवार लाल मिट्टी सी लीपते हैं। इसकी छत घाँस-फूस की होती है। इसे लाल बंगला भी कहते हैं। यहाँ रसोई के साथ देव स्थान भी होता है। इसे परिवार सदस्यों के अतिरिक्त अन्य लोग लोग स्पर्श भी नहीं कर सकते।

भुंजिया घरों में कोठी, जाता, ढ़ेकी, मूसल, वस्त्र (ओढ़ने, बिछने और पहनने के), एल्युमीनियम-मिट्टी-काँसे के बर्त्तन (भोजन बनाने और खाने के), कृषि उपकरण, कुल्हाड़ी, बाँस टोकरी, सूपा, जाल (मत्स्य आखेट) आदि होता है।

भुंजिया जनजाति की महिलाएँ हाथ, पैर, चेहरे आदि पर हस्तशिल्प से गोदना गुदवाती हैं। वह लुगड़ा और पोलका तथा पुरूष धोती, पंछा, बंड़ी, कुर्ता आदि पहनते हैं। महिलाओं द्वारा पहने जाने वाले आभूषण हैं- पैरों में पैरी, सांटी; हाथ में पटा, एंठी, चूड़ी; गले में सुरड़ा, रूपिया माला: नाक में कूली; कान में खिनवा आदि। अधिकांश आभूषण गिलट और नकली चाँदी के होते हैं।

इनके भोजन में चावल और कोदो का भात और बासी पेज, मड़िया पेज, मौसमी सब्जी आदि सम्मलित हैं। कभी-कभी उड़द, मूँग, कुल्थी, बेलिया आदि की दाल भी खाते हैं। मांसाँहारी हैं और बकरा, खरगोश, मुर्गा, मछली, विभिन्न पक्षी आदि खाते हैं। सुअर खाते हैं, पर गाय और बन्दर नहीं खाते।[64] महुआ शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी भी पीते हैं।

इस जनजाति के आर्थिक क्रिया-कलाप कृषि, वनोपज संग्रह, मज़दूरी और शिकार पर ही निर्भर हैं। शिकार अब नगण्य प्राय रह गया है। कृषि भी मात्र धान, कोदो, अरहर, तिवड़ा, तिल आदि तक सीमित है। वनों से महुआ, चार, गोन्द, लाख, तेन्दूपत्ता आदि एकत्र करते हैं। जिनके पास कृषि भूमि कम है, वे अन्य कृषकों के खेतों पर कृषि मजदूरी करते हैं। वर्षा ऋतु में स्वयं के उपयोग हेतु मछली पकड़ते हैं। महिलाएँ बच्चे को लेकर काम करने जाती हैं और उसे एक कपड़े के द्वारा कमर में बाँध लेती हैं।[65]

इनमें भी पितृवंश, पितृसत्तात्मकता और स्थानिय पितृनिवास ही है। इनमें दो उप जाति हैं- चौखुटिया और चिन्दा भुंजिया। चौखुटिया ऊँचे माने जाते हैं। उपजातियों में गोत्र हैं- बधवा, बोकरा, चीता,

---

[63] Atik Ahamed Khan-Sunadei - The Epicentre of Bhunjia life(Orissa Review ,September-October – 2007,P.18-20) (http://www.orissa.gov.in/e-magazine/Orissareview/sept-oct2007/engpdf/Pages18-20.pdf)

[64] By R. V. Russell-The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Volume 2, P.428 (http://books.google.co.in/books?id=69W858aghUC&pg=PA424&lpg=PA424&dq=Bhunjia+tribe&source=bl&ots=dEan3q8ciU&sig=wIKr0rLPuzb8FgaL3sCGnxEezI&hl=en&ei=x237S6DzKoe5rAesOCtAg&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=5&ved=0CCkQ6AEwBA#v=onepage&q=Bhunjia%20tribe&f=false)

[65] By R. V. Russell-The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Volume 2, P.428-429

भैंसा, सोनवानी, तेकाम, जांता, नेताम, मरकाम, दूध, सुआ आदि। गोत्र बर्हिविवाही समूह हैं, पर उपजाति अंतःविवाही हैं। प्रत्येक गोत्र में टोटम पाए जाते हैं।[66]

इनमें भी गर्भावस्था संस्कार नहीं है। प्रसव घर में सुन्नदाई या बुजुर्ग महिलाओं द्वारा कराया जाता है। प्रसूता को जड़ी-बूटी का काढ़ा पिलाते और सोंठ, गुड़, तिल आदि के लड्डू खिलाते हैं। छठी में शुद्धि हेतु स्नान उपराँत दूध छिड़कते हैं। तदुपरांत रिश्तेदारों को चाय-बीड़ी पिलाते हैं। रजस्लवा महिला आठ दिन तक अपवित्र मानी जाती है।

विवाह पूर्व लड़कियों हेतु पृथ्क संस्कार है। रजस्लवा होने के पूर्व कांद विवाह सम्पन्न कराते हैं। इसमें कन्या का विवाह बाण से कराया जाता है। लड़कों हेतु विवाह की सामान्य आयु 16-18 और लड-अकियों हेतु 14-16 है। इनमें भी विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। यह पक्ष वधु पिता को चावल, दाल, गुड़, हल्दी, तेल, वस्त्र आदि देता है। विवाह के रीति रिवाज बुजुर्गों की देखरेख में सम्पन्न कराए जाते हैं। उढ़रिया, पैठू, लमसेना, गुरावट प्रथा भी है। विधवा और त्यगत्ता का पुर्नविवाह होता है। इसे चूड़ी पहनाना कहते हैं।

मृतक को गाड़ते हैं। तीसरे दिन घर की लिपाई-पुताई, स्नान और मुण्डन आदि कर पवित्र होते हैं। दसवें दिन भोज देते हैं।

भुंजिया जनजाति में भी पारम्परिक जाति पंचायत है। इस पंचायत में पदाधिकारी पुजेरी, पाती और दीवान हैं। यह वंशानुगत पद हैं। इसमें पारम्परिक तरीकों से अर्थात नगद और भोज दण्ड द्वारा अनैतिक सम्बन्ध, जाति बाह्य विवाह और सम्बन्ध, तलाक आदि के मामले निपटाए जाते हैं।[67]

इनके आराध्य हैं- बूढ़ादेव, ठाकुरदेव, बूढ़ीमाई, भैंसासुर, मांटीदेव, काना भौंरा, काला कुँवर, डूमा देव (पूर्वज) आदि। इसके अतिरिक्त सूरज, नदी, पहाड़, वृक्ष आदि भी आराध्य हैं। हिन्दू अराध्यों को भी पूजते हैं।

इनके त्योहार हैं- हरेली, पोला, तीजा, पितर, नवाखाई, दशहरा, दीपावली, होली आदि। प्रति वर्ष ग्राम देवता और कुल देवता को मुर्गी की बलि चढ़ाते हैं। ठाकुरदेव, बूढ़ीमाई और काला कुँवर को प्रति तीन वर्ष में बकरे की बलि देते हैं। जादू-टोना, तंत्र-मंत्र पर विश्वास है और इसका ज़ानकार बैगा कहलाता है।

बिहाव (विवाह पर), पड़की (दीपावली पर), रहस (होली पर), राम सप्ताह (भादों में पुरूषों द्वारा) आदि नृत्य करते हैं। लोक गीत हैं- पड़की, ददरिया, विवाह, फाग, राम सप्ताह आदि।

विकास कार्यक्रमों, शिक्षा, सन्चार, यातायात, बाह्य सम्पर्क आदि के कारण परिवर्त्तन भी स्वभाविक प्रक्रिया है। अतः इनका भी रहन-सहन, खान-पान, कला, वस्त्र-विन्यास, कृषि पद्धति आदि बदली है।

इनकी समस्या आर्थिक कारणों से और विकराल हो जाती है। गरीबी को पिछड़ी और असिंचित कृषि विपरीत प्रभावित करती है। अभावग्रस्त जीवन है। शिक्षा की कमी, अन्धविश्वास, कुपोषण आदि की समस्याएँ इसकी अनुषांगी की तरह हैं।

6. बियारः-

बियार छत्तीसगढ़ की एक अल्पसंख्यक जनजाति है। 2001 में इनकी संख्या 4,403 थी। यह लोग मुख्यतः सरगुजा सम्भाग के सरगुजा जिले में ही हैं। बिलासपुर सम्भाग के रायगढ़ और बिलासपुर जिलों में भी थोड़ी जनसंख्या है।[68]

---

66 छत्तीसगढ़ अभिलेख प्रभाग-भुंजिया जनजाति के संक्षिप्त मानवशास्त्रिय अध्ययन(मोनोग्राफिक)

67 छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ।

68 छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ।

इनकी उत्पति के वैज्ञानिक और एतिहासिक साक्ष्यों पर शोध होना है। इनकी किंवदंति के अनुसार शिव-पार्वती के विन्ध्यांचल विचरण के समय पार्वती को धान खेती की इच्छा हुई। शिव द्वारा मानव नर और मादा उत्पन्न कर दिए गए। इस युगल ने वन काट और जला कर धान बीज राख में छिड़क खेती की। इसी युगल से बियार जनजाति के लोग अपनी उत्पत्ति मानते हैं।

बियार जनजाति के लोग गोंड़, खैरवार आदि जनजातियों के साथ दूरस्थ ग्रामों में निवास करते हैं। इनके आवास मिट्टी के बने होते हैं, जिस पर खपड़े की छत होती है। इनके घरों में परछी के उपराँत दो-तीन कमरे होते हैं। दीवारें श्वेत मिट्टी या छुई से पोती जाती हैं। मिट्टी के फर्श को गोबर से लीपते हैं। इनके घरों में कोठी, चक्की, मूसल, चारपाई, वस्त्र, चूल्हा, बर्त्तन, कृषि उपकरण आदि होते हैं।

यह लोग बबूल, करंज, नीम, हर्रा आदि की दातौन से प्रतिदिन दाँत साफ करते हैं। स्नान भी प्रतिदिन है। केश चिकनी मिट्टी से धोते है। उसमें मूँगफली या तिल का तेल लगा कंघी करते हैं। स्त्रियाँ बालों को गूँथ कर जूड़ा बनाती हैं। वे गोदना भी गुदवाती हैं। महिलाएँ आभूषण भी पहनती हैं। पुरूष पंछा और बंड़ी तथा महिलाएँ लुगड़ा और पोलका पहनती हैं।

इनके भोजन में भात (चावल, कोदो), रोटी (गेहूँ), दाल (उड़द, तुअर, मूँग), शाक (मौसमी भाजी) आदि हो सकते हैं। मछली, मुर्गा, बकरा आदि का माँस खाते हैं। पुरूष महुआ शराब और बीड़ी पीते हैं।

बियार जनजाति का आर्थिक जीवन पिछड़ी कृषि, मज़दूरी और वन उपज संग्रह पर निर्भर है। कृषि उत्पाद कोदो, धान, मक्का, उड़द, मूँग, तुअर, तिल आदि हैं। भूमिहीन या सीमांत ऋषक मज़दूरी पर निर्भर हैं। वनों से महुआ, गुल्ली, चार, गोन्द, तेन्दूपत्ता, हर्रा, लाख, आँवला आदि एकत्र कर बेचते हैं। वर्षा में स्वउपयोग हेतु मछली पकड़ते हैं।

गर्भावस्था में संस्कार नहीं है। प्रसव दाई या बुजुर्ग महिलाओं द्वारा घर पर कराया जाता है। नाल चाकू से काट प्रसव स्थान पर गाड़ते हैं। कुल्थी, पीपर, सरई छाल, सोंठ, छीन्द जड़, एठीमुड़ी, गुड़ आदि का काढ़ा प्रसूता को पिलाते हैं। छठी को जच्चा-बच्चा के शुद्धि स्नान उपराँत नवीन वस्त्र धारण कराते हैं और फिर कुल देवता/देवी, सूर्य, धरती और पूर्वजों को प्रणाम कराते हैं। रिश्तेदारों को भोजन कराते हैं। दारू और बीड़ी पिलाते हैं।

लड़कों की विवाह आयु 12-18 और लड़कियों की 10-16 है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। वर पिता वधू पिता को लगन भराई के नगद, हल्दी, तेल और गुड़ देता है। अब विवाह हेतु ब्राह्मण बुलाने लगे हैं, पहले बुजुर्ग ही यह कार्य करा देता था। विनिमय, सेवा विवाह, घुसपैठ, सहपलायन, विधवा पुर्नविवाह, देवर-भाभी पुर्नविवाह मान्य है।

मृतक को जलाते हैं। अस्थि सोन या अन्य नदियों में प्रवाहित करते हैं। दसवें दिन शुद्धि हेतु स्नान, पूजा, भोज आदि करते हैं। अब ब्राह्मण बुला श्राद्ध भी करने लगे हैं।

जाति पंचायत भी है। प्रमुख को मुखिया कहते हैं। लगन भरना, विवाह, छूटा, अनैतिक सम्बन्द्ध आदि के मामले निराकृत्त किए जाते हैं।

बियार जनजाति में आराध्य हैं- महा देव, धरती माता, सिमाड़ा, दुल्हा देव, शीतला माता, ज्वालामुखी, भैंसासुर आदि और सभी हिन्दू देवी और देवता।

इनके त्योहार हैं- दशहरा, दीवाली, नवरात्रि, संक्रांति, होली अदि। भूत-प्रेत और जादू-टोने पर विश्वास है। लोक नृत्य हैं- विवाह नाच, रहस (होली) आदि। लोकगीत हैं- विवाह गीत, फाग, भजन आदि।

विकास के अनुक्रम में परिवर्त्तन को तीव्र अपना रहे हैं। रीति रिवाज भी बदलने लगे हैं। ब्राह्मणवादी व्यव्स्था भी घर बना ली है। हिन्दू धर्म का पूर्ण प्रभाव भी हो गया है। रहन-सहन, खान-पान, वस्त्र, कलाएँ, खेती पद्धति आदि में भी परिवर्त्तन है।

धन का अभाव प्रमुख समस्या है। कृषि अपर्याप्त और पिछड़ी है। शिक्षा की कमी, अन्धविश्वास, कुपोषण आदि भी हैं।

7. बिंझवारः-

बिंझवार जनजाति छत्तीसगढ़ प्रदेश के रायपुर और बिलासपुर सम्भागों में निवास करती है। रायपुर में यह महासमुन्द और रायपुर तथा बिलासपुर में रायगढ़ और बिलासपुर जिलों में निवास करते हैं। 2001 में इनकी जनसंख्या 100,692 थी।

बिंझवार उत्पत्ति पर भी वैज्ञानिक और एतिहासिक शोध नहीं हैं, पर इस जनजाति हेतु कुछ तर्क अवश्य सामने आए हैं। राबर्ट वाने रस्सेल्ल का मत है कि, बिंझवार जनजाति मध्य प्रदेश के मण्डला और बालाघाट की बैगा जनजाति से व्युत्पन्न हुई और मैकल या महाकाल पर्वत्त श्रेणी से बाहर जा कर बसी। बैगा लोगों में बिंझवारों को ऊँची श्रेणी प्राप्त है। रस्सेल इन्हें बैगा जनजाति की उसी तरह की विकसित श्रेणी मानता है, जैसी गोड़ों में राजगोंड़ और भीलों में भिलाला।[69]

बिंझ शब्द विन्ध्य का अपभ्रंश है। बिंझवार लोग अपनी उत्पत्ति इसी पर्वत्त से मानते हैं। उनकी आराध्य भी विध्यवासिनीदेवी हैं। वे यह मानते हैं कि, वे बिंझकूप (विन्ध्य पर्वत्त स्थित कुआँ या गह्वर) से लाम्टा (बालाघाट का लाम्टा या बिलासपुर का लाफा?) आए।[70]

वे अपनी उत्पत्ति की दंत कथा भी कहते हैं, जिसके अनुसार बारह बेतकार (धनुषधारी) भाई विन्ध्यवासिनी देवी के पुत्र थे। उनके धनुर्विद्या अभ्यास के दौरान एक तीर उड़ीसा सागर तट के पुरी जगन्नाथ मन्दिर के द्वारा पर जा लगा और गड़ गया। वहाँ इसे कोई, राजा के हाथी भी, नहीं निकाल पाया। सभी भाई वहाँ पहुँचे और उन्होंने सहजता से तीर निकाल मन्दिर द्वारा खोल दिया। अब राजा ने प्रसन्न हो, उन्हें भूमि और जमीन्दारी प्रदान की।[71] यह भी कहा जाता है कि, यह प्रसिद्ध तीर एक वन शूकर के पीछे गया। बिंझवार लोगों में भूमि जोतने और खेती करने वाला वर्ग वरहा के नाम पर बारीहा कहा जाता है। बिंझवार लोग तीर को जाति चिन्ह मानते हैं। इसे वे आपनी वस्तुओं, पशुओं और नाम के साथ अंकित करते हैं। जब तक कन्या को वर नहीं मिले, उसका विवाह तीर से करते हैं। विवाह मण्डप में महुआ डाल के साथ तीर भी लगाते हैं।[72]

एक अन्य किंवन्दंती में यह कहा गया कि, पटना का प्रथम राजा चौहान राहपूत था। उसकी माँ अपने पति और सम्बन्धियों को युद्ध में खोने के उपराँत सम्बलपुर आ गई। उसने एक बिंझवार की झोपड़ी में शरण ली। यहाँ उसे एक पुत्र हुआ। वह पटना का राजा बना। उसने उस बिंझवार को बोड़ासर की जमिन्दारी दी, जिसकी झोपड़ी में उसकी माता ने शरण ली थी और जहाँ उसने जन्म लिया था। उनसे वह सम्मानपूर्वक मात्र रेश्म वस्त्र लेता था। यह परम्परा आगे भी रही।[73]

---

[69] R. V. Russell- The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Volume 2, Page 122-123 (http://books.google.co.in/books?id=IT2M05E1QTkC&pg=PA122&lpg=PA122&dq=Binjhwar+tribe&source=bl&ots=s28hyXc18U&sig=CcLipsSnk_Dprif_jsjI1cqlCgE&hl=en&ei=wGD_S7niCcGGkAWq6cXxDQ&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=3&ved=0CCMQ6AEwAg#v=onepage&q=Binjhwar%20tribe&f=false)

[70] http://tdil.mit.gov.in/ggs/Sanskritik_CG(HTML)/Sanskritik_Chhattisgarh/tribesofCG4.htm

[71] टी.बी.नाईक-बारह भाई बिंझवार(1972)(म.प्र.ग्रंथ आकादेमी)

[72] छत्तीसगढ़ अभिलेख प्रभार की बिंझवार (भाग 1 और 2) जनजाति का सन्क्षिप्त मानवशास्त्रीय अध्ययन

[73] टी.के.वैष्णव-बिंझवार जनजाति

बिंझवार अब द्रविंड़ मूल की बैगा जनजाति से पृथक जनजाति के रूप में विकसित हो गए हैं और उनसे अपने सम्बन्धों को नकार भी रहें हैं। यह लोग अन्य जनजातियों से थोड़ा विकसित भी हैं।[74] 1857 की क्राँति का प्रसिद्ध (वीर) नारायण सिंह इसी जनजाति का था। हालाँकि उसके विरूद्ध उपनिवेशवादी अंग्रेजों के सहायक हुए देवरी जमीन्दार भी इसी जनजाति के थे और नारायण के रिश्तेदार थे। सोनाखान, देवरी, भटगाँव आदि जमीन्दारियाँ इस जनजाति से सम्बद्ध रही हैं।

बिंझवार जनजाति की चार उपजातियाँ हैं- बिंझवार, सोनझरा, बिरजिया और बिंझिया। बिंझवार जमीन्दार रहे और उच्च माने जाते हैं। सोनझरा महानदी में रेत छान और धो कर स्वर्ण निकालने का कार्य करते हैं। बिंझवारों की सोनझरा उपजाति के अतिरिक्त भी एक अन्य जाति समूह का नाम भी सोनझरा है, पर वह बिंझवार जनजाति में नहीं है। बिरजिया पहले स्थांतरीय कृषि बेवर करते थे। बेवर कृषि से बिवरजिया कहलाए, जो अब बिरजिया उच्चारित होता है। बिंझिया इनमें सबसे नीचे हैं। सम्भवतः ऐसा, उनसे गोंड़ राजा की हत्या हो जाने हुआ। बिलासपुर में कहीं-कहीं इन्हें पृथ्क जाति के रूप में भी चिन्हित किया जाता है। भटगाँव जमीन्दारी इसी समूह के पास थी। सभी उपजातियाँ बर्हिविवाही समूह हैं।

परिवार पितृ सत्तात्मकपितृनिवास स्थानीय है। गोत्र स्थानियता और टोटम पर ,पितृवंशीय , ,(भैंसा) पोड़ ,बाघ -आधारित हैं। जैसेकमलिया ,(कमल)पंकनली ,(पनकउआ)ताड़मछली पकड़ने) जाल , आदि। कुछ गोत् (कार अन्य नामों पर भी आधारित हैं। जैसेमृत्त बाघ उठाने) मरईमेली बाघ ,उधार - ,(वालाउल्टुम ,(वाचाल)केसाल ,(जान बचाने वाला)जालिया आदि। कुछ गोत्र अन्य कार्यों और (झूठा) इस ,बंका माझी आदि। यह भी हो सकता है कि ,लोहार भील ,दूध कंवरिया -समूहों पर आधारित हैं। जैसे क ार्य समूह के लोग बिंझवार बन गए हों। जहाँजहाँ बिंझवार लोग गोंड़ और मुण्डा जनजाति के साथ रहे - ,सुलई आदि और गोड़ों से टेकाम ,सोन ,मुण्डाओं से मुन्ना -वहाँ उन्होंने उनके गोत्र भी अपनाए। जैसे सोनवानी आदि।

इस जनजाति के लोग सामान्यतः गोंड़ कंवर आदि ,साँवरा ,जनजाति के लोगों के साथ निवास करते हैं। सामान्य जनजातिय घरों की तरह इनके आवास भी मिट्टी और खपरैल के बने होते हैं। दीवारे श्वेत और पीत मिट्टी से और फर्श गाय के गोबर से लीपा जाता है। घर के आगे और पीछे परछी होता (बरामदा) है। पशु कोठा अलग होता है।

चित्र 8 - बिंझवार जनजाति स्रोत- tdil.mit.gov.in

घर में ढ़ेकी, जाता (चक्की), मूसल, कोठी, चारपाई, कपड़े (ओढ़ने, बिछाने और पहनने के), मिट्टी का चूल्हा, भोजन बनाने और करने के पात्र, कुछ कृषि उपकरण, वाद्ययंत्र आदि होते हैं।

दातौन से दाँत की सफाई और स्नान नित्य है। पुरूष नाई से बाल कटवाते हैं। स्त्रियाँ लम्बे केश रख, उसे चोटी में गूँथ जूड़ा बनाती हैं। बालों में तिल, मूँगफली, गुल्ली आदि का तेल लगाते हैं। महिलाएँ हाथ,

---

74 http://tdil.mit.gov.in/ggs/Sanskritik_CG(HTML)/Sanskritik_Chhattisgarh/tribesofCG4.htm

पैर और मुहँ पर गोदना गुदवाती हैं। वे आभूषण पहनती हैं। यथा- पैर की उंगलियों में बिछिया, पैर में सांटी और तोड़ा, कमर में करधन, कलाई में ऐंठी और नागमोरी, बाहु पर पहुँची, गले में सुरड़ा और रूपिया माला, कान में खिनवा और नाक में फूली। वस्त्र विन्यास साधारण है। पुरूष पंछा और बंडी तथा महिलाएँ लुगड़ा और पोलका पहनती हैं।

इनका भोजन कोदो और चावल के भात, बासी, पेज, मौसमी सब्जी और उड़द, मूँग, तिवड़ा आदि की दाल पर निर्भर है। जंगली कन्द, मूल, भाजी आहार का मुख्य स्रोत है। माँसाहारी हैं। मछली, मुर्गा, बकरा, सुअर आदि खाते हैं। तेन्दुआ भी खाते हैं। दूसरों का छोड़ा माँस और गाय तथा बन्दर का माँस नहीं खाते। उत्सव, त्योहार और आयोजनों पर महुआ शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी पीते हैं।

आर्थिक जीवन क्रिषि, वन उपज संग्रह और मजदूरी पर आधारित है। खेतों में कोदो, धान, तिवड़ा, उड़द, मूँग, अरहर, तिल आदि बोते हैं। पिछड़ी और असिंचित कृषि से पैदावार कम है। वनों से तेन्दूपत्ता, गोन्द, चार, तेन्दू, हर्रा, मधु, लाख आदि एकत्र कर बेचते हैं। भूमिहीन, लघु और सीमांत कृषक मजदूरी करते हैं। पहले कभी-कभी शिकार भी करते थे। अब शिकार प्रतिबन्धित है। इससे जीवन और रहन-सहन बदला है। वर्षा में स्व उपयोग हेतु मछली पकड़ते हैं।

गर्भावस्था में संस्कार नहीं है। कुँवारी के गर्भवती होने पर समाज को भोज दे बिंझवार युवक से विवाह कर देते हैं। प्रसव घर पर स्थानिय सुन्न दाई कराती है। नाल भरूवा घाँस के पंची या ढलेड़ से काटते हैं। नाल को घर में गडढ़ा खोदकर गाड़ते हैं। प्रसूता को सोंठ, गुड़, अजवाएन, घी, पीपर, असगन्ध आदि से निर्मित पौषटिक लड्डू खिलाते और चाय पीने को देते हैं। छठी को शुद्धी करते हैं। पुरूष हजामत बनवाते हैं। रिश्तेदारों और मित्रों को चाय, बीड़ी, दारू आदि पिलाते हैं। प्रसूता और बच्चे को स्नानोपरांत नवीन वस्त्र पहना देवी-देवता को प्रणाम कराते हैं।

विवाह की सामान्य आयु लड़कों हेतु 15 से 18 और लड़कियों हेतु 14 से 16 वर्ष है। वर पक्ष ही विवाह प्रस्ताव रखता है। वर पिता वधु पिता को चावल, दाल, गुड़, तेल, हल्दी, नारियल और नगद के साथ सुक भराई देता है। विवाह में मंगनी, फलदान, बिहाव और गौना के चार चरण होते हैं। विवाह मण्ड़प महुआ ड़ाल से बनाते हैं, जिस पर तीर लगाते हैं। कुँवारी कन्या द्वारा काते गए सूत से कोई बुजुर्ग गठबन्धन बाँधता है। बहु विवाह प्रचलित है। तलाक आम नहीं है, पर कठिन भी नहीं है। समाज के अन्दर पुर्नविवाह प्रचलित है। पहले इसी जनजाति का बुजुर्ग व्यक्ति विवाह कराता था। अब ब्राह्मण पण्ड़ित बुलाने लगे हैं। घर जमाई (सेवा विवाह), विनिमय, देवर-भाभी पुर्नविवाह को मान्यता है।

मृतक को गाड़ते हैं। तीसरे दिन मुंडन कराते हैं। दसवें दिन दसकर्म करते हैं। इसमें स्नानोपरांत पूर्वजों की पूजा करते हैं। मृत्यु भोज देते हैं। पितृपक्ष में मृत्त पूर्वज के नाम पर पानी तर्पण कर दाल ,भात-बड़ा रखते हैं।

पारम्परिक जाति पंचायत है। इसका प्रमुख गौंटिया कहलाता है। यह पंचायत विवाह ,तलाक , अनैतिक सम्बन्ध आदि के विवादों का निराकरण करती है। वर्तमान में जिला और राज्य स्तरीय सङ्गठन भी है।

बिंझवार जनजाति के अराध्य हैं- ठाकुरदेव, बूढ़ादेव, घटवालिन, दुल्हादेव, करिया, धुरूवा, भैंसासुर, सतबहेनिया, कंकालिन माता आदि। साथ ही सभी हिन्दू देवी और देवताओं को भी मानते हैं। वे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, नदी, पहाड़, नाग आदि की पूजा भी करते हैं। बली भी देते हैं।

यह लोग पोला, हरेली सहित दीपावली दशहरा आदि भी मनाते हैं। भूत, प्रेत, जादू मानते हैं। इसके जानकार बैगा को झाखर कहते हैं।

बिंझवार लोग करमा, सूवा, रामसप्ताह, रहस, फाग, विवाहगीत आदि लोक कलाएँ भी करते हैं।

8. धनवारः-

धनवार जनजाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य के रायपुर सम्भाग के रायपुर, बिलासपुर सम्भाग के बिलासपुर, कोरबा और रायगढ़ तथा सरगुजा सम्भाग के सरगुजा और कोरिया जिलों में निवास करती है। बिलासपुर जिले में इनका संकेन्द्रण अधिक रहा है। यह हस्तशिल्पी जनजाति है। इन्हें कोरिया जिले में मूल निवासी माना जाता है।[75] 2001 में राज्य में इनकी जनसंख्या 42,172 थी।

धनवार का अर्थ धर्नुधारी से है। पहले इनका जीवकोपार्जन धर्नुविद्या, धनुष-तीर निर्माण (हस्तशिल्प) और शिकार पर ही आधारित था। धनुष-वाण से धनवार शब्द बना। शिकार और आखेट इनका प्रमुख व्यवसाय है। धनुष-बांण के अत्यधिक प्रयोग के कारण ही धनवार संज्ञा बनी। यह लोग धनुषबांण

चित्र 9 - धनवार धनुष स्रोत-tdil.mit.gov.in

बनाने के लिए बांस और धानन वृक्ष की लकड़ियों का प्रयोग करते हैं। इन बाणों की नोंक पर लोहे की फनी लगाते हैं। बाण के दूसरे सिरों पर मोर या बाज के पंखों को धागे से बांधकर लगाते हैं। प्रत्येक धनवार के घर में धनुषबाण की पूजा की जाती है। बच्चे लगभग 5-वर्ष की उम्र से ही, शिकार के लिए, धनुषबाण चलाना प्रारंभ कर देते हैं।[76]

धनवार अपने आप को गोंड़ों के वंशज मानते हैं। इन्हे गोंड़ या कंवर से व्युत्पन्न माना जाता है। हालाँकि यह मत अधिक प्रचलित है कि, यह लोग गोंड़ और कंवर जनजातियों के सम्मिश्रण हैं।[77] इन की उत्पत्ति पर भी एतिहासिक और वैज्ञानिक शोध होना है। कंवर लोगों की तरह इनकी अपनी बोली नहीं रही है और यह लोग सामान्यतः छत्तीसगढ़ी बोलते हैं।[78]

यह लोग अपनी व्युत्पति के जो कथा कहते हैं, वह भी गोंड़ों के अधिक निकट है। यह कथा है- एक बाघिन को माँद में मिट्टी हटाते समय मिली बालक और बालिका को बाघिन ने बच्चों की तरह पाला। इनके नाम थे- नागलोधा और नागलोधी। इन दोनों का विवाह हुआ। वे संतानहीन रहे। अतः नागलोधा ने तपस्या

---

[75] रघुवीर प्रसाद-झारखण्द झनकार

[76] http://tdil.mit.gov.in/ggs/Sanskritik_CG(HTML)/Sanskritik_Chhattisgarh/tribesofCG3.htm

[77] वही

[78] R.V.Russell- The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Page 488-489 (http://books.google.co.in/books?id=H6rOX1nXCJcC&pg=PA488&lpg=PA488&dq=Dhanwar+tribe&source=bl&ots=kjyBp7g1hD&sig=YLLM1MUEtSxD76I5NqIdbRVFu2w&hl=en&ei=ZJP_S5PJDo6lcf2syaQK&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=3&ved=0CBsQ6AEwAg#v=onepage&q=Dhanwar%20tribe&f=false)

की। उसे पत्नी को 11 विभिन्न वृक्षों के 11 फल खिलाने की आज्ञा हुई। ऐसा करने पर एकसाथ 11 पुत्र हुए। नागलोधी प्रत्येक हेतु 15 दिन के सोवर में रही और इस प्रकार कुल साढ़े पाँच माह। अब सभी धनवार स्त्रियाँ बच्चा होने पर साढ़े पाँच माह अशुद्ध समझी जाती हैं। कुछ दिनों पश्चात बारहवाँ पुत्र भी हुआ। उसके हाथ में तीर-धनुष था। इसका नाम करनकोट था। इसे ही धनुहार लोग अपना पूर्व पुरूष मानते हैं। एक बार अन्य 11 भाई शिकार को गए और उन्होंने कई चीतल और हिरण देखे। इन्हें 12 ग्वाल भाई और उनकी 12 बहने चरा रहीं थीं। 11 लोधों ने जब उन्हें मारना चाहा तो वे ग्वाल लोगों द्वारा बन्दी बना लिए गए। 12 वाँ भाई, करनकोट, उन्हें खोजते हुए आया। उसने ग्वालों को पराजित कर अपने 11 भाई छुड़ा लिए। वह 12 ग्वाल बहनों को भी साथ ले गया। सभी ने उनसे विवाह कर लिया। सबसे छोटी और सुन्दर करनकोट को व्याही। इसका नाम मसवासी था। धनवार लोग इस दम्पत्ति से अपने वंश की उत्पत्ति मानते हैं। यह माना जाता है कि, करनकोट बड़ा शिकारी था। उसने इतने पशु मारे कि, गाँवों की खदानें उनकी हड्डियों से भर गईं। धनुहारों का मानना है कि, वह ही अब छुई मिट्टी के रूप में निकलती है।[79]

ग्रामों में धनवार लोग सामान्यतः गोंड़, कंवर, सौंता आदि जनजातियों के साथ निवास करते हैं। यह जनजाति गाँव में अलग पारा बनाती है, जो धनवारपारा कहलाता है। इस पारा में धनवारों के 8-10 घर आमने-सामने होते हैं। यह मकान मिट्टी के बने होते हैं। छत घाँस-फूस या खपड़े की होती है। मकान बानाने के पूर्व और बनने के पश्चात ग्राम पुजारी से पूजन कराते हैं। घर में दो कमरे होते हैं। पशु कोठा पृथ्क होता है। मकान के आसपास बागड़ और मकान के बाहर पानी के घड़े आदि रखने हेतु मचान बनाते हैं। देवस्थान और अन्न भण्डारण की कोठी मुख्य कक्ष में होती है।[80]

कपड़े, रसोई के बर्त्तन, चारपाई, कृषि उपकरण आदि इनकी प्रमुख घरेलू वस्तुएँ हैं। यह लोग दाँत सफाई हेतु नीम, बबूल या हर्रे की दातौन उपयोग करते हैं। शरीर सफाई हेतु, अधिकांशतः, पत्थर का उपयोग करते हैं। चिकनी या काली मिट्टी से बाल धोते हैं। उसमें मूँगफली, गुल्ली, नीम आदि का तेल लगा कर कंघी करते हैं। महिलाएँ खोपा (एक प्रकार का जूड़ा) बनाती हैं। पुरूष पंछा और बंड़ी तथा महिलाएँ प्लका और लहंगा पहनती हैं। पुरूष कभी-कभी धोती-कुर्त्ता भी पहनते हैं। महिलाएँ हाथ, पैर और चेहरे पर गोदना गुदवाती हैं। वे हाथ में चूड़ी और ऐंठी; गले में सुतिया और सुर्रा; नाक में फूली, कान में खिनवा आदि आभूषण पहनती हैं।

इनके भोजन में कोदो और चावल का भात, बासी पेज; मौसमी सब्जी; उड़द, मूँग, कुल्थी आदि की दाल होती हैं। माँसाहारी हैं। अंड़े, मछली, मुर्गी, बकरा, खरगोश आदि का माँस खाते हैं। महुआ शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी पीते हैं।

धनवार लोग हस्तशिल्पी हैं। इनका जीवकोपार्जन हस्तशिल्प द्वारा बाँस से बनाए सूपा, टोकरी, धनुष-बाण आदि के साथ कृषि, वन उपज संग्रह, शिकार और प्राकृतिक खाद्य संकलन पर निर्भर है। इनकी मुख्य फसल धान है। इसके अतिरिक्त ज्वार, कोदो, कुटकी, उड़द, कुल्थी, मक्का, अलसी, तिल, तुवर, चना आदि भी बोते और उगाते हैं। पिछड़ी और असिंचित कृषि से पैदावार कम है। वनों से तेन्दूपत्ता, गोन्द, चार, तेन्दू, हर्रा, मधु, लाख आदि एकत्र कर बेचते हैं। भूमिहीन, लघु और सीमांत कृषक मजदूरी करते हैं। पहले शिकार करते थे। अब शिकार प्रतिबन्धित है। इससे जीवन और रहन-सहन बदला है। वर्षा में स्व उपयोग हेतु मछली पकड़ते हैं। बाँस हस्तशिल्प बेचते हैं।

धनवार समाज में परिवार पितृ सत्तात्मक, पितृवंशीय, पितृनिवास स्थानीय परम्परा पर आधारित है। विभक्त परिवार हैं। कई गोत्र हैं।

एक गोत्र के लोग, अपने को एक ही पूर्वज की संतति मानते हैं। अतः सगोत्रीय विवाह नहीं होता है। इनके गोत्र हैं- कमरों, मरई, उईके, उर्रे आदि।

---

[79] R.V.Russell- The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Page 489-490

[80] जी.एस.रावत-धनवार जनजाति

प्रसव घर पर सुइन दाई द्वारा कराया जाता है और वह ही नाल काटती है। उसे, प्रसवोपरांत, अन्न और नगद भेंट किया जाता है। प्रसूता को कुल्थी, छिन्द जड़, सरई छाल, एठीमुड़ी, गोन्द, सोंठ आदि का काढ़ा पिलाया जाता है। सातवें दिन साता पूजन कर शुद्धी करते हैं। जच्चा-बच्चा को स्नानोपरांत देवी-देवता का दर्शन करा प्रणाम कराते हैं। रिश्तेदारों को चावल, दाल, गुड़ आदि खिलाते हैं।

विवाह प्रस्ताव वर पिता द्वारा वधु पिता को उसके घर जा कर दिया जाता है। तय होने पर सगाई करते हैं। इसके उपराँत शराब या गुड़ बाँटते हैं। दोनो पक्षों को बकरा खिलाते हैं। सगाई के उपराँत वर पक्ष वधु पक्ष को सूक भरता है। इसमें चावल, दाल, गुड़, तेल, हल्दी, नगद रूपए और वस्त्र दिए जाते हैं। विवाह ग्राम पुजारी द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। सगाई उपराँत फलदान, विवाह और गौना होता है। विवाह के फेरे डालते हैं। तदुपरांत बारात वधु सहित वापस आती है। वापसी पर ग्राम देवी/देवता और कुल देवी/देवता का पूजन करा घर लाते हैं। सहपलायन (प्रेम में भाग कर विवाह), ढूक विवाह और विधवा/त्यगता पुर्नविवाह मान्य है।

मृतक को जलाते हैं। दसवें दिन दशकर्म उपराँत शुद्धि करते हैं। पूर्वज पूजा कर भोज देते हैं।

जाति पंचायत है। सभी लोग इसके सदस्य होते हैं। मुखिया को धनिया कहा जाता है। इनके कार्यों में पूजा व्यवस्था सहित विवाह, फलदान, अनैतिक सम्बन्ध, तलाक, झगड़े आदि के मामले निपटाना है।

धनवारों के आराध्य हैं- बूढ़ादेव, ठाकुर देव, बूढ़ी माई, कुल देवी/देवता, सूरज, चन्द्रमा, पशु, पक्षी, नदी, पहाड़ आदि। हिन्दू देवी-देवताओं को भी मानते हैं। पूजा का आयोजन नाच-गाने, बलि, भोज आदि के साथ करते हैं। भूत-प्रेत और जादू-टोना मानते हैं।

हरेली, करमा, नवाखाई, पोला, पितर, दशहरा, दीपावली, होली आदि त्योहार मनाते हैं। करमा, विवाह गीत और नृत्य करते और गाते हैं। होली में रहस और दीपावली में महिलाएँ पड़की नाचती हैं। अन्य लोक गीत हैं- ददरिया, राम सप्ताह आदि।

विकास कार्यक्रमों, शिक्षा, संचार, यातायात बाह्य सम्पर्क आदि के कारण रहन-सहन, वस्त्र विन्यास, खान-पान, लोककला, हस्तशिल्प आदि में परिवर्त्तन आया है। शिकार बन्द प्राय हो गया है।

इनकी भी समस्या का केन्द्र धनाभाव है। अभावग्रस्त जीवन है। शिक्षा की कमी है।

9. गदबाः-

गदबा जनजाति के लोग छत्तीसगढ़ के बस्तर में, जगदलपुर के आसपास, उड़ीसा से आए। यह लोग मुण्डारी या कोलारियन भाषा परिवार से है।[81] वारियर एल्विन गदबा, साँवरा और परेंगा को एक ही आस्ट्रो एशियाटिक समूह की भाषा मानते हैं।[82] परम्परागत रूप से यह माना जाता है कि, गदबाओं के पूर्वज गोदावरी के तट से आए और जैपुर (उड़ीसा) के मुख्यालय नन्दपुर में बसे। उड़ीसा के मलकानगिरी,

---

[81] http://orissadiary.com/orissa_profile/tribal/Gadaba.asp

[82] वारियर एल्विन-जनजातिय मिथकःउड़िया आदिवासियों की कहानियाँ,पृ.21 (साथ ही देखें M.Istehak-Language shifts among the shaduel tribes in India) (http://books.google.co.in/books?id=5HHX5YCcSoYC&pg=PA21&lpg=PA21&dq=%E0%A4%97%E0%A4%A6%E0%A4%AC%E0%A4%BE+%E0%A4%9C%E0%A4%A8%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF&source=bl&ots=7NSqn_BTt&sig=PLRFxO70IqYBvjRzV2RCrbZKEvQ&hl=en&ei=u1wDTM6IDM_rAeOk7yFDw&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=2&ved=0CB0Q6AEwAQ#v=onepage&q=%E0%A4%97%E0%A4%A6%E0%A4%AC%E0%A4%BE%20%E0%A4%9C%E0%A4%A8%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF&f=false)

कोरापुट, कालाहाँड़ी, सुन्दरगढ़, गंजम, सम्बलपुर और बुद्धफलवनी जिलों में इनकी बसाहट है।[83] छत्तीसगढ़ में यह अल्प मात्रा में जगदलपुर के आसपास ही निवास करते हैं। 2001 में इनकी जनसंख्या 6,317 थी।[84]

बस्तर के शासक महिपाल देव सिंह, इस जनजाति के लोगों को उड़ीसा से, पालकी उठाने और घरेलू कार्य करने के लिए ले कर आए और उन्हें जगदलपुर के आसपास बसाया। यह लोग इन दोनों कार्यों में निपुण माने जाते हैं। गदबा का अर्थ बोझा उठाने से है और यह इनका मूल कार्य रहा है। इन्हें गूठान भी कहा गया। यह लोग बोझा उठाने के अतिरिक्त कृषि और शिकार भी करते हैं।[85] इनकी महिलाएँ हस्तशिल्पी हैं। यह अपने विविध रंगीन वस्त्र विन्यास हेतु चिन्हित होती हैं। यह वस्त्र एक झाड़ी के रेशे से वे स्वयं बनाती हैं। वे रेशे उतारती हैं, उन्हें कात कर धागे बनाती हैं, उन्हें रंगती हैं और तब उससे रंगीन वस्त्र बनाती हैं। वस्त्र के रंग और नमूनों में विविधता मिलती है। इनका प्रभाव आकर्षक होता है। यह टिकाऊ भी हैं। गदबा स्त्रियों की वेषभूषा को उनके सबसे महत्व पूर्ण पक्ष के रूप में चिन्हित किया जाता है। गदबा स्त्रिया पीतल की बड़ी बाली, बालों के सुन्दर विन्यास, रंगीन आकर्षक वस्त्र आदि हेतु जानी जाती हैं। उनके रूप सौन्दर्य का वर्णन उनकी लोक कथाओं में भी आता है।[86] यह आगामी चित्र से भी परिलक्षित होता है।

गदबा जनजाति का एक अन्य उल्लेखनीय पक्ष किशोर-किशोरियों के शयनाग़ार की व्यवस्था है, पर इसे मुरिया घोटुल प्रथा और रोमांस के मुकाबले का नहीं माना गया है।[87]

गदबाओं में चार उपजातियाँ हैं- बोदो (गुतुब), कथेरा, पारंगी और कापू। यह उपजातियाँ गोत्रों में विभक्त हैं। गोत्र वृक्षों, पशुओं और प्रकृति के नाम पर हैं। गोत्र तीन समूहों में विभक्त हैं। यह हैं- तोड़म, समिदकल और पेरीकल। सगोत्रीय विवाह वर्जित है। कुछ गोत्र हैं- मुकरवंम, नागपूस, कुरैया आदि।[88]

गदबा लोग बस्तर की अन्य जनजातियों के साथ ही ग्रामों में निवास करते हैं। इनकी झोपड़ी में गाँस-फूस से निर्मित्त झोपड़ियों की संख्या अधिक है। खपरैल की झोपड़ियाँ कम हैं। यह घर के चारो ओर बाड़ी बनाते हैं। घर में आम्गन होता है। एक ओर भोजन बानाने का कक्ष और दूसरी ओर बैल आदि हेतु सार होता है। कमरे के आगे परछी भी बनाते हैं। मुख्य द्वारा के किनारे, परछी में, ढेकी और जाता (चक्की) रखते हैं। पुताई श्वेत मिट्टी (छुई) से करते हैं। फर्श गोबर से लीपते हैं। यह कार्य महिलाएँ करती हैं।

चित्र 10 और 11 - गदबा महिला और उसकी पोट्रेट पेंटिंग

स्रोत- http://www.pbase.com/neuenhofer/india_tribal_orissa_gadaba_tribe और paintingsilove.com

---

83 http://orissadiary.com/orissa_profile/tribal/Gadaba.asp

84 छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ। (सम्पादक-टी.के.वैष्णव)

85 एम.एस.भलावी-गदबा जनजाति

86 वारियर एल्विन-जनजातिय मिथकःउड़िया आदिवासियों की कहानियाँ,पृ.21

87 वारियर एल्विन-जनजातिय मिथकःउड़िया आदिवासियों की कहानियाँ,पृ.22

88 छत्तीसगढ़ अभिलेख प्रभार- गदबा जनजाति का सन्क्षिप्त मानवशास्त्रीय अध्ययन

घर में कोठी, वस्त्र, ढ़ेंकी, जाता, बर्त्तन, मूसल, गैती, फावड़ा, कुदाल, बक्खर, जाल आदि होते हैं।

स्वच्छता के प्रति आग्रही हैं। स्नान नित्य है। स्त्रिया बालों को ककई (ककवा) से कोरती (काढ़ती) हैं और पीछे की ओर बाँधती हैं। महिलाएँ चेहरे, हाथ और पैर में, दो बार, हस्तशिल्प के गोदने गुदवाती हैं। प्रथम बार विवाह पूर्व तीन बिन्दु ठुड्डी, नाक और मस्तक पर तथा द्वितीय बार विवाहोपरांत अंगों पर। वे गिलट, चाँदी और एल्युमीनियम के आभूषन पहनती हैं। पुरूष धोती, गमछा, सलूका, कमीज़, बण्डी आदि और महिलाएँ साड़ी, लुगड़ा, पोलका आदि पहनती हैं।[89]

चावल, कोदो और कुटकी का भात और पेज इनका मुख्य भोजन है। वे उड़द, अरहर, चना और कुल्थी की दाल; मौसमी सब्ज़ी आदि भी खाते हैं। माँसाहारी हैं। मछली, बकरा, मुर्गे और सुअर का माँस खाते हैं। तम्बाखू खाते और बीड़ी पीते हैं। सल्फी (एक प्रकार की ताड़ी), महुआ शराब और लांदा पीते हैं।

जीवकोपार्जन कृषि मज़दूरी आधारित है। वनों से खाद्य संग्रह करते हैं। कृषि में धान, मक्का, तिल्ली, उड़द, कोदो, ज्वार, कोसरा आदि उपजें हैं। वनों से विभिन्न कन्द और मूल, महुआ, उमर, कटहल, बाँस जड़, बोड़ा कान्दा आदि स्वयं के भोजन हेतु एकत्र करते हैं। गोन्द, तेन्दूपत्ता, कोसा आदि संग्रह कर बेचते हैं। अब मजदूरी करते हैं।

गर्भावस्था में संस्कार नहीं हैं। प्रसव के समय स्त्री को आवास या कक्ष के किनारे पर ले जाते हैं। प्रसव गाँव की उम्रदराज़ महिला कराती है। नरा (नाल) हसिए से काट प्रसव स्थल पर गाड़ते हैं। नवजात शिशु को कुनकुने पानी से नहला माँ के पास सुलाते हैं। प्रसूता को छिन्द जड़ का रस और हल्का पौष्टिक भोजन देते हैं। नौवें दिन बच्चे का मुण्डन करा नाम रखते हैं। रिश्तेदारों को दारू पिलाते हैं।

विवाह प्रस्ताव वर पक्ष द्वारा रखा जाता है। वह एक लाठी- बड़गी- को बधू गृह में गाड़ आता है। द्वितीय दिवस निरीक्षण में उसे यथावत पाने पर प्रस्ताव स्विकृत माना जाता है। अब बारह दिन बाद बारह बोतल मन्द ले जा कर वधु धन निर्धारित करते हैं। यह सामान्यतः एक बोरा चावल, तीन खण्डी धान, एक बकरा, एक सुअर आदि होता है। विवाह रस्म मुखिया सम्पन्न कराता है।

शव गाड़ते हैं। उसके साथ वस्त्र, नमक, गुड़ आदि भी रखते हैं। उसी स्थान पर मछली उबाल, उसके पानी से हाथ धोते हैं। नौ दिवस उपराँत नहानी स्नान कर सुअर काटते हैं। भोज देते हैं।

जाति पंचायत है। मुखिया बुजुर्ग होता है। इसमें विवाह, विच्छेद, सम्पति (उत्तराधिकार, बंटवारा आदि), अनैतिक सम्बन्ध आदि के मामले निराकृत किए जाते हैं। सामाजिक सम्बन्धों और नियमों के उल्लघन पर दण्ड दिया जाता है।

सभी हिन्दू देवी-देवताओं को मानते हैं। धारनी देवी, रास देवी, गुड़ी माता आदि भी आराध्य हैं। धारनी की अराधना में अण्डे, नारियल और काली दाल (साबुत उड़द); रास की में बकरा, मुर्गा, और सुअर बलि तथा गुड़ी की में नारियल, केला और दूध चढ़ाया जाता है। इनके जातीय नायक के रूप में बारह भाई गदबा की कथाएँ प्रचलित हैं। इस्पुराल परम अराध्य है। इसे अन्य क्षेत्रों में इस्पुर कहते हैं। यह ईश्वर शब्द का अपभ्रंश है। अन्य अराध्य हैं- बिरकम दाई (नरभक्षी ब्याजखोर), सीमा दाई (सुअर दंती), भीमो (सर्वव्यापी), कलंका देवता और उसके दैवी सहायक आदि।[90] भूत-प्रेत, जादू-टोना, आत्मा, पुर्नजन्म आदि मानते हैं। पूजा की कामना फसल और पशु रक्षा तथा महामारी से बचाव हेतु है।

दीपावली, ओमुष, धानवा, चुरई, अमनवा आदि इनके त्योहार हैं। विवाह, होली आदि लोक नृत्य है। यह लोग नृत्य दक्ष भी माने जाते हैं।[91] विवाह, होली, माता आदि लोक गीत हैं।

शिक्षा की कमी है। विकास अनुक्रम में शिकार बन्द प्राय हो गया है। वन से खाद्य संग्रह पर जीवकोपार्जन कम हुआ है। मजदूरी पर जीवकोपाअर्जन बढ़ा है। लोककला, वस्त्र विन्यास, खान-पान, रीति-रिवाज, धर्म आदि भी प्रभावित हुआ है। अर्थाभाव का जीवन है। अभावग्रस्तता नियति बन गई है।

---

[89] S.S.shashi-Encyclopedeia of Indian tribes(1997),P.-9

[90] वारियर एल्विन-जनजातिय मिथकः उड़िया आदिवासियों की कहानियाँ,पृ.22

[91] वारियर एल्विन-जनजातिय मिथकः उड़िया आदिवासियों की कहानियाँ,पृ.23

10. गोण्डः-

गोण्ड जनजाति भारत और छत्तीसगढ़ का सबसे बड़ा जनजाति समूह है। यह राष्ट्र के मध्य भाग में निवास करता है। राज्य में, 2001 में, इनकी जनसंख्या, 3,659,384 थी। इसमें उसकी उपजातियाँ भी सम्मलित हैं। यह राज्य की कुल जनजातिय जनसंख्या का 55.31 प्रतिशत है अर्थात राज्य के 31.76% जनजातिय लोगों मे से 17.57% गोण्ड ही हैं। स्पष्ट है कि, राज्य के आधे से अधिक जनजातिय लोग गोण्ड ही हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य के अतिरिक्त गोण्ड आदिवासी मध्य प्रदेश, पूर्वी महाराष्ट्र (अर्थात विदर्भ), उत्तरी आँध्र प्रदेश और पश्चमी उड़ीसा में अधिकांशतः (यह पूरा क्षेत्र गोण्डवाना भी कहा जाता है, क्योंकि यहाँ गोण्ड लोगों का शासन था।) और कुछ मात्रा में बिहार, झारखण्ड, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, गुजरात और उत्तर प्रदेश में रहते हैं। गोंण्डवाना क्षेत्र पर गोंण्डों का अधिकार था और वे अधिकांशतः मुगलों और मराठों द्वारा हटाए गए।

छत्तीसगढ़ राज्य के सभी जिलों में गोंड़ लोग रहते हैं। बस्तर सम्भाग के पाँचो जिले, रायपुर सम्भाग के कबीरधाम, रायपुर और महासमुन्द जिले, बिलासपुर सम्भाग के कोरबा और बिलासपुर जिले तथा सरगुजा सम्भाग के सरगुजा और कोरिया जिलों में इनका संकेन्द्रण अधिक है।

गोंड शब्द की व्युत्पत्ति को तेलगू कोण्ड शब्द से माना जाता है। कोण्ड का अर्थ पर्वत्त है। अतः यह माना गय कि, पर्वत्त वासी लोग गोण्ड कहलाए।

दूसरी अवधारणा में इन्हें गोढ़ या गौंड़ (पश्चिम बंगाल और बिहार) क्षेत्र के प्राचीन नाम से जोड़ा जाता है कि, वहाँ के निवासी गोण्ड कहलाए। गोंड़ लोग अपने को मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ क्षेत्र का ही मूल मानते हैं। हालाँकि उन्हे सिन्धु घाटी से भी जोड़ा गया है।

एक अवधारणा यह है कि, जातियाँ और जनजातियाँ वह नाम अपना लेती हैं, जो उनका मूल व्यवसाय या जीवकोपार्जन का साधन रहा है। जैसे कि पशु पालक समूहों के लिए संस्कृत में गाय के लिए प्रचलित शब्द से ग्वाल शब्द की व्युत्तपति। इसी प्रकार भेड़ चरावाहा समूहों ने भेड़ के संस्कृत्त शब्दों से नाम लिए। इसमें सर्वाधिक ज्ञात नाम गड़रिया है। इसी तरह के व्यवसायगत नाम अन्य जाति समूहों में भी आए। जैसे- अरोड़ा, लोहाना, गुज्जर, भाटिया, मीणा, भील, डोम, उराँव, मुण्डा, संथाल, कोच, अहीर, महार, नायर, मराथा, खोण्ड, गोण्ड आदि।[92] गोंडों का पारम्परिक व्यवसाय शिकार और मछली मारना था, परंतु अब अधिकाश गोंड़ खेतिहार मजदूर है।[93]

इनके DNA टेस्ट में अधिकांशतः (56.25%) Haplogroup H1 के पाए गए हैं।[94]

देवगढ़, चाँदा, गढ़ा-मण्डला गोण्ड शासित राज्य थे। अर्थात भारत का मध्य भाग। अकबरनामा में गढ़ा-कटंगा गोण्ड राज्य का उल्लेख 70,000 ग्रामों की अधीनता के उल्लेख के साथ आया है। गोण्ड़वाना संज्ञा इनके द्वारा शासित क्षेत्र हेतु ही प्रयुक्त हुई। दक्षिण-पूर्वी मध्य प्रदेश (महाकौसल), छत्तीसगढ़ (दक्षिण कोसल), विदर्भ (महाराष्ट्र), उत्तरी आन्ध्र, उड़ीसा आदि उनके प्रभाव क्षेत्र में थे। यह क्षेत्र पन्द्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक उनके प्रभाव में रहा। रानी दुर्गावती भी गढ़ा-मण्डला के गोंड़ राज्य की शासिका थी।

छत्तीसगढ़ की कई रियासतें और जमीन्दारियाँ गोण्ड शासित रही। देवगढ़ के गोंड़ों ने मुस्लिम धर्म भी अपनाया और नागपुर की स्थापना की। ऐसे लोग अपने को मुस्लिम-राजगोण्ड कहने लगे।[95]

---

[92] G.S. Ghurye- Caste And Race In India (Popular Prakashan 2004 reprint) Page: 31-33

[93] http://tdil.mit.gov.in/ggs/Sanskritik_CG(HTML)/Sanskritik_Chhattisgarh/tribesofCG2.htm#gond

[94] http://en.wikipedia.org/wiki/Gondi_people

[95] http://en.wikipedia.org/wiki/Gondi_people

भूगोल में भूमि के प्राचीन इतिहास के तहत विस्तृत दक्षिणी गोलार्ध को गोण्ड़वाना लैण्ड कहा गया। इसमें आज का अफ्रीका, मेडागास्कर, दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया, भारतीय उपमहाद्वीप और एंटार्कटिका सम्मलित थे।[96]

चित्र 12 - प्राचीन गोण्ड़वाना लैण्ड

स्रोतhttp://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%97%E0%A5%8B%E0%A4%82%E0%A4%A1_(%E0%A4%9C%E0%A4%A8%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF)

गोण्ड लोगों की भाषा गोण्डी द्रविड़ समूह की भाषा है। दक्षिण से उत्तर और पूर्व में पलायन स्वभाविक भी दिखता है।

गोंड लोग यह भी कहते हैं कि, उनके पूर्वज सिलोन के नाग राजा से छिटक कर यहाँ आए।

गोण्ड लोगों में परिवार पितृ सत्तात्मक, पितृवंशीय, पितृनिवास स्थानीय परम्परा पर आधारित है। यह जनजाति कार्य और निवास क्षेत्र के आधार पर कई उपजातियों में बँटी है। यह लगभग 41 हैं। यथाः-

कार्य आधार पर-

जमीन्दारी आदि कार्य करने वाले-	राज गोंड,
कृषि और उसके सहायक कार्य करने वाले-	धरगोंड,
माँस-मदिरा से परहेज करने वाले-	रैठी,
लोहा गलाने वाले-	अगरिया,
नाचने-गाने वाले-	कोईलाभूता,
मंत्र,तन्त्र,शिकार और गोदना हस्तशिल्पी-	मोघया या ओझा गोंड,
बाँस हस्तशिल्प से बर्त्तन निर्माणी-	कंडरा और कलंगा,
गाने वाले-	भीम्मा,
बाजा बजाने वाले-	ढुलिया या नागर्ची,
राजगोंड़ के पुरोहित-	पाड़ल गोंड़

निवास आधार पर-

बस्तर में-	अबूझमाड़िया, माड़िया, दण्डामी माड़िया, मुरिया, दोरला, धुरूवा, कोया,

[96] http://en.wikipedia.org/wiki/Gondi_people

कोईतूर आदि।

सरगुजा में- खैरवार,

रायपुर और महासमुन्द में- सोनसरा

अन्य राज्यों में-

महाराष्ट्र- चन्द्रपुर में- आरख

मन्नेवार (कोलम) में- गैंती

मध्य प्रदेश-रायसेन में- दरोई

होशंगाबाद में- खटोला आदि-आदि।

इन उपजातियों में खान-पान का सम्बन्द्ध है, परंतु विवाह का सम्बन्द्ध नहीं है। यह उपजातियाँ भी गोत्रों में बिभक्त हैं। यथा- कुर्राम, नेताम, मरकाम, सर्याम, कारेआम, सिरसाम, भलावी, मरावी, उइका, उसेण्डी, धुर्वा, परतेती आदि। गोत्रों के टोटम हैं।[97]

गोंड़ लोग सामान्यतः वन, पहाड़, घाटी और नदी तीर के ग्रामों में हलबा, कमार, भुंजिया, भैना, मंझवार, सावरा, बिंझवार आदि जनजातियों के साथ निवास करते हैं। इनके घर छोटे, झोपड़ीनुमा और मिट्टी के होते हैं। इन पर घाँस-फूस या खपरैल की छत होती है। घर का निर्माण स्वयं करते हैं। इसमें दो-तीन कमरे और बरामदा होता है। दरवाजा बाँस या काष्ठ का होता है। सामने घिरा हुआ आँगन और पीछे बाड़ी रखते हैं। बाड़ी किचन गार्डन है। घर में एक स्थान देवी-देवता का होता है।

घर पर मिट्टी की कोठी ,(अनाज पीसने की चक्की) जाता ,ढ़ेकी ,मचिया ,चटाई ,खाट ,हल ,कुल्हाड़ी , ,(कुमनी) चोरिया ,जाल ,फन्दा ,फरसा ,धनुष-तीर ,हँसिया ,फावड़ा ,कुदालढूटी आदि (मछली रखने की) होते हैं।

महिलाएँ हाथचेहरे और पैरों पर हस्तशिल्प से गोदना गुदवाती हैं। इनके आ ,भूषण पैरों हेतु पैड़ी और पैरपट्टबाँह हेतु पहुँची और ;और गुलेठ (कंगना) ककना ,ऐंठी ,कलाई हेतु चूड़ी ;कमर हेतु करधन ,; ;(इयर रिंग) एरिंग ,कान हेतु खिनवा ;गले हेतु सुतिया और सुरड़ा ;नागमोरीनाक हेतु फुलीसिर केश हेतु ; खोचनी आदि हैं। यह अधिकांशतः नकली चाँदी या गिलट के होते हैं।

पुरूष पंचा-लिख गए या नगरों की ओर निकल गए गोंड़ पैंट-ई पहनते हैं। पढ़-धोती और बड , ,ब्लाउज ,पाजामा आदि पहनते हैं। स्त्रियाँ लुगड़ा और पोलका पहनती हैं। कुछ अन्य साड़ी-कुर्ता ,बुशर्ट कमीज की ओर भी झुकी हैं।-सलवार ,अंतःवस्त्र ,पेटीकोट

चावल ,कोदो और कुटकी का भात और पेज और बासी इनका मुख्य भोजन है। वे उड़द ,अरहर , सुअर और ,मुर्गे ,बकरा ,मौसमी सब्ज़ी आदि भी खाते हैं। माँसाहारी हैं। मछली ;तिवड़ा और कुल्थी की दाल ,(एक प्रकार की ताड़ी) हिरण का माँस खाते हैं। तम्बाखू खाते और बीड़ी पीते हैं। सल्फीमहुआ शराब और लांदा पीते हैं। (चावल की किण्डवित बासी और तीव्र नशा)

[97]R.V.Russell The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, London, 1916

चित्र 13 - बस्तर के डंडामी माड़िया पर ज़ारी डाक टिकट और 14 - गोंड नृत्य

स्रोत-
http://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%97%E0%A5%8B%E0%A4%82%E0%A4%A1_(%E0%A4%9C%E0%A4%A8%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF) और http://bastercg.blogspot.com/2009/03/all-about-ghotul.html

गोण्ड लोग पहले आदिम खेती, शिकार, वनोपज संग्रह आदि पर आश्रित थे। अब इसमें मजदूरी, सामान्य कृषि, नौकरी आदि भी जुड़ा है। इसकी पहाड़ पर रहने वाली अबूझमाड़िया और डंडामी माड़िया जैसी उपजातियाँ स्थनान्तरिय पैंडा कृषि, घाटी में रहने वाली मुरिया, दोरला आदि उपजातियाँ सीढ़ीनुमा खेतों पर कृषि और समतल मैदान में रहने वाले गोंण्ड लोग स्थाई कृषि करते रहे हैं। कृषि पिछड़ी और अविकसित रही है। कोदो, कुटकी, रागी, धान, मड-इया, जावर आदि ही फसलें हैं। पहाड़ी ढलान पर उड़द, तुअर, मूँग, कुल्थी, बेलिया खेसरी, तिलहन, जगनी आदि बोते हैं। बाड़ी में ऋतु शाक (मौसमी सब्ज़ी) उगाते हैं। वनों से आँवला, तेन्दू और उसका पत्ता, अचार (चार), हर्रा, बहेरा, महुआ, गुल्ली, साल बीज आदि एकत्र कर बेचते हैं। मजदूरी करते हैं।

प्रसव पति गृह में परिवार की बुजुर्ग महिला या स्थानिय दाई द्वारा कराया जाता है। जच्चा को सोंठ, गुड़, तिल, खोपरा आदि खाने को और जड़ी-बूटी का काढ़ा पीने को देते हैं। छठी पर शुद्धी करते हैं। जच्चा-बच्चा को स्नान करा अराध्य का दर्शन कराते हैं। बच्चे का नाम रखते हैं। रिश्तेदारों को दारू पिलाते हैं। प्रसव में पीड़ा बढ़ने सहित अन्य सभी रोगोपचार बैगा या भूमका के झाड़-फूँक द्वारा कराए जाते हैं।

लड़कों की विवाह उम्र सामान्यतः 14-18 और लड़कियों की 12-16 है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। उसका पिता वधु पिता को खर्ची या सुक में अन्न, दाल, तेल, गुड़ औअर नगद देता है। बारत ले वधु ग्राम जाते हैं। अबुझमाड़ियों में वधु को वर ग्राम लाया जाता है। विवाह जाति का बुजुर्ग सम्पन्न कराता है। गुरावट (विनिमय), घर जमाई (सेवा विवाह) आदि प्रचलित हैं। मामा और बुआ की संतानों से विवाह को प्राथमिकता है। पैठू (घुसपैठ या बालात/जबरदस्ती विवाह), उढ़रिया (सहपलायन या भाग कर प्रेम विवाह) आदि को जाति पंचायत में दण्ड उपराँत मान्य किया जाता है। चूड़ी पहनाना (पुर्न विवाह) भी है।

प्रायः मृतक को गाड़ते (दफनाते) हैं। कुछ सम्पन्न लोग जलाते भी हैं। तीसरे दिन पुरूष मुण्डन कराते हैं और घर आदि की साफाई कर स्नान करते हैं। दसवें दिन दशकरम कर भोज देते हैं।

गोण्ड जनजाति में पारम्परिक जाति पंचायत है। इसमें प्रमुख राजा कहलाता है, जिसकी सहायता हेतु पंच होते हैं। इसमें तलाक, अनैतिक सम्बन्ध, गौहत्या, आपसी झगड़ा, सम्पति विवाद निराकृत्त किए जाते हैं। ग्राम अराध्य की पूजा का दायित्व भी जाति पंचायत का है। दण्ड आर्थिक और सामाजिक हैं। निर्णय नहीं मानने पर जाति और समाज से पृथ्क कर दिया जाता है।

इनके आराध्य हैं- बूढ़ा देव (माहदेव-शिव का रूप), थाकुर देव, बूढ़ी माई, कंकालिन माता, छोटा पेन, बड-आ पेन, मंझला पेन, स्थानिय देवी-देवता, सूर्य, चन्द्र, नदी, पहाड़, पृथ्वी, बाघ, नाग, सभी हिन्दू अराध्य अदि। पूजा में मुर्गी, बकरा, सुअर आदि की बलि दी जाती है। जादू-टोना, भूत-प्त, पुर्नजन्म, आत्मा आदि पर विश्वास है। भूमका या बैगा ही जादू-टोने और रोग का उपचार झाड़-फूँक से करता है।

यह माना जाता है कि, गोंड़ लोगों के धर्म की स्थापना पारी कुपार लिंगो ने शम्भूशेक के युग में की थी। गोंडी धर्म कथाकारों के अनुसार शम्भूशेक अर्थात महादेव (शिव) का युग देश में आर्यों के आगमन से पहले हुआ था। इस काल से ही कोया पुनेम धर्म का प्रचार हुआ था। गोंडी बोली में कोया का अर्थ मानव तथा पुनेम का अर्थ धर्म है अर्थात मानव धर्म। आज से हजारों वर्ष पूर्व से गोंड जनजातियों द्वारा मानव धर्म का पालन किया जा रहा है। अर्थात गोंडी संस्कृति में वसुधैव कुटुम्बकम। इसलिए भारतीय समाज और संस्कृति के निर्माण में गोंड समाज और संस्कृति का आधार और योग रहा है। गोंडवाना भूभाग में निवासरत गोंड जनजाति की अदभुत चेतना उनकी सामाजिक प्रथाओं , मनोवृत्तियों, भावनाओं, आचरणों तथा भौतिक पदार्थों को आत्मसात करने की कला का परिचायक है। यह विज्ञानं आधारित भी रही है। समस्त गोंड समुदाय को पहांदी कुपार लिंगो ने कोया पुनेम के मध्यम से एक सूत्र में बंधने का काम किया। धनिकसर (धन्वन्तरी) नामक गोंड विद्वान् ने रसायन विज्ञान अवं वनस्पति विज्ञान का तथा हीरा सुका ने सात सुरों का परिचय कराया था।

इनके त्योहार हैं- हरेली, पोला, नवाखानी, दशहरा, दीपावली, होली आदि। बस्तर का दशहरा प्रसिद्ध है।

बस्तर सम्भाग में काकसार, बिलासपुर और सरगुजा सम्भाग में करमा, सुआ, पड़की आदि नृत्य करते हैं। विवाह पर नाच-गाना होता है। करमा, ददरिया, सुआ, फाग, बिहाव आइ लोक गीत हैं। इनकी अपनी गोंड़ी बोली है।

गोंण्ड जनजाति या उसकी कतिपय कुछ उपजातियों के साथ घोटुल प्रथा जुड़ी हुई है। बहुचर्चित प्रथा है। घोटुल गोंड जनजाति की समाजशिक्षा का केन्द्र है। यह लिंगो पेन यानी लिंगो देवता की आराधना -का पवित्र स्थल भी है। 'लिंगो` पेन घोटुल के संस्थापक और नियामक माने जाते हैं। यह माना जा सकता है किलिंगो देव को ही हल्बी परिवेश में बूढा देव और छत्तीसगढ़ी परिवेश में बड़ा देव सम्बोधित किया जाता , है। बूढा देव, बड़ा देव या लिंगो पेन भगवान शिव हैं। घोटुल की के ही अवतार या अंग माने जाते (नटराज) ,नियम निर्माण ,वाद्यऱ्यन्त्रों की रचना ,परम्परा का सूत्रपात रीति रिवाज आदि सभी लिंगो-द्वाराही किए गए माने जाते हैं। बेठिया प्रथा का बस्तर में चलन है। इस प्रथा के अन्तर्गत गाँव के लोग जरुरतमंद व्यक्ति के हनताना लिए करते हैं। घोटुल में आपसी भाई चारे की यही भावना बड़ा कार्य बिना किसी मे-से-घर का बड़ा निहित होती है और यह शिक्षा भी दी जाती है। जब कभी समाज या परिवार में कोई काम होता है, घोटुल के सारे सदस्य मिलख।यहाँ सहकार की भावना काम :जुल कर उसे पूरा करते हैं। चाहे वह सुख हो या दु-करती है।`घोटुल को आरम्भ से ही एक प्रभावी और सर्वमान्य सामाजिक संस्था के रूप में मान्यता मिलती रही है। इसे एक ऐसी संस्था के रूप में देखा जाता रहा है, जिसकी भूमिका गोंड जनजाति की मुरिया शाखा को संगठित करने में प्रभावी रहा है। यों तो मोटे तौर पर घोटुल मनोरंजन का केन्द्र रहा है, जिसमें प्रत्येक रात्रि नृत्य, गीत गायन, कथावाचन एवं विभिन्न तरह के खे-ल खेले जाते हैं। किन्तु मनोरंजन प्रमुख नहीं अपितु गौण होता है । प्रमुखतयह संस्था सामाजिक सरोकारों से जुडी होती है।घोटुल के नियम अलिखित : कलाप में भागीदारी की -को घोटुल के आन्तरिक क्रिया किन्तु कठोर और सर्वमान्य होते हैं। विवाहितों अनुमति, विशेष अवसरों को छोड़ कर, प्रायनहीं होती। घोटुल के नियमों का उल्लंघन होने पर दोषी को : दण्ड का भागी होना पड़ता है। घोटुल के नियमों का पालन नहीं करने वाले को उसकी त्रुटि के अनुरूप लघु जो आर्थिक या सामाजिक होता है। इस संस्था के संचाल ,जाने का प्रावधान होता है या दीर्घ दंड दियेन के

लिये विभिन्न अधिकारी होते हैं, जिनके अधिकार एवं कर्त्तव्य निश्चित और भिन्नभिन्न होते हैं। ये अधिकारी -। ये अधिकारी हैं अलग विभागों के प्रमुख होते हैं। इन अधिकारियों के सहायक भी हुआ करते हैं-अलग कोटवार, तसिलदार (तहसीलदार), दफेदार, मुकवान, पटेल, देवान (दीवान) हवलदार, कानिसबिल (कॉन्स्टेबल), दुलोसा, बेलोसा, अतकरी, बुदकरी आदि। प्रायः दीवान ही संस्था प्रमुख होता है। इन अधिकारियों के अधिकारों को घोटुल के बाहर चुनौती नहीं दी जा सकती। इसके साथ ही यदि किसी अधिकारी द्वारा अपने कर्त्तव्य पालन में किसी तरह की चूक हुई हो तो उसे भी घोटुल प्रशासन दण्ड़ित करने से नहीं चूकता।[98]

गोंड़ जनजाति को लिंगोंपेन और उसके वाद्ययंत्रों के लिए उल्लेख में लाया जाता है। यह कहा जाता है कि, बहुत पहले बस्तर सम्भाग के नारायणपुर जिले में रावघाट की पहाड़ियों की श्रृंखला के क्षेत्र- दुगान हूर- में सात भाई रहा करते थे। उन सात भाइयों में सबसे छोटे भाई का नाम था 'लिंगो`। वह अन्य भाईयों से अधिक गुणी, बुद्धिमान और बलशाली था। खेत-खलिहान तथा अन्य काम के समय सभी छह भाई सवेरे से अपने- अपने काम में चले जाते थे। छहों भाइयों का विवाह हो चुका था। लिंगो सभी भाई और भाभियों का लाड़ला था। वह संगीत-कला में भी निष्णांत तथा विशेषज्ञ था। कहते हैं कि, वह एक साथ बारह प्रकार के वाद्ययंत्र समान रूप से बजाता लेता था। सुबह उठते ही दैनिक कर्म से निवृत्त हो कर वह संगीत-साधना में जुट जाता। उसकी भाभियाँ उसके संगीत से इतना मन्त्र-मुग्ध हो जाया करती थीं कि, वे अपने सारा काम भूल जाती। इस कारण प्राय: उसके भाइयों और भाभियों के बीच तकरार हो जाया करती थी। कारण, न तो वे समय पर भोजन तैयार कर पातीं न अपने पतियों को समय पर खेत-खलिहान में भोजन पहुँचा पातीं। इस कारण छहों भाई लिंगो से भी नाराज रहा करते। वे थक-हार कर जब घर लौटते तो पाते लिंगो संगीत-साधना में जुटा है और उनकी पत्नियाँ मन्त्र-मुग्ध हो कर उसका संगीत सुन रहीं हैं। तब छहों भाइयों ने विचार किया कि यह तो संगीत से अलग हो नहीं सकता और इसके रहते हमारी पत्नियाँ इसके संगीत के मोह से मुक्त नहीं हो सकतीं। पहले तो लिंगो को समझाया गया कि, वह अपनी संगीत-साधना बन्द कर दे। लेकिन लिंगो चाह कर भी ऐसा न कर सका। तब छहों भाइयों ने तय किया कि क्यों न इसे मार दिया जाए। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। एक दिन उन लोगों ने एक योजना बनायी और शिकार करने चले गए। साथ में लिंगो को भी ले गए। जब वे सघन वन पहुँचे तो योजनानुसार एक बीजा पे़ड की खोह में छुपे 'बरचे` (गिलहरी प्रजाति का गिलहरी से थोडा बड़ा जन्तु। बरचे का रंग भूरा और पूँछ लम्बी होती है। आज भी इसका शिकार बस्तर के वनवासी करते हैं और बड़े चाव के खाते हैं।) को मारने के लिये लिंगो को पे़ड पर चढ़ा दिया और स्वयं उस पे़ड के नीचे तीर-कमान साध कर खड़े हो गये। इसी समय इन छहों भाइयों में से एक ने मौका अच्छा जान कर नीचे से तीर चला दिया। तीर लिंगो की बजाय पे़ड की शाख पर जा लगा। तीर लगते ही बीजा का रस, जो लाल रंग का होता है, नीचे टपकने लगा। छहों भाइयों ने सोचा कि तीर लिंगो को ही लगा है और यह रक्त उसी का है। उन्होंने सोचा कि जब तीर उसे लग ही गया है तो उसका अब जीवित रहना मुश्किल है। ऐसा सोच कर वे वहाँ से घर भाग आए। घर आ कर सब ने चैन की साँस ली। उधर लिंगो ने देखा कि, उसके भाई पता नहीं यों उसे अकेला छोड़ कर भाग गए हैं। उसे सन्देह हुआ। वह धीरे-धीरे पे़ड पर से नीचे उतरा और घर की ओर चल पड़ा। कुछ सोच कर उसने पिछले दरवाजे से घर में प्रवेश किया। वहाँ भाई और भाभियों की बातें सुनीं तो उसके रोंगटे खड़े हो गये। लेकिन उसने यह तथ्य किसी को नहीं बताया और चुपके से भीतर आ गया जैसे कि उसने उनकी बातचीत सुनी ही न हो। उसे जीवित देख कर उसके भाईयों को बड़ा आश्चर्य हुआ। दिन पहले की ही तरह गुजरने लगे। इस घटना के कुछ

[98] http://bastercg.blogspot.com/2009/03/all-about-ghotul.html

ही दिनों बाद उसका भी विवाह कर दिया गया। उसका विवाह एक ऐसे परिवार में हुआ, जिसके परिवार के लोग जादू-टोना जानते थे। उसकी पत्नी भी यह विद्या जानती थी। समय बीतता रहा। उनके परिवार में कभी कोई बच्चा या कभी भाई-भाभी बीमार पड़ते तो हर बार छोटी बहू पर ही शक की सुई जा ठहरती थी, कि वही सब पर जादू- टोना कर रही है। तब छह भाइयों ने छोटे भाई और बहू को घर से बाहर निकालने की सोची। एक दिन लिंगो के भाइयों ने स्पष्ट शब्दों में लिंगो से कह दिया, 'तुम्हारी और तुम्हारी पत्नी की वजह से हम सभी लोगों को काफी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। अत: तुम लोग न केवल घर छोड कर बल्कि यह क्षेत्र/परगना छोड कर कहीं अन्यत्र चले जाओ। हम तुम्हें अपनी सम्पत्ति में से कुछ भी हिस्सा नहीं देंगे लेकिन यादगार के तौर पर तुम्हें यह 'मोह्ट` (अँग्रेजी के 'यू` आकार की एक चौड़ी कील जिससे हल फँसी रहती है। इसे हल्बी में 'गोली ' कहा जाता है) देते है ।' लिंगो उसे ले कर अपनी पत्नी के साथ वहाँ से चल पड़ता है। वे रास्ते में कन्द-मूल खाते, उस क्षेत्र/परगने से बाहर एक गाँव के पास पहुँचते हैं। फागुन-चैत्र महीना था। वहां उसने देखा कि, धान की मिंजाई उपराँत पैरा (पुआल) कोठार (खलिहान) में रखा हुआ था। घर से निकलने के बाद से उन्हें भोजन के रूप में अन्न नसीब नहीं हुआ था। उसे देख कर उसके मन में अशा की किरण जागी और उसने विचार किया कि यों न इसी पैरा को दुबारा मींज कर धान के कुछ दाने इकट्ठे किये जाएं। यह सोच कर उसने उस कोठार वाले किसान से अपना दुखड़ा सुनाया और उस पैरे को मींजने की अनुमति माँगी। उस किसान ने उसकी व्यथा सुन कर उसे मिंजाई करने की अनुमति दे दी। उसने गाँव लोगों से निवेदन कर बैल माँगे और उस 'मोह्ट` को उसी स्थान पर स्थापित कर उससे विनती की कि, तुम्हें मेरे भाइयों ने मुझे दिया है। मैं उनका और तुम्हारा सम्मान करते हुए तुम्हारी ईश्वर के समान पूजा करता हूँ। यदि तुममें कोई शि त है, तुम मेरी भि त की लाज रख सकते हो तो इस पैरा से भी मुझे धान मिले अन्यथा मैं तुम्हारे ऊपर मल-मूत्र कर तुम्हें फेंक दूँगा। ऐसा कह उसने मिजाई शुरु की। वह मिजाई करता चला गया। मिजाई समाप्त होने पर न केवल उसने बल्कि गाँव वालों ने भी देखा कि उस पैरा से ढेर सारा धान निकल गया है। सब लोग आश्चर्य चकित हो गये और लिंगो को चमत्कारी पुरुष के रूप में देखने लगे। उसका यथेष्ट सम्मान भी किया। तब लिंगो ने उस 'मोह्ट` की बड़ी ही श्रद्धा-भक्ति पूर्वक पूजा की। उसे कुल देवता मान लिया और पास ही के जंगल में एक झोपड़ी बना कर बस गया। लिंगो और उसकी पत्नी ने मिल कर काफी मेहनत की। उनकी मेहनत का फल भी उन्हें मिला। जहाँ उन्होंने अपना घर बनाया था कालान्तर में एक गाँव के रूप में परिर्तित हो गया। समय के साथ लिंगो उस गाँव का ही नहीं बल्कि उस नए क्षेत्र/परगने का भी सम्मानित व्यक्ति बन गया। उस गाँव का नाम हुआ 'वलेक् नार`। 'वलेक्` यानी सेमल और नार यानी गाँव। हल्बी में सेमल को सेमर कहा जाता है। आज इस गाँव को लोग सेमरगाँव के नाम से जानते हैं।इस तरह जब उसकी कीर्ति गाँव के बाहर दूसरे गाँवों तक फैली और उसके भाइयों के कानों तक भी यह बात पहुँची। उसकी प्रगति सुन कर उसके भाइयों को बड़ी पीड़ा हुई। वे द्वेष से भर उठे। उन लोगों ने पुन: लिंगो को मार डालने की योजना बनायी और वे सब सेमरगाँव आ पहुँचे। उस समय लिंगो घर पर नहीं था। उन्होंने उसकी पत्नी से पूछा। उसने बताया कि लिंगो काम से दूसरे गाँव गया हुआ है। तब उसके भाई वहाँ से वापस हो गये और अपनी योजना पर अमल करने लगे। उन्होंने बारह बैल गाड़ियों में लकड़ी इकट्ठा की और उसमें आग लगी दी। उनकी योजना थी लिंगो को पकड़ कर लाने और उस आग में झोंक देने की। अभी वे आग लगा कर लिंगो को पकड़ लाने के लिये उसके घर जाने ही वाले थे कि सबने देखा कि लिंगो उसी आग के ऊपर अपने सभी वाद्ययंत्रों (1. माँदर, 2. ढुडरा (कोटोड, ठुडका, कोटोडका), 3. बावँसी (बाँसुरी), 4. माँदरी 5. पराँग, 6. अकुम (तोडी), 7. चिटकोली, 8. गुजरी बड़गा (तिरडुड्डी या झुमका बड़गी या झुमका बड़गा), 9. हुलकी, 10. टुंडोडी (टुडबुडी), 11. ढोल, 12. बिरिया ढोल, 13. किरकिचा, 14. कच टेहेंडोर, 15. पक टेहेंडोर, 16. ढुसिर (चिकारा), 17. कीकिड़, 18. सुलुड) को बजाते हुए नाच

रहा है। यह देख कर उन सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे थक-हार कर वहाँ से वापस चले गये। वे समझ गये कि, लिंगो को मारना सम्भव नहीं। लिंगो और उनके उन छह भाइयों के नाम का उल्लेख यह आया है- 1. उसप मुदिया, 2. पटवन डोकरा, 3. खण्डा डोकरा, 4. हिड़गिरी डोकरा, 5. कुपार पाट डोकरा, 6. मड़ डोकरा, 7. लिंगो डोकरा। उनके अनुसार लिंगो पेन तथा उनके छह भाई गोंड जनजाति के सात देव गुरु कहे गये हैं।[99]

विकास अनुक्रम में गोंड़ जनजाति की कला, खान-पान, रहन-सहन, जीवकोपार्जन के साधन, अराधना पद्धति, वस्त्र विन्यास आदि में परिवर्त्तन आया है। समस्या गरीबी ही बनी हुई है। नक्सलवाद से भी सर्वाधिक विपरीत प्रभाव और पलायन इसी जनजाति का हुआ है। अभाव ग्रस्त जीवन अब पराश्रित भी हो गया है।

गोंड़ और उससे उत्पन्न या जुड़ी जनजातियों में Sickle cell hemoglobin (HbS), Beta-thalassemia trait और G6PD की कमी के कारण उत्पन्न रोग पाए जाते हैं। HbS gene की आवृत्ति का विस्तार 0.0530 से 0.1805, beta-thal gene from 0 से 0.0283 और Gd- gene 0.0189 से 0.1120 तक है।[100]

11. हलबाः-

हलबा जनजाति छत्तीसगढ़ राज्य की प्रमुख जनजाति है। यह मुख्यतः बस्तर सम्भाग के पाँचों जिलों में रहती है। इसके अतिरिक्त यह लोग रायपुर सम्भाग के दुर्ग, धमतरी और राजनाँदगाँव जिलों में भी रहते हैं। 2001 में इनकी जनसंख्या 326,671 थी। यह प्रगतिशील जनजाति मानी है। कथित मुख्य धारा की जातियों से इनका सम्पर्क अन्य जनजातियों की अपेक्षा अधिक है। इनकी महापंचायत की अपनी वेबसाइट http://www.halbamahapanchayat.comभी है।

समाजशास्त्री पं. गंगाधर सामंत शर्मा का मत है कि, हल से कृषि कार्य करने के कारण हलबा संज्ञा की व्युत्पत्ति हुई। डा.ग्रियर्सन ने भी इसी मत का समर्थन किया।[101]

इस जनजाति के लोग स्वयं को महाभारत के रूक्मणी हरण प्रसंग से जोड़ते हैं। हरण के समय कृष्ण अग्रज बलराम द्वारा, विरोधियों को, रोक दिया गया था। अतः हरण में सम्मलित सैनिकों ने प्रभावित हो, उसके अस्त्र, हल और मूसल अपना लिए। उन्हीं सैनिकों के वंशज हल से खेती कर धान प्राप्त करने लगे। वे उसे मूसल से बहना में कूट कर चिवड़ा बनाने लगे। हल, बहना और मूसल से सम्बद्धता से हल+बा=हलबा शब्द बना।[102]

---

[99] http://bastercg.blogspot.com/2009/03/all-about-ghotul.html

[100] http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pubmed/2129613 (Institute of Immunohaematology ICMR, Seth G.S. Medical College, Parel, Bombay, India का V.R.Rao और A.C.Gorakshakar का सर्वेक्षण)

[101] एस.एस.भट्ट-हलबा जनजाति(मध्य प्रदेश आदिम जाति अनुसन्धान संस्थान,भोपाल)

[102] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ। (सम्पादक-टी.के.वैष्णव)

यह द्रविड़ मूल की जनजाति वारंगल की रहने वाली मानी जाती है।[103] राबर्ट वाने रस्सेल्ल इन्हें गोंड़ और हिन्दू के सन्योग से उत्पन्न मिश्रित जाति मानता है।[104] सम्भवतः उड़िया राजा के घरेलू सेवकों के एक वर्ग द्वारा सैनिक कार्य अपनाना भी एक अवधारणा के रूप में सामने आया है।

बस्तर में हलबाओं को ऊँचा दर्जा हासिल है। वे बस्तर शासकों के अंगरक्षक रहे। हालाँकि दरियाव के काल में उन्हें डोंगर क्षेत्र के हलबा विद्रोह (1774-79) उपराँत चित्रकोट प्रपात से नीचे भी फिंकवाया गया। जैनेटिक अध्ययन[105] में यह पाया गया है कि, वे द्रविड़ मूल के हैं। अतः रस्सेल्ल का यह अनुमान कि, वह वारंगल से आए, माना जा सकता है। अब यह कहा जाता है कि, यह वारंगल की तेलगू जनजाति अन्नाम देव के साथ बस्तर आई। यह लोग दंतेश्वरी के भक्त हुए।

इस जनजाति के नाम पर ही छत्तीसगढ़ी आर्य भाषा के रूप का नाम हलबी पड़ा। यह लोग हलबी भाषा/बोली बोलते हैं। इसमें द्रविड़ भाषा के शब्दों के उपयोग के बावज़ूद, यह आर्य भाषा के रूप में विकसित हुई। यह बस्तर में स्थापित हुई। पूरे बस्तर क्षेत्र में भाषाओं का अति और विचित्र संगम हुआ है। तेलगू, उड़िया, मराठी, छत्तीसगढ़ी हिन्दी, कई जनजातिय बोलीयाँ और भाषाएँ-गोंड़ी, गदबा, (मुण्डा) आदि भाषाओं के क्षेत्र और वक्ता होने से हलबी उन सब के मिश्रण की सम्पर्क भाषा के रूप में सामने आई। हलबा जाति से सम्बन्धता के कारण हलबी संज्ञा मिली। ग्लासफोर्ड और स्टेन कोनो हलबी को छत्तीसगढ़ी की उपबोली मानते हैं। जार्ज ग्रियसन और आर.के.एम.बेट्टी इसे मराठी की उपबोली मानते हैं। गंगाधर सामंत, ई.एस.हायड और सुनीति कुमार चटर्जी हलबी को उड़िया और मागधी के निकट मानते हैं।[106] वैसे हलबी में उड़िया शब्द ही अधिक हैं। हलबी में छत्तीसगढ़ी हिन्दी, उड़िया, मराठी, गोंड़ी और मुण्डा गदबी का प्रभाव है। उच्चारण छत्तीसगढ़ी की तरह है। छत्तीसगढ़ के प्रवासी और उत्तर-दक्षिण समंवय की प्रतिनिधि प्रतीक हलबा ही प्रतीत होती है। यह जनजातीय भाषा बस्तर रियासत में भी प्रयुक्त होती थी। इसे बस्तर क्षेत्र की मुख्य भाषा माना जाता है। विभिन्न जातियाँ और जनजातियाँ अलग-अलग प्रकार की हलबी बोलती है, जो उसी जाति की हलबी के नाम से जानी जाती है। कमारी, भुंजिया, नाहरी, राजमुरिया, मिरगानी, चंडारी, महरी, बस्तरी और भतरी इसकी बोलियाँ हैं। इस ऊपर, पूर्व पृष्ठों पर, और चर्चा कर ली गई है।

इस जनजाति के लोग सामान्य कदकाठी के होते हैं। त्वचा का रंग साँवला तथा नाक चौड़ी और दबी होती है। चेहरा चौड़ा है। अधिक मेहनती होने के कारण शरीर हृष्ट-पुष्ट और गठीला है। शारीरिक लक्षण प्रोटोआस्ट्रेलाइड प्रजाति के हैं।

यह लोग बड़े ग्रामों में ही बसे हैं। हलबा लोगों के आवास कच्चे और मिट्टी के होते हैं, जिन पर खपरैल की छत होती है। वे अपने आवास स्वयं बनाते हैं। ग्राम पारों में बंटे होते हैं। यह लोग सामान्यतः गोंड़, भतरा, मुरिया, माड़िया आदि जनजाति के लोगों के साथ निवास करते हैं। हलबा महिलाएँ आवास

---

103 http://www.scribd.com/doc/20206344/Halba-Tribe

104 R.V.Russell-The tribes and castes of Central provinces of India,Voll.-III,P.-

105 यह जैनेटिक अध्ययन कोलकाता (भारत) के Anthropology & Human Genetics Unit, Indian Statistical Institute; Human Genetics & Genomics Department, Indian Institute of Chemical Biology और Crystallography & Molecular Biology Division, Saha Institute of Nuclear Physics, Calcutta India के द्वारा किया गया था।

106 सुनीति कुमार चटर्जी-ओरीजन आफ बंगाली,पृ.14

गृह की स्वच्छता और सफाई बनाए रखने हेतु जानी जाती हैं। यह लोग सफाई पसन्द हैं। यह लोग जड़ी-बूटी के ज़ानकार होते हैं।

महिलाएँ अपने हाथ-पैरों में विभिन्न आकृतियों के गोदना गुदवाती हैं। पुरूष धोती, पटका, बंड़ी, सलुका आदि और महिलाएँ साड़ी-ब्लाउज पहनती हैं। पुरूष अब पैट-शर्ट और कुर्ता-पायजामा भी पहनते हैं। पुरूष पागा भी बाँधते हैं।[107]

हलबा लोगों के भोजन में चावल, कोदो और कुटकी की बासी, ऋतु शाक, चटनी आदि है। वे माँसाहारी हैं, पर अन्य जनजातियॉ की अपेक्षा यह लोग माँस और मदिरा छोड़ने के लिए भी जाने गए।[108] वे मुर्गा, मछली, बकरा, खरगोश आदि खाते हैं। उत्सव, त्योहार और संस्कारों के अवसर पर सल्फी, ताड़ी और महुआ शराब देवी-देवता को चढ़ा कर पीते हैं।

यह लोग अधिकांशतः कृषि और वन उपज पर निर्भर हैं। यह प्रगतिशील जनजाति है और अन्य जनजातियों की तुलना में इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी मानी जाती है। इनमें अन्य जनजातियों से शिक्षा का स्तर भी अच्छा है। कहीं-कहीं तो इन्हे छत्तीसगढ़ की सर्वाधिक प्रगतिशील और सम्पन्न जनजाति लिखा गया है।[109] यह लोग अपने खेतों में धान, कोदो, अरहर, उड़द, मूँग, तिल्ली, चना, तिवरा, कुटकी आदि बोते हैं। यह लोग मजदूरी और चिवड़ा कूटने का कार्य भी करते हैं। कई लोग शासकीय नौकरी भी कर रहे हैं।

हलबा लोग अब तीन प्रकार से जाने जाते है- छतीसगढ़िया, बस्तरिया और मराठिया। छत्तीसगढ़ में प्रथम दो ही विभाजनों को माना जाता है। छतीसगढ़िया हलबा रायपुर सम्भाग के दुर्ग जिले के बालोद, ड़ौण्ड़ी, दल्ली-राजहरा, गुण्डरदेही और राजनाँदगाँव जिले के चौकी, डोंगरगाँव में और बस्तरिया हलबा रायपुर सम्भाग के नगरी, गरियाबन्द और देवभोग तथा बस्तर सम्भाग के बस्तर, काँकेर, अंतागढ़, बड़े ड़ोगर, भानुप्रतापपुर, नारायणपुर, दंतेवाड़ा, बीजापुर में रहते हैं। आगे इनके पुरैत और सुरैत विभाजन हैं। पुरैत उच्च माने जाते हैं। तदुपरांत बहिर्विवाही गोत्रों में विभाजन है। गोत्रों के टोटम हैं। हलबाओं का ही एक दूसरा समूह है जो कि, दुर्गादेवी की उपासना करते हैं, यह सवता हलबा कहलाते हैं।

इनके जीवन चक्र में जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कार का विवरण यह है- प्रसव घर पर सुईन (दाई) द्वारा कराया जाता है। बुजुर्ग महिलाएँ उसकी सहायता करती हैं। सुईन नाल ब्लेड से काटती है। दूसरे दिन तेलगुर करते हैं। तिल को कूट कर उसमें वनीय जड़ी-बूटी को घी के साथ मिला कर जच्चा और इस आयोजन मे6 आई महिलाओं को दिया जाता है। बच्चे की नाल गिरने पर शुद्धि करते हैं। स्नान, सफाई आदि के उपराँत बुजुर्गों द्वारा नामाकण किया जाता है।

व्यस्क विवाह है। बाल विवाह नहीं है। सगोत्रिय विवाह वर्जित है। सामान्यतः मामा और बुआ की संतानों से ही विवाह किया जाता है। वर पिता ही वधु गृह जाकर प्रस्ताव रखता है। तैय पाए जाने पर मंगनी की रस्म की जाती है और सूक दिया जाता है। विवाह हलबा जनजाति का भण्डारी सम्पन्न कराता है। विधवा विवाह और तलाक प्रचलित है।

मृतक को गाड़ते हैं। अब दाह भी करने लगे हैं। इसमें पिता का दाह बड़ा पुत्र और माता का छोटा पुत्र करता है। दाह उपराँत स्नान करते हैं। छोटे बच्चे के शव को दफनाते हैं। मृतक संस्कार महिला हेतु सातवें

[107] हलबा, जनजाति का सक्षिप्त मानव शास्त्रीय अध्ययन मोनोग्राफिक अध्ययन

[108] http://tdil.mit.gov.in/ggs/Sanskritik_CG(HTML)/Sanskritik_Chhattisgarh/tribesofCG3.htm

[109] http://www.mapsofindia.com/chhattisgarh/people-culture-festivals/halbaa.html

दिन और पुरूष हेतु नौवें दिन होता है। कहीं-कहीं तीसरे दिन भी करते हैं। तदुपरांत बैगा को बुला घर शुद्ध करा भोज देते हैं।

न्याय व्यवस्था हेतु पारम्परिक राजनैतिक संगठन है। हलबा निवास को 18 क्षेत्र में विभक्त कर उसे गढ़ की संज्ञा दी गई है। यथा- बड़े डोंगर गढ़, नारयणपुर गढ़, बिन्द्रानवा गढ़, अंता गढ़, काँकेर गढ़, सोनपुर गढ़, कोलार गढ़ आदि। इन प्रशासनिक इकाईयॉ को भी कतिपय लोग गलत रूप से व्याख्या कर किले से जोड़ देते हैं। इसमें बड़े प्रकरण निराकृत्त किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त जाति पंचायत, राज या गढ़ पंचायत, गाँव पंचायत आदि में छोटे विवाद निपटाए जाते हैं। इनके निर्णय सभी को मान्य होते हैं।

हलबा लोग हिन्दू देवी-देवताओं को मानते हैं। हिन्दू त्योहार मनाते हैं। दंतेश्वरी माई को पूजते हैं। इसके अतिरिक्त ग्राम अराध्य के रूप में दूल्हा देव, करिया धुरवा, माता देवला, शीतला माता, कंकालिन माता, शंकर भगवान, हनुमान आदि और कुल अराध्य के रूप में गुसई, पुसई, कुंवर देव, मौली माता आदि को पूजते हैं। वे अपनी महापंचायत की वेबसाइट में धर्म आदिवासी लिखते हैं।

यह लोग नवाखाई, दीपावली, रक्षाबन्धन, जिदरी आदि त्योहार मनाते हैं। कर्मा, पड़की, होली आदि नृत्य करते हैं। धनकुल, छेरछेरा, गौरा, सुआ आदि लोक गीत हैं। आपस में हलबी में और अन्य लोगों से छत्तीसगढ़ी में बात करते हैं।

विकास अनुक्रम में इस जनजाति ने शिक्षा को अपना कर अन्य जनजातियों की तुलना में अधिक प्रगति की है। इनकी अराधना, रहन-सहन, लोक कला, वस्त्र विन्यास, अराध्य, आभूषण आदि में बदलाव आया है। हालाँकि कुछ लोग इनमें कट्टरता, जिद्दीपन और अपने प्रति अधिक आग्रही होने आदि के अंश के विकास को भी देखते हैं।

12. कंवरः-

कंवर छत्तीसगढ़ की प्रमुख जनजाति है। राज्य में यह, जनसंख्या की की दृष्टि से द्वितीय क्रम पर है। 2001 में इनकी जनसंख्या 760,298 थी। यह लोग रायपुर सम्भाग के रायपुर, महासमुन्द और राजनाँदगाँव; सरगुजा सम्भाग के सरगुजा और कोरिया तथा बिलासपुर सम्भाग के बिलासपुर, कोरबा और रायगढ़ जिलों में निवास करती है। बिलासपुर सम्भाग में इनका संकेन्द्रण अधिक है।

कंवर जनजाति की उत्तपति के एतिहसिक अभिलेख नहीं हैं। वे स्वयं अपनी उत्पति दुर्योधन से सम्बद्ध करते हैं। महाभारत पराजय उपराँत शेष रहे कौरव भाग कर वनों में छिपे। वे वहीं जीवनयापन करने लगे। ये कौरव और उनके वंशज कंवर कहलाए। इसी कारण वे अपने को कुरूवंशी और चन्द्रवंशी कहते हैं। कंवर की एक शाखा तंवर भी कहलाती है। इन्हें ही छत्तरी भी कहते हैं। रतनपुर राज्य के समय इनकी सात जमीन्दारियाँ पुराना बिलासपुर जिला क्षेत्र में थीं। यह थीं- कोरबा, छुरी, चाँदा, लाफा, उपरोंड़ा, मतिन और पेंड्रा।[110] जमीन्दार रहे कंवर लोग ही तंवर या छत्तरी कहलाने लगे। इनका पारम्परिक व्यवसाय सेना में कार्य करना था। अब यह लोग कृषि-कार्य और मजदूरी करके अपना जीवनयापन करने लगे गये हैं।[111] कंवर लोग भी अपनी मूल बोली भूल गए हैं और इन्होंने छत्तीसगढ़ी को अपना लिया है।[112] इनकी भाषा कंवरी थी, जो इंड़ो-आर्य समूह की है। यह हलबी की तरह और उससे उत्पन्न है।[113]

---

[110] ए.के.द्विवेदी-कंवर जनजाति

[111] http://tdil.mit.gov.in/CoilNet/IGNCA/kabir005.htm

इस जनजाति के लोग छत्तीसगढ़ मे गोंड़, उराँव, मझवार, बिंझवार, भैना, मुण्डा, नगेसिया आदि जनजाति के लोगों के साथ ग्रामों में निवास करते हैं। कुछ अन्य जातियाँ जैसे कुम्हार, तेली, रावत आदि भी साथ ही ग्रामों में रहती हैं। इनके आवास घाँस-फूस या खपरैल के छप्पर वाले और मिट्टी के बने होते हैं। इनके घरों में चार-पाँच कक्ष और सामने परछी होती है। इनमें एक कक्ष रसोई और पूजा हेतु होता है। रसोई से सटे कक्ष में खोड़िया (कोठी) रखते हैं और उसमें अधिकाँशतः धान भण्डारित करते हैं। पशु कोठा पृथक बनाते हैं। दीवारे श्वेत या पीली मिट्टी (छुई) से और फर्श गाय के गोबर से लीपते हैं।

इनके घरों में सामान्यतः खाट, बर्त्तन (मिट्टी, काँसा, पीतल, एल्युमीनियम आदि के), जांता, मूसल, टोकरीयाँ (बाँस की), कृषि उपकरण- नागर, कोपर, कुदाली, टाँगी, रापा आदि के साथ शिकार हेतु औजार भी रहते हैं।

इनके वस्त्र विन्यास में पुरूष हेतु घुटने तक धोती और कमीज़ तथा महिलाओं हेतु सूती साड़ी-ब्लाउज एवं छोटी बालिकाओं हेतु लहंगा-ब्लाउज या छोटी या आधी साड़ी है। कुछ पुरूष उंगली में मुन्दरी या छल्ला, हाथ में चूड़ा, कान में नगी या बारी और गले में कंठा नामक आभूषण पहनते हैं। महिलाएँ हाथ में

चित्र 15 - कंवर महिला स्रोत -http://www.joshuaproject.net/peopleprofile.php?peo17122=3&rog=3IN

ककनी, चूड़ी, ऐंठी; बाँह में नागमोरी, पहुँची; गले में सूता, चाँदी रूपईया हार; कान में सुतवाँ, खिनवा; नाक में फूली; कमर में करधन; पैरों में पैरी (काँसे या चाँदी की), साटी आदि आभूषण पहनती हैं। वे हाथ, पैर और बाँह पर हस्तशिल्प का गुदना गुदवाती हैं।

इनके भोजन में चावल और कोदो का भात और बासी पेज मुख्य है। वे उड़द, तिवड़ा और अरहर की दाल, ऋतु शाक (मौसमी सब्ज़ी) और भाजी आदि भी खाते है। वे माँसाहारी है और मुर्गा, बकरा, मछली, चीतल, सांभर, कोटरी, खरगोश, वन शूकर (जंगली सुअर) आदि खाते हैं। महुआ की शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी और तम्बाखू पीते हैं।

पहले यह लोग सेना में भर्ती होते थे और सैनिक थे। वे अच्छे धर्नुधारी माने जाते रहे हैं।[114] अब कृषि करते हैं। वे मजदूरी भी करने लगे हैं। धान, कोदो, तिल, तिवरा, अरहर, मूँग, उड़द आदि इनकी उपजें हैं। सिंचाई साधन नहीं बराबर हैं, जिनके पास यह साधन हैं वे गेहूँ, चना आदि भी बोते हैं। शेष लोग मज़दूरी करते हैं। यह लोग वनोपज संग्रह से भी आय प्राप्त करते हैं। वे महुआ, तेन्दूपत्ता, महुल पत्ता, चार, गोन्द, हर्रा, धवई फूल आदि वनोपज संग्रह कर बेचते हैं। अब शिकार नगण्य प्राय है।

---

112 chhattisgarhstate.hpage.com

113 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php?peo3=17122&rog3=IN

114 http://www.india9.com/i9show/-Madhya-Pradesh/Kanwars-54948.htm

कंवर जनजाति पितृवंशीय, पितृसतात्मक और पितृनिवास स्थानिय गुण रखने वाली जनजाति है। कंवर कई उपजातियों में विभक्त हैं। इन उपजातियों में खान-पान का सम्बन्द्ध है, पर विवाह का नहीं। तंवर या छत्तरी, राठिया, पैंकरा, चेरवा, कमलवंशी, दूधकंवर आदि इसकी उपजातियाँ हैं। तंवर या छत्तरी लोग जमीन्दार कवंर रहे। वे अपने को अन्य उपजातियों से श्रेष्ठमानते हैं। वे रीति-रिवाज और सामाजिक नियम राजपूत क्षत्रियों के अपनाने की कोशिश करते हैं। इस उपजाति विधवा विवाह वर्जित है। रायपुर जिले में सामान्य कंवर कृषक सिरदार कहलाते हैं। राठिया उपजाति का संकेन्द्रण रायगढ़ जिले में है। चेरवा उपजाति की उत्पत्ति कंवर पुरूष से चेरो महिला के सम्बन्ध से मानी गई है। यह लोग सरगुजा और कोरिया जिलों में संकेन्द्रित हैं। पैकरा कंवर रतनपुर के कल्चुरी शासकों के सैनिक थे। कमलवंशी उपजाति के लोग मूल, शुद्ध या प्रारम्भिक कंवर माने जाते हैं। दूधकंवर उपजाति को डाल्टन कंवर जनजाति की क्रीम कहता है। इनका स्थान तंवर या छत्तरी के बाद माना जाता है। यह उपजातियाँ गोत्रों में विभक्त हैं। गोत्रों के टोटम हैं। सगोत्र विवाह वर्जित है। गोत्र हैं- बधवा, बिच्छी, बिलवा, बोकरा, चन्द्रमा, चंवर, चीता, चुवा, चंपा, धनगुरू, ढ़ेकी, दर्पण, गोबरा, हुड-अरा, जाता, कोठी, खुमरी, लोधा, सुआ, फूलबंघिया, गनगाकछार, सोनवानी, माझी, नाहना, भैसा, समुन्द, कोड़िया, दूध, आडिला, सोन पखार, जुआरी, भंड़ारी, सिकुटा, डहरिया आदि।

प्रसव सुईन दाई (बुजुर्ग महिला या दाई) द्वारा घर पर कराया जाता है। नाल (नाड़ा) जमीन में गाड़ते हैं। प्रसूता को तीन दिन तक अन्न का भोजन नहीं देते और उसके स्थान पर कशापानी, गुड़, सोंठ, तिल लड्डू, नारियल आदि देते हैं। तदुपरांत सामन्य भोजन दिया जाता है। छठी को शुद्धी करते हैं, जिसमें शिशु के बाल उतारते हैं। तदुपरांत पूजा करते हैं और भोज करते तथा कराते हैं।

कंवर जनजाति में विवाह की उम्र लड़के हेतु 14-18 और लड़कियों हेतु 12-16 वर्ष है। पहल और प्रस्ताव वर पक्ष और निर्णय कन्या पक्ष करता है। रिश्ता स्वीकारे जाने पर वर पक्ष के लोग नई साड़ी, गुड़, नगद और शराब लेकर कन्या पक्ष के घर मंगनी हेतु जाते हैं। तदुपरांत द्वारामांगा, रोटी तोड़ना, विवाह और गौना होता है। वर पक्ष सूक भराई में वधु पक्ष को चावल, दाल, गुड़, तेल, हल्दी और नगद देता है। जाति का बुजुर्ग व्यक्ति विवाह सम्पन्न कराता है। अब ब्राह्मण से यह कार्य कराते हैं। गुरावट (विनिमय) और गह्न जमाई प्रथा भी है। ढुकू (घुसपैठ) और उढ़रिया (सहपलायन) विवाह भी मान्य किया जाता है, हालाँकि सामाजिक दण्ड उपराँत। विधवा को चूड़ी पहनाने (पुंर्विवाह) की अनुमति है।

सामान्यतः शव जलाते हैं। कभी-कभी गाड़ते भी हैं। बच्चों को गाड़ा जाता है। तीसरे दिन तीज नहान कर मुण्डन कराते हैं। पुरूष हेतु दसवें, महिला हेतु नवें और बच्चे हेतु पाँचवें दिन शुद्धि करते हैं। पूजा पाठ कर भोज देते हैं।

इनमें भी पारम्परिक जाति पंचायत है। इसका प्रमुख गौंटिया कहलाता है। यह गाँव में होती है। आठ-दस ग्रामों को मिला चक पंचायत होती है। इसके पश्चात सात उपजातियों की सतगड-इया पंचायत होती है। यह कवंर जनजाति की सर्वोच्च पंचायत है। इसका निर्णय बन्धकारी है। इन पंचायतों द्वारा वैवाहिक विवाद, अन्य जाति में विवाह, अनैतिक सम्बन्ध और सामाजिक नियम तोड़ने के मामले आते हैं।

इनके आराध्य हैं- दूल्हा देव, बाहन देव, ठाकुर देव, शिकार देव, सर्वमंगला देवी (दुर्गा), कोसगाई देवी (दुर्गा), बुढ़वा रक्शा, मातिन देवी, बंजारी देवी, सभी हिन्दू अराध्य, सूर्य, भूमि, नाग, बाघ देव, वृक्ष आदि। बकरा या मुर्गा की बलि भी देते हैं। भूत-प्रेत, जादू-टोना, मंत्र-तंत्र, आत्मा, पुर्नजन्म आदि मानते हैं। इसका जानकार और झाड़-फूक करने वाला बैगा कहलाता है।

इनके त्योहार हैं- हरियाली, जन्माष्टमी, पोला, तीजा, पीतर, नवाखानी, अनंत चौदस, परमा एकादशी, दुर्गा नवमी, दशहरा, दीपावली आदि। नृत्य हैं- करमा, सुआ, भोजली, राम-सप्ताह, रहस आदि।

इनके गाँवों में रामायण चबूतरा होता है। इस पर रामचरित मानस का पाठ आयोजित करते हैं। महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले लोक गीत हैं- सुआ, भोजली, राम सप्ताह। पुरूषों द्वारा गाए जाने वाले लोक गीत हैं- फाग, राम सप्ताह, सेवा आदि।

शिक्षा कम है। हालाँकि इसी कारण से बोलचाल, रहन-सहन, वेशभूषा, परिधान, आवास, वस्तु उपयोग, लोक कला, अराधन, अराध्य, विचार आदि में परिवर्त्तन आया है और यह लोग अन्य कई जनजातियों से बेहतर हुए हैं। 1976 में बेरली की कंवर महासभा में सामाजिक दोषों यथा- विवाह में सूक प्रथा, अराधना में बलि प्रथा, माँसाहार, मदिरापान आदि को निषिद्ध घोषित किया गया।

इनकी भी मुख्य समस्या अर्थाभाव है।

13. खैरवारः-

खैरवार छत्तीसगढ़ की अल्प संख्यक जनजाति है। इनकी अधिकांश जनसंख्या झारखण्ड और मध्य प्रदेश में है। इसके अतिरिक्त, यह लोग, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश में भी हैं। छत्तीसगढ़ में 2001 में इनकी जनसंख्या 98,701 थी। छत्तीसगढ़ के सरगुजा सम्भाग के तीनों जिलों में इनका संकेन्द्रण है। इसके अतिरिक्त यह लोग बिलासपुर सम्भाग के बिलासपुर जिले में हैं। 1857 की क्राँति में सरगुजा क्षेत्र में व्यापक हलचलें और वास्तविक सशस्त्र विद्रोह हुआ था। उसमें इस जाति का उल्लेख प्रधानता के साथ आता है। क्रांति के नायक निलाम्बर-पीताम्बर और वन सत्याग्रह के फेतह सिंह इसी जनजाति के थे। यह लोग मध्य प्रदेश के पन्ना और छतरपुर जिलों में कोन्दर कहलाते हैं। यह लोग अपनी निष्ठा, एकता और साहस हेतु जाने जाते हैं।[115] इनकी भी बोली अब विलुप्त प्राय है।[116] अब हिन्दी की स्थानिय बोली बोलते हैं।[117] चेरो शासन के आने तक पलामऊ क्षेत्र पर इनका अधिपत्य रहा। यह लोग चेरो विस्तार में भी सहायक हुए और इस कारण से उनसे ज़ागीरें पाईं।[118] चेरो लोग अपने आप को सूर्यवंशी क्षत्रिय से जोड़ते हैं, पर वे प्रोटो-आस्ट्रलायड ही हैं और द्रविड़ भाषा का प्रयोग करते हैं।

खैरवार उत्पति पर एतिहासिक दस्तावेज नहीं हैं। यह माना जाता है कि, खैरवार शब्द खैर (करूष या कत्था) वृक्ष से बना। डालटन का मत है कि, वे गोंड़ जो खैर वृक्ष से कत्था बनाते थे खैरवार कहलाए। रस्सेल्ल का मत है कि, छोटा (चुटिया) नागपुर क्षेत्र में जो चेरो और संथाल यह कार्य करते थे खैरवार कहलाए। स्वयं खैरवार लोग अपनी व्युत्पत्ति सूर्यवंशी क्षत्री महाराज हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व से मानते हैं।

खैरवार, चेरो और उराँव में कई तथ्य एक जैसे पाए जाते हैं। यह माना जाता है कि, खरवार, चेरो, एक ही उपजाति हैं, लेकिन वे अलग-अलग उपजाति के पहचान से जाने जाते हैं। खरवार जनजाति के लोग अपने उपनाम में सिंह लगाते हैं। उनका रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज प्रकृति प्रदत्त है। ये काफी गंभीर, संयमी व उच्च विचार के होते हैं। एक मत है कि, खैरवार जनजाति का निवास स्थल अजानगर (वर्तमान अयोध्या) की ओर था। अति पुरातन काल में पुराण पुरूष मनुवैवस्वत के छठे पुत्र करूस ने भारत के पूर्वी प्रांतों में अपने राज्य की स्थापना की थी। महाभारत में विंध्यपर्वत पर खैरवार जाति ने आश्रय लिया

---

[115] डा.संजय अलंग-कोरिया रियासत का प्रशासनिक अध्ययन

[116] http://www.patrika.com/news.aspx?id=259749

[117] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php?rog3=IN&rop3=112508

[118] http://jharkhandi.com/kharwar.aspx

था। कई जन जनजातियों और कई दूसरे समुदायों के आगमन व ठहरने का स्थान बिहार के रोहतास जिले में स्थित रोहतास गढ़ का किला था। रोहतास गढ के शासक भी चेरो, खरवार, उराँव, मुंडा व संथाल आदिवासी रहे। सत्ता हस्तांतरण के बाद वे दूसरे क्षेत्रों में पलायन करते गये। आदिवासी खरवार भी पलामू की ओर बढ़े। वहां उन्होंने अपनी आजीविका को सुरक्षित पाया और तब से वहीं बस गये। [119]

पुराने जमाने में आजीविका का सबसे सुरक्षित संसाधन भूमि और वन थे। घने जंगल और उपजाऊ जमीन देखकर लोग खेती करने लगे और वहीं के होकर रह गये। रोहतास गढ से प्राप्त प्रस्तर लेख को देखकर इतिहासकार प्रो. किल होर्न ने प्रताप धौला नामक सरदार को खेरवाल यानि खैरवार जाति का प्रधान माना है। पुन: एक दूसरे शिलालेख, जो तिलौथु (रोहतास जिले का एक प्रखंड) के पास फुलवारी नामक स्थान में प्राप्त हुआ है, से पता चलता है कि खैरवालों के नाम से प्रताप धौला का रोहतास गढ और उसके आसपास के भू-भागों पर पूरा अधिपत्य था। आज भी रोहतास जिला सहित उत्तर प्रदेश के सोनभद्र, मिर्जापुर तक खैरवार जाति की अच्छी आबादी है। रोहतास पर राज्य करने के क्रम में वे इधर-उधर अपने क्षेत्र का विस्तार करते रहे होंगे।[120]

खैरवार ग्राम सामान्यतः अपेक्षाकृत मैदानी क्षेत्र में होते हैं। राज्य में यह लोग सामान्यतः उराँव, मुण्डा, गोंड़, कंवर आदि जनजातियों के साथ रहते हैं। वे अपने घर मिट्टी, काष्ठ, बाँस और खपड़े से बनाते हैं। उनके घरों में सामान्यतः दो कमरे, एक बरामदा (परछी) और एक आँगन होता है। वे दीवारे श्वेत या पीली मिट्टी से और फर्श गाय के गोबर से लीपते हैं। कक्षों में सामान्यतः खिड़कियाँ नहीं बनाते हैं। सामने की दीवार में एक छोटा छेद प्रकाश हेतु रखते हैं।

वे सोने के लिए खाट, चटाई, मचिया, सुजनी और साक़; बैठने को पीढ़ा; अन्न रखने को सिका; अन्न भण्ड़ारण हेतु कोठी; पानी रखने को मिट्टी के घड़े; भोजन पकाने को एल्युमीनियम के बर्त्तन; खाने को काँसे के बर्त्तन यथा- थाली, लोटा, ग्लास (टम्बलर) आदि रखते हैं। कुछ बर्त्तन अन्य धातुओं के भी होते हैं। अब स्टील के बर्त्तन प्रयोग करते हैं।

इनके घरों में नागर या हल, जंता, हेंगा, खांता, कुदाली, खुरपी, झाम, फार, कुल्हाड़ी, गैंती आदि कृषि उपकरण होते है। घर में टोकरियाँ, ढ़ेकी, जाता, लोहे के बक्से, सिल-जोराहा (बट्टा) आदि भी होते हैं। वे लाठी, भाला, बेर, गांड़सा, गुलेल, तीर-धनुष रखते हैं। इनके घरों में बाँसुरी, ढ़ोलक, झाल, करताल आदि भी रहते हैं।[121]

महिलाएँ सिर गले (सुतिया, सुरड़ा, हमेल), नाक (लौंग), कान (खिनवा, दार), हाथ, कलाई (चूड़ी, ऐंठी, नागमोरी), उंगली, कमर और पैरों में आभूषण पहनती हैं। आभूषण में सस्ती और मिश्र धातुएँ उपयोग

---

[119]http://www.mynews.in/merikhabar/News/%E0%A4%86%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AF_%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%95%E0%A5%83%E0%A4%A4%E0%A4%BF_%E0%A4%B8%E0%A5%87_%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A4_%E0%A4%B9%E0%A5%88_%E0%A4%96%E0%A4%B0%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%B0_%E0%A4%9C%E0%A4%A8%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF_%E0%A4%95%E0%A5%80_%E0%A4%A7%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%B5%E0%A5%83%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%BF_N17906.html

[120] वही

[121] http://jharkhandi.com/kharwar.aspx

होती हैं, जो स्थानिय हाट या फेरीवालों से क्रय किए जाते हैं। वे हाथ, पैर और चेहरे पर हस्तशिल्प से गुदना गुदवाती हैं। सिर केश में तेल डाल चोटी या जूड़ा बनाती हैं। वे साड़ी, साया और ब्लाउज पहनती हैं। उम्रदराज महिलाएँ पूरा शरीर साड़ी से ही ढकती हैं। लड़कियाँ फ्राक, पैंट और सलवार सूट भी पहनती हैं। पुरूष धोती और गंजी पहनते हैं। लड़के पैंट और बुशर्ट पहनते हैं। बच्चे छोटी उम्र में अर्ध नग्न रहते हैं।

खैरवार लोगों का मुख्य भोजन चावल या कोदो का भात या बासी पेज है। वे ज्वार रोटी, दाल (तुअर, मूँग, उड़द), मौसमी सब्जी या चटनी भी खाते हैं। मांसाहारी हैं। बकरा, मुर्गा, मछली, तीतर, बटेर, हरिल, खरगोष, चीतल आदि खाते हैं। महुआ शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी पीते हैं।[122]

चित्र 16 - खैरवार महिलाएँ

चित्र 17 - खैरवार पुरूष

स्रोत- indianetzone.com और http://www.joshuaproject.net/peopleprofile.php?rog=3IN&rop112508=3

खैरवार जनजाति का जीवकोपार्जन खैर वृक्ष से कत्था निकालने, कृषि, मजदूरी और वनोपज संग्रह पर आधारित है। पहले कई लोग जमीन्दार आदि भी रहे। अब अधिकाँशतः कृषि और मजदूरी पर आश्रित हैं। वे वनों से खैर वृक्ष की लकड़ी लाते, उसे पानी में डाल मिट्टी के घड़े में पकाते। इससे कत्था बाहरा आ जाता। कत्थे के गाढ़ा होने पर उसे सुखा कर बेचते थे। अब यह कार्य बन्द प्राय हो गया है।

खैरवार परिवार सन्युक्त परिवार नहीं है। सामान्यतः विवाह उपराँत पृथ्क आवास का रिवाज है। हालाँकि यह अधिकांश जनजातियों में है। समाज और परिवार पितृवंशीय, पितृनिवास स्थानिय और पितृसत्तातमक व्यवस्था पर है। खैरवार लोग बर्हिविवाही उपजातियों में बटे हैं। यह हैं- सूरजवंशी, दौलतवंशी या दौलालबन्धी, पटबन्धी, मटकोड़ा या कंवरवंशी, खैरचूरा या खैरी, भोगति या भोगता या गोंगु आदि। सूरजवंशी जमीन्दारी से जुड़े होने के कारण अपने को श्रेष्ठ मानते हैं। सूरजवंशी सहित कुछ उपजातियाँ जनेऊ भी धारण करती हैं। यह उपजातियाँ गोत्रों में बँटी हैं। यह हैं- नाग, धान, नून, ढ़ेकी, काशी, चन्दन, कछुआ, बटेर, समदुआर, चरदयाल, कौरियार, नीलकंठा, चन्दियार, हंसगड़िया, बहेरवार, देवालबन्ध, नमहुआर, तोपोवार, बन्धवार, हंसबिगिआ, लोहवरा, बरेवा, इन्दवार, केरकेट्टा, देला, परधिया, बेसरा, मोहकाल, चुनिआर, कर्न्यर्म, साहिल, तिर्की, भगुआ, सोनवानी, बेन्द्रा, कसुनु, पवेना, नोवे, सोया आदि। सभी गोत्र में टोटम पाए जाते हैं। तीन पीढ़ी तक के लोगों में रक्त सम्बन्ध माने जाने के कारन आपस में विवाह नहीं होता।

गर्भावस्था हेतु संस्कार नहीं है। प्रसव घर पर बुजुर्ग महिलाएँ कराती हैं। प्रसूता को कुल्थी दाल, छिन्द जड़, गुड़, हल्दी, सरई छाल, ऐंठी, मुड़ी, गोन्द, सोंठ आदि का काढ़ा उर तिल, सोंठ, गुड़ का लड्डू देते हैं। नाल तीखे चाकू से काटते हैं। प्रसूती से शेष सामान को एकांत में जलाते हैं, जिससे जच्चा-बच्चा को बुरे जादू-टोने दूर रखा जा सके। एक कंटीली झाड़ी की शाखा द्वारा पर रखते हैं जिससे बुरे तत्व दूर रहें। पूरी रात

122 टी.के.वैष्णव-खैरवार

दिया जलाते हैं और चाकू रखते हैं। छठी को सफाई, पूजा आदि कर शुद्धी करते हैं। भोज करते हैं। एक माह होने पर नाम रखते हैं।

विवाह जाति वाह्य, सगोत्रीय और चचेरे-ममेरे भाई-बहनों नहीं होता है। सामान्यतः एकनिष्ठ विवाह है, पर अन्य विवाहों को भी बुरा नहीं माना जाता।सेवा विवाह, विनिमय, ढुकू (घुसपैठ), सहपलायन, विधवा और परित्यक्ता पुर्नविवाह मान्य है। लड़केके हेतु विवाह आयु 14-18 और लड़की हेतु 13-16 है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष वधू पिता को देता है। स्विकार होने पर चावल, दाल ,गुड़, तेल, नगद, बकरा और माता-पिता, भाई-बहनों तथा वधु के वस्त्र दिए जाते है। वे शकालद्विपि या कान्यकुब्ज ब्राह्मण से विवाह तिथि निकलवाते हैं। विवाह के एक सप्ताह पूर्व वधु धन दिया जाता है। तदुपरांत हरिया और भोज दिया होता है। विवाह हेतु रिश्तेदारों आदि को बुला भूमि पूजन करते हैं। मड़वा गाड़ा जाता है। तेल, हल्दी और उपटन लगाने की रस्म की जाती है। बुरे तत्वों की शांति हेतु चुमवान रस्म होती है। विवाह दिवस को शुद्धि स्नान पउपराँत नए वस्त्र धारण करते हैं। वर पालकी से आता है। इसे भुईंया लोग उठाते हैं। आगवानी उपराँत ब्राह्मण विवाह कराता है। माल्यार्पण और सात फेरे होते हैं। विवाह भोज होता है। दूसरे दिन विदाई करते हैं। वधु की आगवानी की जाती है। वह एक सप्ताह रूक पिता या भाई के साथ वापस आती है। एक वर्ष उपराँत उसे गौना करा लाया जाता है।

शव को गाड़ते हैं। कभी-कभी सम्पन्न व्यक्ति को दाह भी करते हैं। आत्मा और पुनर्जन्म मानते हैं। दसवें दिन शुद्धि करते हैं।

जाति पंचायत है। प्रमुख को महतोमांझी कहते हैं। यह पद वंशानुगत है। विवाह विवाद, बर्हिजाति विवाह, अनैतिक सम्बन्ध, सम्पति विवाद आदि इसमें निराकृत्त किए जाते हैं। आराध्य पूजा व्यवस्था भी जाति पंचायत करती है।

खैरवार जनजति का धर्म भी अन्य कई जनजातियों की तरह हिन्दू और आदिवासी मान्यताओं का मिलाजुला रूप है। इनके पास बैगा और ब्राह्मण पुजारी दोनों हैं। इनके आराध्य हैं- सिंगबोंगा, ग्राम बोंगा, ठाकुर देव, महारानी देवी, बूढ़ी माई, सती देवी, बंजारिन देवी, खुंटदेव, गुरमा देव, दुल्हा देव लक्ष्मी माता, हनुमान, दुरगा माता आदि। सभी हिन्दू देवी-देवताओं की अराधना के साथ सूरज, चन्द्रमा, धरती, नाग, वृक्ष, पहाड़, नदी आदि भी करते हैं। इनमें भूत-प्रेत, आत्मा, जादू-टोना, पुर्नजन्म, झाड़-फूंक, बलि, टोटका, मन्नत, निषेद्ध आदि भी है।

इनके त्योहार हैं- छठ, सरहुल, दुरगा पूजा, दिवाली, जतिया, सोहराइ, नवाखानी, करमा, नोखा, फाग, रामनवमी आदि। बकरा और मुर्गा बलि करते है।

खैरवार लोगों के नृत्य हैं- करमा, जदुरा (दीपावली पर), डंडा (होली पर), विवाह आदि। इन सभी में लोक गीत भी हैं। मांदर, मंजीरा, ढ़ोल, बाँसुरी आदि वाद्य यंत्र बजाते हैं।

शिक्षा कम है। आस्था रहन-सहन, पहनावा, विचार, लोक कला, खान-पान, व्यवसाय आदि में परिवर्त्तन आया है। अर्थाभाव प्रमुख समस्या है।

उपनिवेश काल में खैरवार विद्रोह भू-राजस्व बन्दोबस्त व्यवस्था के विरोध में किया गया था। यह विद्रोह छत्तीसगढ़ और झारखण्ड में उभरा था।[123]

14. खरियाः-

खरिया जनजाति मुख्यतः उड़ीसा और बिहार में निवासरत है। छत्तीसगढ़, आन्ध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल में भी इनकी अल्प संख्या है। छत्तीसगढ़ में 2001 में इनकी जनसंख्या 41,901 थी, जो सरगुजा सम्भाग के सरगुजा और जशपुर तथा बिलासपुर सम्भाग के रायगढ़ जिले के सांरगढ़ तहसील में केन्द्रित है।

खरिया जनजाति की उत्पति पर एतिहासिक अभिलेख नहीं हैं। इनकी दंतकथा में यह बताया जाता है कि, खरिया और छोटा (चुटिया) नागपुर के नागवंशी मुण्दा राजाओं के पूर्वज सगे भाई थे। दोनों यात्रा करते हुए छोटा (चुटिया) नागपुर आए। लोगों द्वारा छोटा भाई राजा चुना गया। ज्येष्ठ के सामने चाँदी और मृदा टोकरियाँ रख चुनने को कहा गया। उसने मिट्टी की टोकरी चुनी और इस प्रकार खेत जुताई और बहंगी ढ़ोने का कार्य अपनाया। इस प्रकार वे अपने को मुण्डा समूह का ज्येष्ठ सदस्य बाताते हैं।[124] र्वाज भी यह बने। नागवंशी मुण्दा रानियाँ खरिया लोगों को ज्येष्ठ मान पर्दा करने लगीं। रिजले खरिया को मुण्डा जनजाति का एक समूह मानता है, जो विकास क्रम में पीछे रह गए। इसलिए इसे कोलोरियन (कोल) समूह की ही जनजाति माना जाता है।[125]

खरिया लोग ग्रामों में कोन्ध, उराँव, मुण्डा, राठिया, नगेरिया, गोण्ड आदि जनजातियों के साथ मिट्टी, घाँस-फूस, बाँस, लकड़ी, खप्परैल आदि सामग्रियों से बने घरों में रहते हैं। इन आवास गृहों में सामान्यतः दो कक्ष होते हैं। फर्श गाय के गोबर से और दीवारें मिट्टी से लीपी जाती हैं। पहाड़ी खरियाओं के आवास में मात्र एक कक्ष होता है।

इनके घरों में कोठी, चारपाई, वस्त्र, बर्त्तन, मूसल, चक्की, कृषि उपकरण, कुल्हाड़ी, टोकरियाँ, सूपा, सऊहा, मछली पकड़ने का चोरिया, ढूटी, पेलना आदि सामान्यतः रहता है।

पुरूष घुटने तक पंछा और बंड़ी तथा महिलाएँ लुगड़ा पहनती हैं। वे अब पोलका भी पहनती हैं। अब रूझान साड़ी, ब्लाउज, पेटीकोट और अंतः वस्त्रों के प्रति है। महिलाएँ हाथ, पैर और चेहरे पर गुदना गुदवाती हैं। हाथ में काँच की चूड़िया और ऐंठी, गले में सुरड़ा और माला (रूपिया माला, मनकों की माला आदि), नाक में फुली, कान में खिनवा आदि आभूषण पहनती हैं। गहनों में गिलट, नकली चाँदी या चाँदी का ही उपयोग करते हैं।

---

[123]http://biharjourney.blog.co.in/2010/06/22/%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%8B%E0%A4%B9/

[124] शिव कुमार तिवारी-भारत की जनजातियाँ,पृ.143 (http://books.google.co.in/books?id=3jZLrJeQh9sC&pg=PA143&lpg=PA143&dq=%E0%A4%96%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE+%E0%A4%9C%E0%A4%A8%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF&source=bl&ots=5MImQsSqyX&sig=gNy27ldcOeuNHLOQ6eCeA0Up4kI&hl=en&ei=YuIRTPmeKsvBcZGp_ZQI&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=1&ved=0CBUQ6AEwAA#v=onepage&q=%E0%A4%96%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE%20%E0%A4%9C%E0%A4%A8%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF&f=false)

[125] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान और प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की पुस्तिका-छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियाँ(सम्पादक-टी.के.वैष्णव)

चित्र 18 - खरिया महिलाएँ स्रोत- kharia.in

इनका भोजन चावल, कोदों और गोन्दली का पेज, भात और बासी है। वे उड़्अद, मूँग, तुअर और कुल्थी की दाल; ऋतु शाक, वनीय कन्द-मूल, भाजी आदि खाते हैं। माँसाहारी हैं। मछली, केकड़ा, बकरा, मुर्गा, हिरण, खरगोश, सुअर, विभिन्न पक्षी आदि खाते हैं। महुआ शराब और चावल से बनी हड़िया शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी पीते हैं।

खरिया लोगों की आजीविका खाद्य संचयन और स्थानातरीय कृषि पर निर्भर रही है।[126] वे हस्तशिल्प से रस्सी बना कर बेचते हैं।

इनके तीन विभाजन हैं- दूध, ढ़ेल्की और पहाड़ी खरिया।[127] इनमें दूध खरिया स्थाई पर पिछड़ी कृषि और मज़दूरी करते हैं। ढ़ेल्की भी अब यह ही करते हैं। पहाड़ी सर्वाधिक पिछड़े हैं। वे वनोपज पर निर्भर हैं। इनके अतिरिक्त मुण्डा, ढ़ौंगा, दूरेगा खरिया आदि भी विभाजन हैं। छत्तीसगढ़ में दूध और मुण्डा ही हैं। यह उपजातियाँ बर्हिविवाही गोत्रों में बँटी हैं। प्रतेयक गोत्र के टोटम हैं। एक ही टोटम या गोत्र में विवाह अपराध माना जाता है। गोत्र हैं- दुंगदुंग (डुंगडुंग), कीरो, केरकोटा, कांकुल, बार, बरला, बरोआ, देमता, बितुम, धान, हाथी, कासी, बागे, नाग, सौर, सुरनिया, लेतैन, टोपो, सोरेंग, कुल्लु, इन्दुअर, सोरेन मुरू, समद, टोपनो, गुल्गू, हंसदा, चरहा, बरलिहा, जारू आदि।

प्रसव स्थानिय दाई या परिवार की बुजुर्ग महिलाएँ कराती हैं। छठी पर शुद्धि करते हैं।

लगभग सभी जनजातियों की तरह खरिया लोगों में भी एकल या नाभकीय (न्युक्लियर) परिवार है। इनमें भी परिवार पितृवंशीय, पितृसत्तात्मक और पितृनिवास स्थानिय है। एकनिष्ठ विवाह है, पर बहुसम्बन्ध भी स्विकार कर लिए जाते हैं। सामान्यतः लड़कों की विवाह उम्र 14-18 और लड़कियों की 13-16 है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। सूक में चावल, दाल, तेल, हल्दी और नगद रूपये दिए जाते हैं। सूक को टालने के लिए अदला-बदली के विवाह को अधिक प्रोत्साहन है।विवाह जाति का बुजुर्ग पूरे कराता है। उढ़रिया (सहपलायन) और ढुकु (घुसपैठ) प्रचलित है। विनिमय, सेवा, पुनः,, त्यक्ता, विधुर, विधवा-विवाह भी हैं।

शव गाड़ते हैं। तीसरे दिन सफाई, मुण्डन, स्नान आदि है। दसवें दिन दशकर्म कर भोज देते हैं। पितृ पक्ष में पितर पूजा करते और पानी देते हैं।

खरियाओं में भी पारम्परिक जाति पंचायत है। इसका प्रमुख परधान कहलाता है। इसमें नेगी और चपरासी (कोटवार) सहयोगी पदाधिकारी हैं। अनैतिक सम्बन्ध, विवाह, विवाह विच्छेद, सूक, सम्पति आदि प्रकरण निराकृत्त किए जाते हैं। अर्थ दण्ड और सामाजिक भोज का दण्द है। ग्राम की जाति पंचायत के ऊपर परहा पंचायत है। इसमें कई ग्रामों के परधान, नेगी आदि भाग लेते हैं। इसका प्रमुख परहाराजा कहलाता है। यहाँ ग्राम स्तरीय जाति पंचायत के अनसुलझे प्रकरण लाए जाते हैं।[128]

---

126 शिव कुमार तिवारी-भारत की जनजातियाँ,पृ.143

127 http://www.in/kharia.php

128 छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान और प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की पुस्तिका-छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियाँ (सम्पादक-टी.के.वैष्णव)

खरिया लोगों का धार्मिक प्रधान, दूध और ढ़ेल्की में, पहन और पहाड़ी में दिहुरि कहलाता है। यह वंशानुगत पद है। वह ही पुजारी और तंत्र-मंत्र का जानकार माना जाता है। गिरिंग या बोरो प्रमुख आराध्य है। वे पूर्वज पूजा बुढ़ा-बूढ़ी या मर्सी-मसान के नाम से करते हैं। अन्य अराध्य हैं- धरम देवता, ग्राम देवता, धरती माई, सभी पेड़-पौधे, नदी-पहाड़, बाघ, नाग आदि। भूत-प्रेत, जादू-टोना, मंत्र-तंत्र, आत्मा, पुर्नजन्म आदि मानते हैं।

इनके त्योहार हैं- करमा, सरहुल, सोहराई, फगुआ, नवाखानी, देवधान, दशहरा आदि। यह मुण्डा और उराँव जनजातियों की तरह ही हैं।

सरहुल, करमा, फगुआ, विवाह आदि नृत्य हैं। लोक गीत हैं- विवाह, सरहुल, करमा, फाग आदि।

विकास अनुक्रम में रहन-सहन, वस्त्र विन्यास, रीति रिवाज, लोक कला आदि में परिवर्त्तन आया है। पैंट-शर्ट, साड़ी, नौकरी आदि भी प्रमुख हुए हैं। इनमें इसाई धर्म ने भी पैठ बनाई है। इनकी भी प्रमुख समस्या अर्थाभाव है।

15. कोन्धः-

कोन्ध जनजाति मुख्यतः उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश में निवास करती है। छत्तीसगढ़ में इस जनजाति को आए अत्यधिक अल्प समय ही हुआ है। लगभग 200 वर्ष पूर्व यह लोग इस प्राँत में आकर बसे। 2001 की जनगणना में इनकी जनसंख्या मात्र 10,114 थी, वह भी मात्र रायपुर सम्भाग के रायपुर और बिलासपुर सम्भाग के रायगढ़ जिलों में ही। इन्हें **खोंड़**, **कांध** या **कोन्धिया** भी कहा जाता है।

कोंध जनजाति की उत्पति पार एतिहासिक और वैज्ञानिक शोध होने हैं। कोन्ध शब्द की व्युत्पति द्रविड़ शब्द कोंड़ से मानी गई है, जिसका अर्थ पर्वत्त है। अतः यह कहा जाता है कि, कोंड़ अर्थात पर्वत्त क्षेत्र के निवासी कोन्ध कहलाए। कुछ विद्वान इन्हें द्रविड़ पूर्व के लोग मानते हैं। इनकी अपनी बोली है, जिसे कोन्धी या कुई कहा जाता है। यह द्रविड़ भाषा है, जिसकी लिपि उड़िया या आर्य है।[129] बस्तर के जनजातिय विद्रोह की चर्चा में कुई (या कोई) विद्रोह भी उल्लेखित हुआ है, जो वन और वृक्ष रक्षा को था। उड़ीसा में इस जनजाति के नाम पर पहाड़ भी है, जिसकी वे पूजा भी करते हैं। पहाड़ सदा से जनजातियों के अराध्य रहे हैं। नियमगिरी[130] के पहाड़ पर ड़ोंगरिया कोन्ध लोगों का निवास प्रसिद्ध है। वे जिन पहाड़ों को पूजते हैं उन पर खनिज उत्खनन हेतु आबंटन (वेदांता) का विरोध कर रहे हैं।[131] अरून्धति राय के लेखों[132], अभिनेत्री Joanna Lumley की उदघोषणाओं के साथ Survival International की लघु फिल्म और वैराईटी मग्जीन में विश्व की सफलतम फिल्म अवतार (जेम्स कैमरून)[133] के साथ छपी कोन्ध जनजाति और उनकी आवास नियमगिरी पहाड़ी रक्षा की अपील ने विश्व जनमत का ध्यान खींचा और कोन्ध जनजाति चर्चा में आई।

---

[129] http://en.wikipedia.org/wiki/Kondha

[130] नियम बनाने वाले राजा का निवास (http://socyberty.com/issues/niyamgiri-hills-home-for-dongria-kondh-tribes-or-nature-destroying-bauxite-company/)

[131] http://www.bbc.co.uk/hindi/business/2009/07/090728_vedanta_protest_alk.shtml और हंस जनवरी'2010 अरून्धति राय-आंतरिक सुरक्षा या युद्ध,पृ.37-40

[132] हंस जनवरी'2010, जनसत्ता, आउटलुक आदि

[133]Kathryn Hopkins (February 8, 2010)-"Indian tribe appeals for Avatar director's help to stop Vedanta"(The Guardian,London) (http://www.guardian.co.uk/business/2010/feb/08/dongria-kondh-help-stop-vedanta)

कोन्ध लोग रायपुर जिले में सवरा, कंवर, बिंझ्वार, गोंड़ आदि जनजातियों के साथ ग्रामों में मिट्टी, घाँसफूंस और खपरैल से बने घरों में निवास करते हैं। इनके आवास गृहों में सामान्यतः, दो कक्ष होते हैं।

चित्र 19 - कोन्ध घर , 20 - वाद्य सहित कोन्ध पुरूष , 21 और 22 - गोदना और आभूषण सहित कोन्ध महिलाएँ तथा 23 – नियमगिरी पहाड़ी

स्रोत- http://www.pbase.com/neuenhofer/india_tribal_orissa_desia_kondh , bbc.co.uk और http://socyberty.com/issues/niyamgiri-hills-home-for-dongria-kondh-tribes-or-nature-destroying-bauxite-company/)

इनके घरों में सामान्यतः कोठी, मूसल, जाता, चूल्हा, बर्त्तन, कृषि उपकरण, वाद्य यंत्र, जाल (मछली पकड़ने का), तीर-धनुष आदि होते हैं।

इनके वस्त्र विन्यास में पुरूष पहनावा घुटने तक धोती या पंछा और बंड़ी तथा महिलाओं हेतु लुगड़ा है। महिलाएँ हाथ, पैर, ढुड़ी, मस्तक आदि पर हस्तशिल्प से गोदना गुदवाती हैं। वे नाक में फुली, कान में खिनवा, गले में सुरड़ा और रूपिया या काँच मनकों की माला, हाथ में चूड़ी और पटा आदि आभूषण पहनती हैं, जो गिलट, नकली चाँदी, पीतल आदि के होते हैं।

कोन्ध लोगों का मुख्य भोजन चावल या कोदो का पेज, भात या बासी है। वे उड़द, मूँग, कुल्थी, बेलिया आदि की दाल और ऋतु शाक, कन्द-मूल-भाजी भी खाते हैं। मांसाहारी हैं। गिलहरी, बकरा, मुर्गा, मछली, केकड़ा, सुअर, हिरण, खरगोश, विभिन्न पक्षी, साही, गोह आदि खाते हैं। महुआ शराब बनाते और पीते हैं। पुरूष बीड़ी पीते हैं।

कोन्ध पितृवंशीय, पितृनिवास स्थानिय और पितृसत्तात्मक जनजाति है। परिवार न्युक्लियर या एकल हैं। इनके उपसमूह हैं- ड़ोंगरिया (वन या पहाड़ी), कुटिया (पहाड़ी), पेगा, झुरिया, जामिया (पहाड़ चोटी पर), नानगुली, सीतहा- कोन्ध आदि। यह उपजातियाँ पुनः बर्हिविवाही वंश समूहों में विभक्त हैं। जैसे- जकासिया, हौका, प्रास्का, कडरा आदि। गोत्र हैं- बच्छा, छत्रा, हीकोका, केलका, कोंजाका, मन्दीगा, कदम, नरसिंघा आदि। टोटम हैं। सगोत्री विवाह वर्जित है।[134]

प्रसव स्थानिय दाई या उम्रदराज़ महिलाएँ घर पर कराती हैं। छठी पर शुशु का मुण्डन कराते हैं और जच्चा के नाखून काटते हैं। दोनो को स्नानोपरांत तीर-धनुष का स्पर्श कराते हैं। मान्यता है कि, वह इससे धनुष चालन में निपुड़ होगा। नामाकरण छः माह उपराँत करते हैं।

लड़कों के विवाह की उम्र 15-19 और लड़कियों की 13-16 है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। मामा और बुआ की संतानों को प्राथमिकता है। वधू मूल्य में चावल, दाल, तेल, शराब, नगद, बकरा या सुअर, लुगड़ा आदि दिया जाता है। विवाह रस्म बुजुर्गों की देखरेख में सम्पन्न होती है। उढ़रिया (सहपलायन) और ढुकू या पैकू (घुसपैठ) को अर्थदण्ड उपराँत मान्य किया जाता है। विधुर, विधवा, त्यगता,

[134] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान और प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की पुस्तिका-छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियाँ (सम्पादक-टी.के.वैष्णव)

देवर-भाभी, पुर्न- विवाह है। इनमें भी पहले किशोरगृह था, परंतु दोनों लिंगों हेतु पृथ्क-पृथ्क। लड़को का धांगड़ाघर और लड़कियों का धांगड़ीघर कहलाता था।

कोन्ध पहले शव गाड़ा करते थे। अब जलाते हैं। दसवें दिन मुण्डन, स्नान, सफाई आदि कर शुद्धि करते हैं। मृत्तक की आत्मा की वापसी की प्रत्याशा में मुर्गे के सामने चावल डालते हैं। उसके द्वारा चुगना आत्मा का आगमन माना जाता है। मुर्गे की बलि देकर धनुष से कपड़ा उठाकर आत्मा को उसमें बैठने को कहते हैं। अब यह मान कर कि आत्मा कपड़े पर बैठ गई है, उसे ले जाकर घर के कोने में स्थापित करते हैं। रिश्तेदरों को भोज देते हैं।

इनमें भी पारम्परिक जाति पंचायत है। इसका प्रमुख गौंटिया कहलाता है। इनका धार्मिक प्रमुख जानी कहलाता है और वह भी इसके कार्यों में सहयोग करता है। इसमें अनैतिक सम्बन्ध, अन्य जाति में विवाह, विवाह विच्छेद, वधू मूल्य, वैवाहिक विवाद, सम्पति विवाद (बंटवारा आदि) पारम्परिक तरीके से निराकृत्त किए जाते हैं।

कोन्ध लोगों के आराध्य हैं- धरती पेन्यु (माता), नियम पेन्यु (नियमगिरी पहाड़), नेला या बूरा पेंज (सूर्य) और उसकी पत्नि तारी माता, शीतला माता, सभी हिन्दू देवी-देवता, नदी, पर्वत्त, वृक्ष, बाघ, नाग आदि।[135] धार्मिक आदि कार्य में जानी के अतिरिक्त मोण्डल, बेजुनि, बारिक आदि भी होते हैं।

इनके त्योहार हैं- चावल जात्रा या दशहरा, अगहन जात्रा, चैत्र या माहुल जात्रा, दीपावली, होली आदि। चावल जात्रा में नया चावल और चैत्र जात्रा में नया महुआ खाया जाता है। दशहरे में देवी-देवता और पूर्वज पूजा करते हैं। मुर्गा और बकरा बलि देते हैं। अंग्रेज शासन काल में नर बलि प्रथा बन्द कराए जाने तक वह भी प्रचलित थी। भूत-प्रेत, जादू-टोना, मंत्र-तंत्र, आत्मा, पुर्नजन्म आदि मानते हैं।

इनके नृत्य हैं- विवाह, होली, जात्रा आदि। विवाह और नृत्य के अवसर पर लोक गीत गाते हैं। वर्त्तमान में भजन और फाग आदि भी गाने लगे हैं।

विकास अनुक्रम में परिवर्तन भी हैं। लोक कला, वस्त्र, रहन-सहन, पूजा पद्धति, अराध्य, कृषि पद्धति, शिक्षा और नौकरी आदि में बदलाव परिलक्षित हुआ है। अर्थाभाव, शिक्षा की कमी, अंधविश्वास, अस्वच्छता, रोग और उपचार, कुपोषण आदि समस्याएँ भी हैं।

16. कोलः-

कोल **मूल जनजातियों में** गिने जाते हैं। रामायण काल में कोल का उल्लेख किरात और भील जनजाति के साथ हुआ है। **इन्ही से कोल समूह या कोलोरियन ट्राइब ग्रुप की संज्ञा ली गई**। यह अधिकाँशतः मध्य प्रदेश में हैं और वह भी रीवा सम्भाग और जबलपुर जिले में। यह लोग उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड और झारखण्ड में भी पर्याप्त हैं। छत्तीसगढ़ में इनकी अल्प संख्या ही है, वह भी मात्र बिलासपुर और कोरिया आदि जिलों में। यह लोग 2001 में 16,966 थे।

इन पर भी एतिहासिक और वैज्ञानिक शोध होने हैं। इनका उल्लेख रामायण में वन्य जाति के रूप में है, जिन्हों ने वनवास काल में राम, लक्ष्मण और सीता की सेवा की। इनमें से कुछ अपने को इसी काल की शिवरी या शबरी का वंशज मानते हैं। इसे कोलेरियन समूह की प्राचीन जनजाति माना जाता है। इस समूह का नाम भी इसी पर है। छत्तीसगढ़ में कोरिया रियासत पर अंतिम शासक वंश चौहान के ठीक पूर्व कोल जनजाति के लोगों का ही शासन था।[136] सम्भवतः बहुत पहले यह लोग सरगुजा के भागों पर भी शासक रहे। कोल, किरात, भील का उल्लेख प्राचीन पारम्परिक आख्यानों में आता है। अर्जुन की परीक्षा हेतु शिव ने किरात वेष धारण किया था। एकलव्य भी किरात था।

---

[135] http://en.wikipedia.org/wiki/Kondha

[136] डा.संजय अलंग-कोरिया रियासत का प्रशासनिक अध्ययन

कोल शब्द मुण्डारी भाषा के को शब्द से बना। इसका अर्थ है- वे। या यह शब्द होरो, हारा, हर, हो, या को रो शब्द से, जिसका अर्थ आदमी से है, बना। इनकी भाषा कोलयारिन समूह की है, जिसे अब मुण्डारी या आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा समूह कहा जाता है। वे भी छत्तीसगढ़ की समस्त जनजातियों की तरह प्रोटो-आस्ट्रलाएड समूह के हैं। हालाँकि अब अधिकाँश लोग हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि को अपना लिए हैं। संथाल, मुण्डा, हो, भूमिज, खैरिया, खैरवार और कोरवा जनजातियाँ कोल से सम्बन्धित हैं और कोलयारिन जनजातियाँ कही जाती हैं। 1831-32 में छोटा (चुटिया) नागपुर में अंग्रेज विरोधी हो और मुण्डा विद्रोह के उपराँत ही कोल शब्द का व्यापक प्रयोग प्रारम्भ किया गया। उड़ीसा के हो अभी भी कोल्हा कहे जाते हैं, क्योंकि वे सिंहभूमि के कोल्हान नामक स्थान से आए थे।[137]

कोल लोगों के आवास भी मिट्टी के बने होते हैं, जिस पर घाँस-फूस या खपरैल का छप्पर होता है। मकान में एक आँगन होता है। फर्श और आँगन गाय के गोबर से लीपते हैं। सामान्यतः घर में दो-तीन कक्ष होते हैं। मकान के आन्दर एक भाग पालतू पशुओं के रहने हेतु रखा जाता है।[138]

घर में सामान्यतः चारपाई, ओढ़ने-बिछाने और पहनने के वस्त्र, भोजन बनाने और खाने के बर्त्तन, मूसल, कुल्हाड़ी, कृषि उपकरण, मछली पकड़ने का जाल आदि होते हैं। कोल निर्धनता के कारण अल्प वस्त्र धारण करते रहे हैं।[139] कोल महिलाएँ चोली, कांचली, घाघरा, लुगड़ा और ओढ़नी पहनती हैं। इनके आभूषण प्रायः चाँदी, गिलट, कघीर और काँसे के बने होते हैं।[140]

स्त्री-पुरूष प्रातः उठकर दाँतों की सफाई नीम, बबूल, करंज आदि के दातौन से करते हैं। प्रतिदिन स्नान करते हैं। इनके भोजन में गेहूँ, मक्के, जुआर आदि की रोटी; कोदो, कुटकी, चावल आदि का भात; उड़द, चना, कुलथी आदि की दाल; मौसमी सब्ज़ी आदि हैं। माँसाहारी हैं। मछली, मुर्गा, बकरा, वन शूकर (जनगली सुअर), विभिन्न पक्षी आदि कभी-कभी खाते हैं। त्योहार आदि पर महुआ शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी पीते हैं।[141]

कोल जनजाति के लोग पिछड़ी कृषि, वन उपज और खाड्य संग्रह और संकलन और मजदूरी पर आश्रित हैं। शिक्षा की कमी के कारण शासकीय सेवाओं में नगण्य प्राय हैं। अधिकाँश लोग, जिसमें उभय लिंग सम्मलित हैं, मजदूरी पर ही निर्भर हैं।[142]

मध्य प्रदेश के महाकौशल क्षेत्र में इन्हें कोल गवठिया और बघेलखण्ड में भूमिया कोल कहा जाता है। इनकी उपजातियाँ बहिर्विवाही गोत्रों में विभक्त हैं। यह हैं- ठाकुरिया रातुल, बरबार, चेरो, बारगीया मवासी, बर्न कथोठिया, सोनवानी, कुम्हरिया, कथरिया, भुवार, रंकटा, करपतिया, नथुनिया आदि।[143] झारखण्ड में यह गोत्र 12 बताए गए हैं, जो उक्त से पृथ्क ही हैं- हंसदा, सोरेन, किस्कु, मराण्डी, तुदु या तुड्डु, चौन्दे, हेमब्रोम, बसके, बेसेरा, चुनैर, मुर्मु और किसनोव।[144]

---

137 http://www.everyculture.com/South-Asia/Kol-Orientation.html

138 आर.सी.सक्सेना-कोल जनजाति

139 रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड-झनकार

140 Dr.Ram Chandra Sing deo-Socio-economic History and Administrative set-up of Korea state

141 डा.संजय अलंग-कोरिया रियासत का प्रशासनिक अध्ययन

142 http://koreakumar.com/

143 छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान और प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की पुस्तिका-छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियाँ (सम्पादक-टी.के.वैष्णव)

144 http://jharkhandi.com/kol.aspx

चित्र 24 - कोल झोपड़ी स्रोत- gutenberg.org चित्र 25 - कोदो खाद्य स्रोत- upnewslive.com

प्रसव घर पर कराते हैं। प्रसूता को सोंठ, गुड़, जड़ी-बूटी, अजवायन, पीपर आदि का काढ़ा पिलाते हैं। छः दिनों तक अस्वच्छ मानते हैं। तदुपरांत छठी पर जच्चा और बच्चा को नहला, घर की सफाई आदि कर अराध्य और सूर्य के दर्शन कराने के उपराँत शुद्धि मानते हैं। रिश्तेदारों को चाय, बीड़ी, दारू आदि पिलाते हैं।

इस जनजाति में विवाह उम्र सामान्यतः लड़कियों हेतु 15 और लड़कों हेतु 17-18 वर्ष है। वधू मूल्य, जिसे हथनैना कहते हैं, मंगनी पूर्व उभय पक्ष सहमति से निर्धारित होता है। इसे लड़की को देते हैं। विवाह रस्में जाति के बुजुर्ग व्यक्ति द्वारा सम्पन्न कराई जाती हैं। सामान्य विवाह के अतिरिक्त विनिमय और सेवा विवाह भी हैं। सहपलायन और घुसपैठ को भी सामाजिक जुर्माना अदा करने उपराँत विवाह माना जाता है। विधवा पुर्नविवाह को सामाजिक अनुमति है।[145]

शव जालते हैं। बच्चे गाड़े जाते हैं। वापसी पर स्नान करते हुए आते हैं और घर आकर उसकी सफाई करते हैं। तीसरे दिन परिवार के पुरूष सदस्य मुण्डन कराते हैं। दसवें दिन रिश्तेदारों को मृत्यु भोज देते हैं।

कोल लोगों में भी जाति पंचायत है। इसका प्रमुख गोंतिया कहलाता है। गोंतिया बारगीया वंश की पैतृक परम्परा अनुसार पंचायत का मुखिया बनता है। वह गाँव के सभी वाद-विवाद और लड़ाई-झगड़े का निपटारा स्वयं या अपने सहयोगियों के परामर्श के आधार पर करता है।

इनके अराध्य हैं- दुल्हा देव, हरदौल, मंशादेव, नंगाबाबा, भैरों, काली, हिन्दू देवी-देवता, सूर्य, चन्द्र, नदी, पहाड़, वृक्ष आदि। मुर्गा, बकरा आदि की बलि भी है। जादू-टोना, भूत-प्रेत, आत्मा, पुर्नजन्म आदि मानते है। अन्धविश्वास है। रोगोपचार गुनिया के झाड़-फूँक से करते हैं।

इनके त्योहार हैं- नवरात्रि, नाग पंचमी, होली, दशहरा, दिवाली आदि।

कोल लोग **लोक गीत में सिद्धहस्त** होते हैं। संगीत हेतु ढ़ोलक, टिमकी, कटवाल, मंजीरा आदि उपयोग करते हैं। इनके लोक गीत हैं- दोदर, राई, फाग, भजन आदि।

समय के साथ परिवर्त्तन अनिवार्य है। कुली, फैक्टरी, खदान में खनिक का कार्य और शासकीय सेवा आदि की ओर रूझान हो गया है। विवाह पद्धति, त्योहार के रीति-रिवाज और पद्धति, लोक कला, पहनावे आदि में परिवर्त्तन आया है। अर्थाभाव, शिक्षा का अभाव, अन्धविश्वास, कुपोषण आदि की समस्याएँ इनमें भी हैं।

उपनिवेश काल में कोल विद्रोह रांची, सिंहभूमि, हजारीबाग, मानभूमि में प्रारम्भ हुआ । कोल विद्रोह, जिसका काल 1831-32 था, में मुण्डा, हो, उराँव, खरवार एवं चेर जनजातियों के लोगों ने मुख्य रूप से भाग लिया था । कोल विद्रोह का प्रमुख कारण आदिवासियों की भूमि पर गैर-आदिवासियों द्वारा अधिकार किया जाना था और जिसका तात्कालिक कारण था- छोटा (चुटिया) नागपुर के भाई हरनाथ शाही द्वारा इनकी भूमि को छीनकर अपने प्रिय लोगों को सौंप दिया जाना। इस विद्रोह के प्रमुख नेता बुद्धो भगत,

[145] Walter G. Griffiths-The Kol tribe of Central India

सिंगराय एवं सुगी थे। इस विद्रोह में करीब 800 से लेकर 1,000 लोग मरे गये थे। 1832 ई. में अंग्रेजी सेना के समक्ष विद्रोहियों के समर्पण के साथ विद्रोह समाप्त हो गया।[146]

17. माझीः-

छत्तीसगढ़ में माझी जनजाति के लोगों की अल्प संख्या है। यह लोग 2001 में 60,246 थे। राज्य में यह लोग बिलासपुर सम्भाग के रायगढ़ और कोरबा तथा सरगुजा सम्भाग के सरगुजा आदि जिलों में हैं।

सरगुजा के मैनपाट से बालको (वेदांता) के बाक्साईट उत्खनन से मैनपाट से हजारो वृक्ष, पर्यावरण, पहाड़ सहित माझी जनजाति के प्राकृतिक पर्यावास और आवास को अत्यधिक नुकसान हो गया है।[147] वे वहाँ से विस्थापित हो गए हैं। नियमगिरी से इसी कम्पनी के कोन्ध पर पड़ने वाले प्रभाव पर लोगों का ध्यान गया, परन्तु मैनपाट, उसके वन और पर्यावरण तथा यहाँ के माझी आदिवासी पूर्णतः विपरीत रूप से प्रभावित हो गए।

इनकी उत्पति पर एतिहासिक अभिलेख नहीं हैं और वैज्ञानिक शोध अभी होने हैं। राबर्ट वाने रस्सेल्ल माझी जनजाति की उत्पति गोंड़, मुण्डा और कंवर जनजाति के पूर्वजों से मानता है।[148] वह मझवार और माझी को एक ही समूह मानता है। हालाँकि माझी जनजाति मझवार से पृथ्क जनजाति है। दोनों के मध्य खान-पान का सम्बन्ध है। शिव कुमार तिवारी दोनों को एक ही मानते हैं और सही संज्ञा माँझी उल्लेखित करते हैं।[149]

छत्तीसगढ़ में भारत सरकार द्वारा माझी और मझवार, दोनों को, पृथक-पृथ्क जनजाति ही माना गया है। अगले अनुक्रम में मझवार पर ही चर्चा की जानी है।

अंग्रेज विलियम क्रुक्स आर्य माझी (व्यवसायिक) और द्रविड़ माझी (जनजाति) के विभेद हेतु सावधानी रखने को सचेत करता है। छत्तीसगढ़ में यह स्थिति है। यहाँ माझी संज्ञा तीन प्रकार से प्रयुक्त होती है। राज्य में अनुसूचित जनजाति के माझी और अन्य पिछड़ा वर्ग में आने वाले व्यावसायिक माझी पृथ्क-पृथक हैं।

प्रथम- छत्तीसगढ़ में जनजातिय या द्रविड़ माझी सरगुजा जिले के मैनपाट, कोरबा जिले के लेमरू और जशपुर जिले के पहाड़ों में रहते हैं। इनका जीवकोपार्जन कन्द-मूल और वन उपज संग्रह, बन्दर और अन्य जीवों का शिकार, बाँस हस्तशिल्प से टोकरी, झऊआ आदि निर्माण, मज़दूरी आदि पर है।

---

[146]http://biharjourney.blog.co.in/2010/06/22/%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%8B%E0%A4%B9/

[147] http://edharhai.blogspot.com/2008_11_01_archive.html(दिलीप जायसवाल)

[148] R.V.Russell The Tribes and Castes of the Central Provinces of India,Voll.-IV,P.198 (http://books.google.co.in/books?id=eM1TdcVsK88C&pg=PA198&lpg=PA198&dq=majhwar+tribe&source=bl&ots=Gw5SJfX2ZR&sig=Gqel_8Rby2iQBPZwuV1Jm8iBDbo&hl=en&ei=s74cTM_BOMqFrAf2oqzVCw&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=3&ved=0CCIQ6AEwAg#v=onepage&q=majhwar%20tribe&f=false)

[149] Shiv Kumar Tiwari- Tribal roots of Hinduism,page- 299 (http://books.google.co.in/books?id=n0gwfmPFTLgC&pg=PA299&lpg=PA299&dq=majhi+tribe&source=bl&ots=ketM3CZ6Ws&sig=Y_KqWVbvG6xFCpwEDzOK_VApbQw&hl=en&ei=XrEcTI6xIoqwrAfZv_GmCw&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=5&ved=0CCEQ6AEwBDgK#v=onepage&q=majhi%20tribe&f=false)

द्वितीय- व्यवसायिक या आर्य माझी अन्य पिछड़ा वर्ग के ढ़ीमर, मल्लाह, नावड़ा आदि जाति संज्ञा के लोग हैं, जिनका जीवकोपार्जन जल के उत्पादों यथा- मछली, सिंघड़ा आदि की खेती, नाव चालन, फुटना(चना)-मुरमुरा विक्रय आदि पर निर्भर है। नाव से नदी पार कराने के कार्य में रत रहने के कारण इन्हें माझी कहा गया। 1886 में विलियम क्रुक्स ने इन्हें आर्यन माझी की संज्ञा दी।[150] कभी-कभी इन्हें कोल लोगों के उस समूह से जोड़ा जाता है, जिसने माछ (मछली) का कार्य अपनाया और माछ से माझी शब्द बना।[151]

तृतीय- छत्तीसगढ़ में माझी पदनाम का भी व्यवहार बस्तर सम्भाग में होता है, जो तृतीय विभेद है। बस्तर सम्भाग में क्षेत्रीय जनजाति पंचायत का प्रमुख माझी कहा जाता है। यह वंशानुगत पद है। यह पदनाम मात्र है। इस पद का व्यक्ति जिस जनजाति का होता है, उसी जनजाति का माना जाता है। जैसे- मुरिया, हलबा या भतरा।[152]

माझी लोगों के ग्राम सामान्यतः पहाड़ी और वनीय क्षेत्रों में होते हैं, जहाँ यह लोग गोंड़, मंझवार, कंवर, मुण्डा, नगेसिया, उराँव, कोरवा आदि जनजातियों के साथ निवास करते हैं। इनके आवास सामान्यतः मिट्टी और लकड़ी के बने होते हैं, जिस पर घाँस-फूस या खपड़े की छत होती है। फर्श मिट्टी का होता है। आवास में दो-तीन कक्ष होते हैं। पशुओं हेतु पीछे कमरा होता है, जिसका द्वारा पिछवाड़े में खुलता है।[153]

इनके घर पर मूसल, टोकरी, सूपा, वस्त्र, मिट्टी और एल्युमीनियम के बर्त्तन, कृषि उपकरण, मछली पकड़ने का जाल आदि होते हैं। प्रत्येक घर में तीर-धनुष भी अवश्य रहता है।

माझी जनजाति के स्त्री और पुरूष प्रातः उठकर नीम, बबूल आदि की पतली टहनियों से दातुन कर दाँत साफ करते हैं। स्नान प्रतिदिन नहीं करते। सप्ताह में चार-पाँच बार ही नहाते हैं। महिलाएँ रीठे और मिट्टी से सिर के केश साफ करती हैं और बालों में तेल लगा जूड़ा बनाती हैं। वे हस्तशिल्प से गुदना गुदवाती हैं।

पुरूष घुटने तक पंछा और बंड़ी तथा महिलाएँ लुगड़ा पहनती हैं। महिलाएँ साड़ी, साया और ब्लाउज भी पहनने लगी हैं। उम्रदराज महिलाएँ पूरा शरीर साड़ी से ही ढ़कती हैं। लड़कियाँ फ्राक भी पहनती हैं। लड़के पैंट और बुशर्ट पहनते हैं। बच्चे छोटी उम्र में अर्ध नग्न रहते हैं।

इनका भोजन चावल और कोदो का पेज, मौसमी पत्ता भाजी या सब्जी, वनीय कन्द-मूल-फल है। यह लोग माँसाहारी हैं। बकरा, चीतल, मुर्गा, साँभर, वन वराह, सुअर, गिलहरी, बन्दर, केकड़ा, मछली और सभी पक्षियों को खाते हैं। अब शिकार पर प्रतिबन्ध के कारण यह कार्य नगण्य प्राय रह गया है। पुरूष तम्बाखू को तेन्दू पत्ते में लपेटकर आठ-नौ सेंटीमीटर लम्बी चोंगी बना कर पीते हैं।

बाँस हस्तशिल्प माझी जनजाति का पारम्परिक व्यवसाय है। इनका जीवकोपार्जन इसके साथ पहाड़ी कृषि, वन उपज संग्रह, शिकार और मजदूरी पर निर्भर है। पहाड़ी खेतों में धान, कोदो, उड़द आदि बोते हैं। वनों से महुआ, चिरौंजी आदि एकत्र कर बेचते हैं। कोल माझी मोहलाईन रेशों द्वारा हस्तशिल्प से रस्सी गेरूवा और डोरी-डांवा बनाकर कंवर, गोंड़, उराँव, बिंझवार आदि जनजातियों को अन्न के बदले देते हैं। अब रूपया भी लेते हैं। बाँस हस्तशिल्प से टुकनी, झांपी, झऊहा आदि बनाकर बेचते हैं। बरहा, साँभर, गिलहरी, खरगोश आदि का शिकार करते रहे हैं। स्वयं के उपयोग हेतु मछली पकड़ते हैं।

माझी जाति में मुख्यतः तीन उपजातियाँ हैं- कोल माझी, डोरबटा या तुरया माझी और किसान माझी। किसान माझी अपने को शेष दो से बड़ा मानते हैं और हाड़ू (बन्दर), चिटरा (गिलहरी) आदि नहीं

---

[150] एस.पी.भट्ट और टी.के.वैष्णव-माझी

[151] R. V.Russell The Tribes and Castes of the Central Provinces of India,Voll.-IV,P.199 (http://books.google.co.in/books?id=eM1TdcVsK88C&pg=PA198&lpg=PA198&dq=majhwar+tribe&source=bl&ots=Gw5SJfX2ZR&sig=Gqel_8Rby2iQBPZwuV1Jm8iBDbo&hl=en&ei=s74cTM_BOMqFrAf2oqzVCw&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=3&ved=0CCIQ6AEwAg#v=onepage&q=majhwar%20tribe&f=false)

[152] मुराब इन्दु-माझी जनजाति

[153] छत्तीसगढ़ अभिलेख प्रभाग-भुंजिया जनजाति के संक्षिप्त मानवशास्त्रिय अध्ययन(मोनोग्राफिक)

खाते। वे मुख्यतः आदिम कृषि पर केन्द्रित हैं। यह उपजातियाँ गोत्रों में विभक्त हैं। यथा- केकरा, खोकसा, धनकी, बाघ, सुआ, धींवा, नाग, बारम, तेलासी, मरकाम, सेमरिया, कुर्राम, उड़का, मराई आदि। प्रत्येक गोत्र के टोटम होते हैं।

गर्भावस्था पर संस्कार नहीं हैं। प्रसव घर पर सुईन दाई कराती है। इस हेतु घर के बाहर प्रसव झोपड़ा बनाया जाता है। बच्चे का नाल गिरने पर शुद्धि करते हैं और रिश्तेदारों को भिज देते हैं, जो सामान्यतः छठा दिन या छठी होता है। प्रसूता को हिरंवा से बनाया गया कसा, जिसमें गुड़, सेमर छाल, छिन्द जड़, सोंठ आदि होती है।

इस जनजाति में सामान्यतः लड़कों की विवाह उम्र 14 से 18 और लड़कियों में 12 से 16 वर्ष है। विवाह प्रस्ताव वर पिता वधु के घर जाकर करता है। प्रस्ताव स्विकृत्त होने पर वधु पक्ष को चावल, शगुन रूपए, तेल, दाल, शाक, भाजी आदि सूक में दिया जाता है। विवाह रस्म जाति के सियान या बैगा द्वारा पूर्ण कराई जाती है। इनमें उढ़रिया (सहपलायन), ढुकु (घुसपैठ), लमसेना (घरजवाई), चूड़ी पहनाना (पुर्नविवाह) आदि भी प्रचलित हैं।

मृत्तक को गाड़ते हैं। तीसरे दिन मुण्डन कराते हैं। दसवें दिन भोज देते हैं।

माझी जनजाति में भी जाति पंचायत है। इसका प्रमुख सियान कहलाता है। इसमें जाति बाह्य विवाह, विवाह-विच्छेद, विहाटी (वधु धन वापसी) आदि का निराकरण किया जाता है।

यह जनजाति भी पितृसत्तात्मक, पितृवंशी, पितृनिवास स्थानिय वंश परम्परा पर ही आधारित है।

इनके अराध्य हैं- ठाकुर देव, बूढ़ा देव, बूढ़ी दाई, दीहारिन, हिन्दू अराध्य, प्रकृति आदि। भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र, आत्मा, पर्नजन्म आदि पर विश्वास है। त्योहार हैं- करमा, नवा तिहार (त्योहार), फागुन तिहार (होली), गौरा तिहार आदि। इनके नृत्य हैं- सुवा, गौरा, करमा, डंडा नाच (फागुन में), विवाह नाच, आदि। गीत हैं- सुवा, करमा, डण्डा गीत अदि। यह लोग ढ़ोल, मादल आदि वाद्य यंत्र उपयोग करते हैं।

शिक्षा कम है। परिवर्त्तन भी आए हैं। भाषा, अराध्य, अराधना, वस्त्र विन्यास, लोक कला, शारीरिक स्वच्छता, रहन-सहन आदि में बदलाव आया है। पहाड़ी कृषि पर अधिकांश लोगों के आश्रय से गरीबी और अर्थाभाव है।

18. मझवारः-

छत्तीसगढ़ में मझवार भी अल्पसंख्यक जनजाति है। राज्य में इनका मुख्य निवास क्षेत्र, माझी की ही तरह, बिलासपुर सम्भाग के रायगढ़ और कोरबा तथा सरगुजा सम्भाग के सरगुजा आदि जिलों में ही हैं। 2001 में इनकी जनसंख्या 48,510 थी।

मझवार जनजाति की उत्पति पर एतिहासिक और वैज्ञानिक शोध होने हैं। इन्हें गोंड़, मुण्डा और कंवर जनजातियों के प्रमुखों का मिश्रित समूह माना जाता है।[154] जाति पंचायत के मध्य में बैठने के कारण मझवार संज्ञा की व्युत्पत्ति हुई। वैसे भी, जैसा पूर्व में उल्लेख आ चुका है, माझी जनजाति पंचायत प्रमुख का पदनाम भी है। अतः यह शब्द दलपति के लिए प्रयुक्त शब्द रहा है। इनकी उत्पति माझी जनजाति के साथ मानी जाती है। कालांतर में दोनों पृथ्क समूह के रूप में चिन्हित हुए। इस पर माझी जनजाति पर चर्चा के समय भी उल्लेख में लाया गया है और उसमें भी कुछ तथ्य उल्लेखित किए गए हैं। अतः उन्हें भी देखा जा

[154] R. V.Russell The Tribes and Castes of the Central Provinces of India,Voll.-IV,P.198 (http://books.google.co.in/books?id=eM1TdcVsK88C&pg=PA198&lpg=PA198&dq=majhwar+tribe&source=bl&ots=Gw5SJfX2ZR&sig=Gqel_8Rby2iQBPZwuV1Jm8iBDbo&hl=en&ei=s74cTM_BOMqFrAf2oqzVCw&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=3&ved=0CCIQ6AEwAg#v=onepage&q=majhwar%20tribe&f=false)

सकता है। इस जनजाति में अधिकाँश लक्षन कोलेरियन समूह के हैं।[155] यह लोग अपनी बोली में स्वयं को होर कहते हैं।

मझवार जनजाति के लोगों के घर मिट्टी का बना होता है, जिस पर घाँस-फूस या खपड़े की छत होती है। इसमें एक परछी (बरामदा) और दो से तीन कमरे होते हैं। फर्श गोबर से और दीवार सफेद मिट्टी से लीपते हैं।

इनके घरों में सामान्यतः चारपाई, चक्की, मूसल, ओढ़ने-बिछाने-पहनने के कपड़े, बनाने और खाने के बर्त्तन, कुल्हाड़ी, कृषि उपकरण, मछली पकड़ने का जाल आदि पाए जाते हैं।[156]

मझवार जनजाति के स्त्री और पुरूष प्रातः उठकर नीम, बबूल, करंज आदि की पतली टहनियों से दातुन कर दाँत साफ करते हैं। स्नान प्रतिदिन करते हैं। महिलाएँ मिट्टी से सिर के केश साफ करती हैं और बालों में फल्ली, तिल या गुल्ली का तेल लगा चोटी या जूड़ा बनाती हैं। वे हस्तशिल्प से हाथ, पैर और चेहरे पर गुदना गुदवाती हैं। वे आभूषण पहनती हैं।

इस जनजाति का भी मुख्य भोजन कोदो, कुटकी और चावल का भात और पेज है। वे उड़द, मूँग, अरहर, कुल्थी आदि की दाल और ऋतु शाक, वनीय कन्द-मूल-भाजी आदि भी खाते हैं। माँसाहारी हैं। बकरा, मुर्गा, मछली, हिरण, खरगोश अदि खाते हैं। त्योहार या किसी अवसर या आयोजन पर महुआ शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी पीते हैं।

इनका आर्थिक जीवन पिछड़ी कृषि, वन उपज संग्रह, खाद्य संकलन, मजदूरी आदि पर निर्भर है। कोदो, धान, मूँग, उड़द, अरहर, तिल, मडिया आदि उगाते हैं। महुआ, गुल्ली, तेन्दूपत्ता, हर्रा, गोन्द, लाख, इमली, धवई फूल आदि वन से सग्रह कर बेचते हैं। वनों से कन्द, मूल, फल, भाजी स्वयं के उपयोग हेतु एकत्र करते हैं। अब शिकार नगण्य प्राय है। वर्षा में मछली पकड़ते हैं।

इनमें बर्हिविवाही गोत्र हैं। इनके नाम हैं- भैंसा, सुरही, साही, साहड़ा, भेलवा, बाघ, झींगा, चुटरू, डुमर, नाग, खोकसा, भण्डारी, डांग, सुवा, खुंटा, धानकी, कमान, बाम्बी, चिंगरी, केकरा आदि। गोत्र में टोटम पाए जाते हैं।

प्रसव पति गृह में परिवार की बुजुर्ग महिला द्वारा कराया जाता है। नाल घर में गाड़ते हैं। जच्चा को कुल्थी, छिन्द जड़, सरई छाल, ऐंठीमुड़ी, गोन्द, सोंठ, गुड़ आदि काढ़ा पीने को देते हैं। छठी पर शुद्धी करते हैं। जच्चा-बच्चा को स्नान करा अराध्य और सूर्य का दर्शन कराते हैं। रिश्तेदारों को भोजन कराते और शराब पिलाते हैं।

इस जनजाति में सामान्यतः लड़कों की विवाह उम् 16 से 18 और लड़कियों में 14 से 16 वर्ष है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष वधु के घर जाकर रखता है। प्रस्ताव स्विकृत्त होने पर वधु पक्ष को अनाज, शगुन रूपए, गुड़, दाल, तेल आदि सुक भरा जाता है। विवाह रस्म जाति के सियान द्वारा पूर्ण कराई जाती है, विशेष कर फेरे की। मंगनी, सगाई, ब्याह और गौना की रस्में हैं। इनमें विनिमय, सेवा विवाह, घुसपैथ, सहपलायन, विधवा पुर्नविवाह, देवर-भाभी पुर्नविवाह आदि को भी सामाजिक मान्यता हैं।

शव गाड़ते हैं। विशिष्ट व्यक्ति का शव जलाते हैं। तीसरे दिन परिवार के पुरूष सदस्य मुण्डन कराते हैं। दसवें दिन स्नानोपरांत पूर्वज पूजा कर भोज देते हैं।

इनमें भी पारम्परिक जाति पंचायत है। इसका प्रमुख गौंटिया कहलाता है। इसमें विवाह, तलाक, अनैतिक सम्बन्ध, उत्तराधिकार, बंटवारा आदि के प्रकरण पारम्परिक तरीके से निराकृत्त किए जाते हैं।

इस जनजाति के अराध्य हैं- ठाकुर देव, बूढ़ा देव, दूल्हा देव, भीम सेन, बरगम पाट, बूढ़ी माई, कंकालीनी माई, हिन्दू अराध्य, सूर्य, चन्द्र, धरती, नदी, वृक्ष, नाग आदि। भूत-प्रेत, जादू-टोना, आत्मा, पुर्नजन्म, झाड-फूंक आदि पर विश्वास है।

---

[155]टी.के.वैष्णव-मझवार

[156] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ।

मझवार लोग हरेली, पोला, भोजली, नवाखानी, दशहरा, दीपावली, करमा पूजा, होली आदि त्योहार मनाते हैं। करमा, भुजलिया (भोजली पर), विवाह, रहस (होली पर), पड़की (दीपावली पर महिलाओं द्वारा) आदि नृत्य करते हैं। करमा, सुवा, फाग, विवाह, ददरिया, भजन आदि लोक गीत गाते हैं।

शिक्षा अल्प है। विकास कार्यक्रमों, शिक्षण, संचा, यातायात और बाह्य सम्पर्कों आदि के कारण मझवार जनजाति के रहन-सहन, विश्वास, खान-पान, वस्त्र विन्यास, कृषि पद्धति, लोक कला आदि में परिवर्त्तन आया है।

इनकी भी प्रमुख समस्या अर्थ अभाव की ही है। शिक्षा की कमी, कुपोषण, अन्ध विश्वास, पिछड़ी श्रम साध्य कम उत्पादक कृषि, रोग उपचार का अभाव आदि उसकी अनुषाँगि इकाई की तरह साथ हैं।

19. मुण्डाः-

मुण्डा लोग **भारतीय उपमहाद्वीप के मूल निवासी** माने जाते हैं।[157] इसका मुख्य आधार उनकी भाषा मुण्डारी का आस्ट्रोएस्टिक समूह का होना है। मुण्डारी आस्ट्रोएस्टिक समूह के मुण्डा उपसमूह में रखी गई है।[158] दक्षिणी छोटा (चुटिया) नागपुर इनका प्रधान क्षेत्र माना जाता हैं, जहाँ से यह लोग पूर्वी भारत के झारखण्ड, बिहार, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, असम और बाँग्लादेश में फैले। यह लोग अपने आप को हुड़ुक कहते हैं, जिसका अर्थ मानव है। छत्तीसगढ़ में यह कम हैं। 2001 में इनकी जनसंख्या 12,383 थी। और यह लोग छोटा (चुटिया) नागपुर अर्थात झारखण्ड के साथ लगे सरगुजा सम्भाग के सरगुजा और जशपुर जिलों में रह रहे थे।[159]

छोटा (चुटिया) नागपुर और भूमीज क्षेत्रों में इनकी सत्ता भी रही।[160]

मुण्डा जनजाति पर भी एतिहासिक उत्पति और वैज्ञानिक शोध होने हैं। इन्होंने ही सरगुजा-जशपुर के सघन वनों को काट स्थाई निवास बनाया। यह लोग एक ही स्थान पर प्राचीन समय से हैं।

यह लोग कोलरियन समूह के माने जाते हैं। मुण्डा जनजाति पर आगे चर्चा के पूर्व इस मूल समूह के आधार पर अन्य तथ्य भी जान लेना बेहतर होगा। डॉक्टर गुहा ने 'रेस एलिमेण्ट्स इन दी इण्डियन पॉपुलेशन' में भारत के निवासियों को छः मानव-वंशों में बांटाः-

निग्रिटो, प्रोटो आस्ट्रेलाइड़, भूमध्यसागरीय या मैड़ेटेरियन, पश्चिम वृत्त कापालिक या वेस्टर्न प्रोसिशिफल और नार्डिक।

इनमें से भारत की आदिम जातियां निग्रिटो, प्रोटो-आस्ट्रेलाइड और मंगोलाइड आदिम परिवारों से ही सम्बन्धित हैं। इनमें प्राचीनतम- निग्रिटो जातियां- भारत में अत्यंत अल्प रह गई हैं। श्रावणकोर की कादन और पलियन, राजमहल पहाड़ियों की बागड़ी , दक्षिण भारत की कुछ अन्य जातियाँ और अण्डमान-निकोबार की जनजातियों को भारत में विशाल निग्रिटो-परिवार का समाप्त प्राय अवशेष माना जाता हैं।

भारतवर्ष के उत्तरी-पूर्वी भागों में, विशेषकर असम में मंगोलाइड़ वर्ग की जातियां बसी हैं। हालाँकि मध्य भारत में भी उनके रक्त के कुछ अंश पाये जाते हैं।

---

157 Sylvain Lévi, P. Levi, Jules Bloch, Jean Przyluski-Pre-Aryan and Pre-Dravidian in India

158 http://en.wikipedia.org/wiki/Munda_people

159 छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ।

160 http://www.ecoindia.com/tribes/munda.html

शेष तीसरी प्रोटो-आस्ट्रेलाइड वर्ग की जातियां भारत में सर्वाधिक हैं। **छत्तीसगढ की समस्त जनजातियाम इसी प्रोटो-आस्ट्रेलाइड़ प्रवर्ग की हैं**। गुहा लिखते हैं-

''मध्य और दक्षिण भारत की सभी जनजातियाँ निश्चित रूप से इसी परिवार से संबंध रखती हैं। यद्यपि इनकी भाषाओं का विभिन्नभाषा परिवारों से सम्बन्ध है। पश्चिम भारत की समस्त जातियाँ, गंगा के मैदान की वे जातियाँ जो हिन्दू समाज का बाह्य अंग बन गई हैं, मध्य भारत के पहाड़ो में रहने वाली भील, कोल, वड़गा, कोरवा, खरवार, मुण्ड़ा, भूमिज, माल पहाड़िया जातियाँ और दक्षिण भारत की चेचू, कुरम्बा, मलय, येरू आदि भी इस जाति की प्रतिनिधि समझी जा सकती हैं। यद्यपि उनमें अन्य परिवारों का सम्मिश्रण, विशेषतः निग्रिटो का, एक समान नहीं है। तथापि यह निश्चित है कि, दक्षिण भारत की जातियों के मध्य, भारत की अपेक्षा, यह सम्मिश्रन अधिक है।''

गुहा द्वारा दिया गया ऊपर वर्णित वर्गीकरण हालाँकि जातिगत है। भाषा की दृष्टि से विशाल भारत के इस परिवार के आदिवासियों ने विभिन्न जनजातीय भाषाओं के अतिरिक्त अन्य भाषा-परिवारों की भाषाओं को भी अपनाया है।

मुण्डा भाषाएँ आस्ट्रिक परिवार की भाषाएँ हैं। आस्ट्रिक परिवार की जो भी भाषायें भारतवर्ष की विभिन्न जातियों द्वारा बोली जाती हैं, वे सब की सब मुण्डा-भाषाएँ कहलाती है। भाषाओं का आस्ट्रिक परिवार एक बहुत विशाल परिवार है, जो मध्य भारत से आस्ट्रेलिया तक फैला हुआ है। ई. ए. गेट राय बहादुर शरत चन्द्र राय लिखित 'मुण्डाज एण्ड देयर कन्ट्री' के इण्ट्रोडक्शन में लिखित हैं-

''मुण्ड़ा की भाषा, छोटा (चुटिया) नागपुर की संथाल, हो और अन्य जातियों द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं के उस परिवार से सम्बन्ध रखती है, जिसे आस्ट्रो-एशियाटिक कहते हैं और जिसमें ख्मेर, वा, पालंग, निकोवारी, खासी और मलक्का की आदिवासी भाषाएँ सम्मलित हैं। भाषाओं का एक दूसरा परिवार भी है, जिसे आस्ट्रो-नेशियन कहते हैं, जिसमें इण्ड़ोनेशियन, मालेनेशियन और पालेनेशियन सम्मलित हैं। ये दोनों परिवार – आस्ट्रो-एशियातिअक और आस्ट्रो-नेशियन- एक बड़े परिवार में सम्मलित हो जाते हैं, जिसे आस्ट्रिक कहते हैं।"

श्यामसुन्दर दास भाषाविज्ञान में लिखते हैं कि, ''भारतीय विद्वानों ने इन दोनों परिवारों का नाम आग्नेय-देशी और आग्नेय द्वीपी दिया है।"

मुण्डा भाषाओं के मूल और परिवार के सम्बन्ध में शरत चन्द्र राय लिखते हैं।:-

"प्रसिद्ध पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकों ने अनुसन्धान करके इस बात का पता लगाने में सफलता प्राप्त की है वृहत्तर भारत, कोचीन-चीन, मलाय-प्रायद्वीप, निकोबार, फिलीपाइन-द्वीप समूह, मलक्का और आस्ट्रेलिया में जो असभ्य जातियाँ (Rude tribes) बसती हैं, उनकी भाषाओं में प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। क्या शब्दकोश, क्या व्याकरण के नियम,क्या भाषा की रचना के तत्व सभी बातों में भारत की कोलयरिन मुण्ड़ारी, संताली, भूमिज, हो, बिरहोर, कोड़ा, तूरी, असुरी कोरवा, कुरकू, खड़िया, जुवांग, सबर, गड़वा आदि भाषाएँ मलाया प्रायद्वीप की सकई और सेमंग, अनामी बरसीसी, मोन-ख्मेर तथा खासी, मलक्का द्वीप समूह के आदिवासियों की भाषाएँ, आस्ट्रेलिया की दिप्पल, तुरूवल,, कमिलरोव, ओड़-ओड़ी, किंकी वैलुवन, तोंगुरोग तथा अन्य भाषाएँ और निकोबार की कार-निकोवार, चोवरा, तेरेसा, शोम्पेन आदि भाषाएँ आपस में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं।"

प्रोटो-आस्ट्रेलाइड परिवार की कुछ जातियों ने अपने से अधिक उन्नत मेडिटेरियन (भू-मध्य सागरीय) परिवार की द्रविड़-जातियों के सम्पर्क में आने से अपनी मौलिक भाषाओं को भूलकर द्रविड़ भाषाओं को ही अपना लिया है, जिसमें छोटा (चुटिया) नागपुर के उराँव प्रमुख हैं। इन बातों के कारण विद्वान बहुत दिनों तक जातियों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में भ्रम में पड़े रहे, क्योंकि तब तक भाषायें ही वर्गीकरण का सबसे मुख्य आधार थीं। किन्तु, जब मानव शास्त्रियों ने वैज्ञानिक मापदण्ड :

क. मनुष्य के शरीर वर्ण के भेद, केश के प्रकार, नेत्र रंग;
ख. सिर का प्रकार;
ग. मानव विज्ञान की सहायता से विभिन्न समूह की जाति गत योग्यता स्वभाव का अध्ययन;
घ. रक्त वर्गों का विश्लेषण आदि

निर्धारित कर लिए, तब भाषाओं का आधार महत्वपूर्न नहीं रह गया और रक्त वर्गों का विश्लेषण सबसे प्रमुख बन गया।

उपर्युक्त भ्रम में पड़कर बहुत से शोधकर्मी उराँव आदि जातियों को द्रविड़ियन मानते रहे। एक ही प्रोटो-आस्ट्रेलाइड जातियों को दो समझकर उनका *कोलेरियन* और *द्रविड़ियन* परिवारों में वर्गीकरण किया गया। शरत चन्द्र राय का भी यह ही मत था, किन्तु इससे भी आश्चर्यजनक भ्रम *इन्साइक्लोपीडिया* का था, जिसने, पता नहीं, किस आधार पर स्वयं मुण्डाओं को द्रविड़ परिवार का माना है। उन्होंने लिखा है : "मुण्डा = छोटा नागपुर अंचल में रहने वाली द्रविड़-असभ्य जाति विशेष।" यह भ्रमात्मक प्रचार है।

डॉक्टर गुहा ने इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त की स्थापना करके कि, जब कोई जाति अपने से अपेक्षाकृत अधिक सभ्य जाति के सम्पर्क में बहुत दिनों तक रहती है, तब वह प्राय: अपनी भाषा को भूलकर सभ्य जाति की भाषा अपना लेती है। इस भ्रम का निराकरण कर दिया है। दुनियाँ की बहुत सी जातियों में यह बात हुई है। झारखण्ड के उराँव और मुण्डा स्वयं इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। मुण्डा क्षेत्र में जो दो-चार घर उराँव जहाँ-तहां आ बसे हैं, वे मुण्डा भाषा और उराँव क्षेत्र के मुण्डा-उराँव-भाषा बोलते हैं।

आस्ट्रिक परिवार की जो भाषायें भारत की जनजातियों द्वारा बोली जाती हैं, उनका नाम ग्रियर्सन ने *कोलेरियन* (या कोलभाषा-परिवार) दिया है। ग्रियर्सन ने इन नाम को प्रचारित करना चाहा, परन्तु फ्रेडरिक मिलर ने इन भाषाओं को *मुण्डा-भाषाओं* की संज्ञा दी। इन मुण्डा भाषाओं का प्रचार भारत की आदिम जातियों में पहले से था और इन्हीं जातियों के द्वारा भारत में पाषाण युग की सभ्यता का निर्माण हुआ था।

इन मुण्डाभाषी जातियों के नाम अलग-अलग हो गये हैं, रस्म-रिवाज बदल गये हैं और उनकी भाषाओं में बहुत अन्तर पड़ गया है। उनमें कहीं-कहीं तो इतना अन्तर पड़ गया है कि, भाषा शास्त्र की सूक्ष्म और वैज्ञानिक दृष्टि से देखे बिना उनमें एकता नहीं मालूम हो सकती। इसके कारणों पर शोध वांछित है।

बहुत दिनों से ये जातियां काल की आँधियों में पड़कर बिखर गई हैं। और एक दूसरे से इतनी दूर पड़ गयी है कि, उनमें आपस में कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। जैसे आज ज्ञान, विज्ञान और सम्पर्क बड़ी-बड़ी दूरियों को भी निकट बना रहे हैं, वैसे ही अज्ञानता और असम्पर्कता ने इनकी निकटता में ली लाखों कोस की

दूरी भर दी है। पहले इनमें शिक्षा की वह सूक्ष्मदर्शी और दूरदर्शी दृष्टि भी नहीं रही है, जिससे ये भूतकाल में प्रवेश करके अपनी एकता को समझते। इसलिये एक ही जाति की एक-एक शाखा को अलग-अलग जाति मान लेना इनके लिए स्वाभाविक था।

दूसरी बात यह है कि, जातियों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है। एक तो कोई जाति स्वयं अपना नाम रखती है, जिसमें औरों से अपनी विशेषता सूचित करती है। दूसरे, अन्य लोग किसी जाति का नाम रखते हैं, जिसमें उस जाति के बारे में अपने विचारों को ध्वनित करते हैं और उनके बारे में अपनी हीनता या उच्चता की भावना प्रकट करते हैं। बहुधा ऐसे नामों में जातीय घृणा और तिरस्कार के कारण हीनता की भावना ही प्रकट होती है। पीछे ये दोनों प्रकार के नाम रुढ़ बन जाते हैं। मुण्डा जातियों ने बहुधा अपना नाम मनुष्यवाची रखा है। जैसे संताल - "टोड़', मुण्डा - "होड़ो को', हो - "हो' और यह स्पष्ट है कि वे जितनी बार बिखरी उतनी बार अपना नाम रखा। हर शाखा ने अपना और अपने निकट सम्पर्क की दूसरी शाखा का नाम भी रखा। बहुत से पुराने नाम लुप्त हो गये और नये प्रकट हुए। सन्थाल, हो, जुवांग, खड़िया, आदि नाम हाल के रखे हुए हैं। मुण्डा का एक अर्थ है सिर या प्रमुख। गाँव के प्रधान को पहले मुण्डा कहा जाता था। पीछे और जातियों से अपनी प्रमुखात दिखाने के लिए यह जाति का नाम बन गया और फ्रेडरिक मिलर के द्वारा पूरे परिवार की भाषाओं के लिए अपनाया गया।

कई बार शब्द अपने पुराने अर्थ छोड़कर नये अर्थ ग्रहण कर लिया करते हैं। हो जाति ने मुण्डाओं से अलग होने पर अपना नाम "हो' रखा। "हो' "होड़ो' का संक्षिप्त रुप है, जिसका अर्थ है मनुष्य। "ड़' का उच्चारण नहीं कर सकने के कारण "हो' जनजाति उसे छोड़ देते हैं। जैसे "ओड़:' को "ओअ:' (घर) "पिड़ि' को "पी' (मैदान) और "कुड़ि' को "कुइ' (स्त्री) कहते हैं। सन्ताल अपने को "होड़ो-को' कहते हैं। दूसरे लोग उन्हें सन्ताल या सन्थाल कहते हैं।

इससे पहले इन जातियों (या जनजातियों) का "कोल' और "शबर' नाम मिलता है। "शबर' कोई घृणासूचक शब्द नहीं है। यह शब्द संस्कृत-ग्रन्थों में प्राय: वहां आया है, जहाँ इन जातियों से अच्छे सम्बन्ध के प्रसंग में चर्चा है। विन्ध्य क्षेत्र की "सहरिया' झारखण्ड की "सौरिया' और उड़ीसा, छत्तीसगढ़, कर्नाटक तथा झारखण्ड की "सावरा' आदि जातियों के नाम इसी शब्द से सम्बद्ध हैं। इन्हीं शब्दों को संस्कृत में "शबर' रुप प्रदान किया गया है।

इस प्रकार "मुण्डा' आस्ट्रिक-परिवार की सारी भारतीय भाषाओं का नाम होने के साथ ही अपनी एक स्वतन्त्र उपजाति और उसकी भाषा का नाम भी है। इसे स्पष्ट करने के लिए ही इतने विवरण की आवश्यकता पड़ी।

मुण्डा जनजाति के बहुत दिनों से अन्य भारतीय जातियों के सम्पर्क में रहने के कारण उनकी भाषा पर उच्चारण, शब्दों के आदान-प्रदान आदि के रुप में अन्य भारतीय भाषाओं का अत्यन्त प्रभाव पड़ा है। मुण्डा-भाषा में बहुत से शब्द संस्कृत, प्राकृत तथा अरबी-फारसी के भी सम्मिलित हुए हैं। उन्होंने मुण्डा-उच्चारण के अनुरुप अपनी रुप बदल लिया है। उदाहरण के लिए कुछ शब्द यहाँ दिये गये हैं ।:–

सारणी 2 - कुछ मुण्डा, संस्कृत और हिन्दी शब्दों की तुलना

स्रोत्त- पूनम मिश्र- मुण्डा भाषा : एक परिचय (http://tdil.mit.gov.in/CoilNet/IGNCA/jk017.htm)

क्र.सं.	मुण्डा शब्द	संस्कृत शब्द	हिन्दी शब्द
1	दरु	दारु	लकड़ी
2	तुल	तुला	तराजू
3	अञ्जलि	अंजली	अंजली
4	दतरोम्	दात्रोम	हंसुवा
5	चलङ्क	पालंक	पलंक
6	पण्डु	पाण्डुर	पीला
7	सार	शर	तीर
8	कदले	कदली	केला
9	समड़ोम्	स्वर्ण	सोना
10	कण्टड़	काष्ठफल	कटहल

सारणी 3 - कुछ मुण्डा, फारसी और हिन्दी शब्दों की तुलना

स्रोत्त- पूनम मिश्र- मुण्डा भाषा : एक परिचय (http://tdil.mit.gov.in/CoilNet/IGNCA/jk017.htm)

क्रं.सं.	मुण्डा शब्द	फारसी शब्द	हिन्दी शब्द
1	कुम्पाट	कोम्पाट	श्रेष्ठ
2	जोर	जोर	शक्ति
3	खूब	खूब	पूरा
5	जोहार	जुहार	नमस्कार

मुण्ड़ा-भाषा की मौलिक शब्दावली में वन, पर्वत सम्बन्धी वस्तुओं के शब्दों की भरमार है। पशु-पालन, ग्राम व्यवस्था तथा कृषि-कार्यों से सम्बन्धित मौलिक शब्द इस जाति की मूल संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं। धातु के बरतन, कपास के वस्त्र, वाणिज्य-व्यवसाय, कर्ज, सूद, महाजन आदि सम्बन्धी शब्द मुण्डा-भाषा के अपने मूल शब्द नहीं हैं। मुण्डारी में इन बातों के लिये आर्य भाषाओं के शब्दों को देखकर पता चलता है कि मुण्डाओं की मूल संस्कृति में ये बातें विद्यमान नहीं थीं, किन्तु नृत्य, गान, वाद्य, बांसुरी आदि के उनके अपने शब्द हैं।[161]

[161] पूनम मिश्र- मुण्डा भाषा : एक परिचय (http://tdil.mit.gov.in/CoilNet/IGNCA/jk017.htm)

छत्तीसगढ़ में मुण्डा जनजाति के लोग ग्रामों में उराँव, नगेसिया, कंवर आदि जनजातियों के साथ निवास करते हैं। इनके भी आवास मिट्टी, बाँस, काष्ठ और खपरैल के बने होते हैं, जिसमें दो-तीन कक्ष होते हैं। सामान्यतः दीवारे श्वेत मिट्टी से और फर्श गाय के गोबर से लीपा जाता है। पशु कोठार पृथ्क होता है। ग्राम में सरना, आखर और सागन होता है।

घर पर अन्न भण्डारण की कोठी, अन्न पीसने की चक्की, कूटने का मूसल, रसोई के बर्त्तन, चारपाई, ओढ़ने-बिछाने-पहनने के वस्त्र, कृषि उपकरण, कुल्हाड़ी, मछली पकड़ने का जाल, वाद्य यंत्र आदि होते हैं।

इस जनजाति के लोग प्रतिदिन दातौन और स्नान करते हैं। केश मिट्टी से धो तेल लगा कंघी करते हैं। महिलाएँ चोटी बना जूड़ा बनाती हैं। वे हस्तशिल्प से गुदना गुदवाती हैं। आभूषण पहनती हैं।

सामान्यतः पुरूष पंछा और बंड़ी तथा महिलाएँ लुगड़ा और पोलका पहनती हैं। यह लोग छोटी कद काठी के काले रंग के होते हैं। इनके केश घुंगराले होते हैं। कदकाठी और रूप रंग में इन्हें अधिकांशतः बंगाली लोगों के समीप माना जाता है।[162]

यह लोग सामान्यतः चावल, कोदो और गोन्दली का भात खाते हैं। इसके साथ दाल या मौसमी शाक भी खाते हैं। माँसाहारी हैं और अंड़ा, मुर्गा, मछली, बकरा आदि खाते हैं। त्योहार या आयोजन आदि के अवसर पर चावल से निर्मित हंड़िया शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी भी पीते हैं।

पूर्व में मुण्डा लोग शिकार पर आश्रित थे, अब कृषि, वन उपज संग्रह और मजदूरी पर आश्रित हैं। अब यह लोग कुशल कृषक माने जाते हैं। वे धान, कोदों, गोंदली, उड़द, मूँग, अरहर, तिल आदि उगाते हैं। वनों से तेन्दूपत्ता, लाख, गोन्द, हर्रा, आँवला, वनीय कन्द-मूल, भाजी आदि संग्रह करते हैं। कुछ उपयोग करते है और अधिकांश बेचते हैं। अब मजदूरी करते हैं। वर्षा काल में मछली भी पकड़ते हैं।

मुण्ड़ा जनजाति भी पितृवंशीय, पितृसत्तात्मक और पितृनिवास स्थानिय गुण वाली जनजाति है। यह जनजाति कई खूंट में विभक्त है। यह खूंट भी किली (गोत्र) में विभक्त हैं। जैसे- भेंगरा, बोदरा, परती, कंरू, इन्द (एक मछली), जिरहल, मुन्दरी, निमक, अम्बा, बलुम, गोन्दली, टोपनो (एक चींटी), बरला (एक वृक्ष या मजदूर), हेमरोम, गुरिया, हेरेंगे, सुरिन, होरो संगा, समद आदि। प्रत्येक गोत्र के टोटम पाए जाते हैं। सामान्यतः एक गोत्र के लोग एक क्षेत्र विशेष में बसे हैं।

गर्भावस्था पर संस्कार नहीं हैं। प्रसव स्थानिय दाई या परिवार की उम्रदराज़ महिला कराती है। नाल घर पर गाड़ते हैं। प्रसूता को सोंठ, पीपर, गुड़ और जड़ी-बूटियों का काढ़ा पिलाते हैं। छठी पर स्नान, नवीन वस्त्र धारण, सफाई और सूरज तथा कुल अराध्य को प्रणाम करा शुद्धि करते हैं। रिश्तेदारों को भोजन कारते और हंड़िया पिलाते हैं।[163]

लड़कों की विवाह आयु 16-20 और लड़कियों की 14-18 है। सगोत्रीय विवाह नहीं है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है और अनाज, दाल, हल्दी, गुड़, तेल और शगुन के रूपए देता है। मंगनी, सगाई, ब्याह और गौना के चरण होते हैं। फेरे जाति का बुजुर्ग लगवाता है। विनिमय, सेवा, घुसपैठ, सहपलायन-विवाह भी मान्य हैं। हो, संथाल, उराँव और खरिया में विवाह स्विकार लेते हैं। उराँव में चाचा-भतीजा सम्बन्ध के कारण और शेष से रक्त भाई सम्बन्ध के कारण। अन्य से विवाह पर जाति निकाला है।

---

162 http://www.ecoindia.com/tribes/munda.html

163 छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ।

शव गाड़ते हैं। प्रत्येक गोत्र का गुआर्डिन नामक स्तम्भ लगा स्मारक बनाते हैं। इस प्रस्तर स्तम्भ को सासांगडिरि या पीत (हल्दी) स्तम्भ कहते हैं। प्रत्येक मुण्डा को जीवन में कम से कम एक बार इन स्तम्भों का दर्शन करना अनिवार्य है। हालाँकि अब इसाई धर्म अपनाने वाले मुण्डा लोग इसको नहीं अपनाते।[164] तीसरे दिन मुण्ड़न होता है। दसवें दिन पूर्वज पूजा पाहन द्वारा कराई जाती है, तदुपरांत भोज होता है।

इनमें भी पारम्परिक जाति पंचायत है। इसमें परहा राजा, दीवान, ठाकुर, पाण्डे, करता, लाल आदि इसके पदाधिकारी हैं। इसमें विवाह, विवाह-विच्छेद, यौन व्यभिचार, उत्तराधिकार, अंतर्जातिय विवाहा आदि के प्रकरण निराकृत्त किए जाते हैं।

मुण्ड़ा जनजाति में जीववाद, बोंगावाद, प्रकृतिवाद, टोटमवाद है। यह लोग सरना धर्म मानते हैं। कई अब इसाई धर्म अपना लिए हैं। इनके सर्व प्रमुख अराध्य हैं- सिंगबोंगा (सूर्य देव)। अन्य अराध्य हैं- दिसुलबोंगा, चांड़ीबोंगा, हातुबोंगा, ओंराबोंगा आदि। हिन्दू देवी-देवता मानते हैं। जैसे- शिव आदि। पूजा में मुर्गी और बकारा बलि भी देते हैं। भूत-प्रेत, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, आत्मा, पुर्नजन्म आदि मानते हैं। धार्मिक विशेषज्ञ या तंत्र-मंत्र के जानकार को पाहन कहते हैं।

इनके त्योहार हैं- करमा, सरहुल, सोहराई (दीपावली), माघ परब, फागुन परब (होली) आदि। इनके नृत्य हैं- करमा, सरहुल, फाग, विवाह, सोहराई आदि। इनके लोक गीत हैं- करमा, सरहुल, फाग, विवाह, भजन आदि।

इनमें शिक्षा अल्प ही है। विकास आदि के कारण रहन-सहन, खान-पान, लोक कला, वस्त्र-विन्यास आदि में बदलाव आया है। शिक्षा और नौकरी में भी रूचि आई है। अन्ध विश्वास कम हुए हैं। अर्थाभाव ही मुख्य समस्या है।

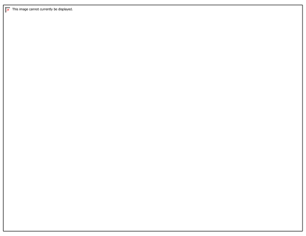
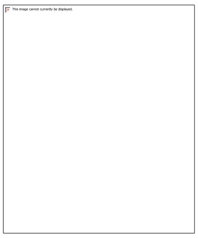
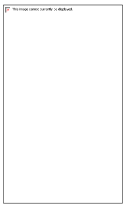

चित्र 26 - मुण्ड़ा मृतक स्मारक 27 - मुण्ड़ा महिलाएँ 28 - मुण्ड़ा परिवार और आवास

स्रोत्त- x.biblewalks.com promotetelugu.wordpress.com और indianetzone.com

उपनिवेश काल में जनजातीय विद्रोह में सबसे संगठित एवं विस्तृत विद्रोह 1895 से 1901 के मध्य का मुण्डा विद्रोह था जिसका नेतृत्व बिरसा मुण्डा ने किया था ।

[164] http://en.wikipedia.org/wiki/Munda_people

- बिरसा मुण्डा का जन्म 1875 ई. में रांची के तमार थाना के अन्तर्गत चालकन्द गाँव में हुआ था। उसने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की थी। बिरसा मुण्डा ने मुण्डा विद्रोह पारम्परिक भू-व्यवस्था का जमींदारी व्यवस्था में परिवर्तन हेतु धार्मिक-राजनीतिक आन्दोलन का स्वरूप प्रदान किया।

- बिरसा मुण्डा को उल्गुहान (महान विद्रोही) कहा गया है। बिरसा मुण्डा ने पारम्परिक भू-व्यवस्था का जमींदारी व्यवस्था को धार्मिक एवं राजनीतिक आन्दोलन का रूप प्रदान किया।

- बिरसा मुण्डा ने अपनी सुधारवादी प्रक्रिया को सामाजिक जीवन में एक आदर्श प्रस्तुत किया। उसने नैतिक आचरण की शुद्धता, आत्म-सुधार और एकेश्वरवाद का उपदेश दिया। उन्होंने ब्रिटिश सत्ता के अस्तित्व को अस्वीकारते हुए अपने अनुयायियों को सरकार को लगान न देने का आदेश दिया।

- 1900 बिरसा मुण्डा को गिरफ्तार कर लिया गया और उसे जेल में डाल दिया गया, जहाँ हैजा रोग से उनकी मृत्यु हो गयी।[165]

20. नगेसियाः-

छत्तीसगढ़ में नगेसिया जनजाति अल्प संख्या में है। यह लोग अधिकाँशतः झारखण्ड में हैं। छत्तीसगढ़ में यह लोग सरगुजा सम्भाग के सरगुजा और जशपुर तथा बिलासपुर सम्भाग के रायगढ़ जिलों में है।

नगेसिया जनजाति की उत्पत्ति पर एतिहासिक और आधुनिक वैज्ञानिक उल्लेख नहीं हैं। किंवन्दंति अनुसार यह कहते हैं कि, एक नवजात शिशु को वन में फेंक दिया ग्या। उसकी रक्षा नाग साँप ने फन छत्र की तरह फैला कर की। उधर से गुजरते कुछ मुण्डा जनजाति के लोगों ने उसे उठा लिया और पाला पोसा। आगे चलकर यह बालक मुण्डा जनजाति का राजा हुआ। इसके वंशज नगेसिया कहलाए। यह संज्ञा नाग द्वारा रक्षित होने के कारण मिली। कुछ विद्वान नगेसिया शब्द की व्युत्पत्ति नाग+बसिया, अर्थात (छोटा) नागपुर क्षेत्र में बसने वाले, से मानते हैं। इस सम्बन्ध में यह तर्क दिया जाता है कि, पहले नागबसिया शब्द ही बना, जो नागेसिया हुआ।[166]

नगेसिया जनजाति भी कोलेरियन या मुण्डा समूह की जनजाति है। इनकी बोली या भाषा भी मुण्डारी है।

नगेसिया लोग ग्रामों में अन्य जनजाति यथा- उराँव, मुण्ड़ा, कंवर, मझवार आदि के साथ निवास करते हैं। इनके भी आवास मिट्टी, बाँस, काष्ठ और खपरैल के बने होते हैं, जिसमें दो-तीन कक्ष होते हैं। सामने परछी होती है। कमरे में देव स्थान और कोठी का स्थान सुरक्षित होता है। सामान्यतः दीवारे श्वेत मिट्टी से और फर्श गाय के गोबर से लीपा जाता है। पशु कोठार पृथ्क होता है।

[165] http://biharjourney.blog.co.in/2010/06/22/%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%8B%E0%A4%B9/

[166] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ।

घर पर अन्न भण्डारण की कोठी, अन्न पीसने की चक्की, कूटने का मूसल, रसोई के बर्त्तन, चारपाई, ओढ़ने-बिछाने-पहनने के वस्त्र, कृषि उपकरण, कुल्हाड़ी, मछली पकड़ने का जाल आदि होते हैं।

प्रत्येक प्रातः महिलाएँ घर की सफाई करती हैं। इस जनजाति के लोग प्रतिदिन बबूल, हर्रा, करंज, नीम आदि से दातौन और तदुपरांत स्नान करते हैं। पुरूष बाल कटे हुए रखते हैं। केश चिकनी मिट्टी या साबुन से धो तेल लगा कंघी करते हैं।

महिलाएँ चोटी और जूड़ा बनाती हैं। वे हस्तशिल्प से गुदना गुदवाती हैं। आभूषण पहनती हैं। बिछिया, पैरपट्टी (पैर), करधन, ऐंठी (हाथ), पहुँची (बाहु), चेन, हमेल (गला), खिनवा (कान), झुमका, फूली (नाक) आदि गिलट के आभूषण पहने जाते हैं।

नगेसिया पुरूष पंछा, धोती, कुरता और बंडी तथा महिलाएँ लुगड़ा और पोलका पहनती हैं।

यह लोग सामान्यतः चावल, कोदो और गोन्दली का भात खाते हैं। इसके साथ उड़द, तुअर या कुल्थी दाल या मौसमी शाक भी खाते हैं। माँसाहारी हैं और कभी-कभी अंडा, मुर्गा, मछली, बकरा आदि खाते हैं। त्योहार या आयोजन आदि के अवसर पर चावल से निर्मित हंड़िया शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी भी पीते हैं। यदि यह लोग पशु पालते थे, तो उसका उपयोग खाने में ही करते थे, न कि दूध आदि हेतु।[167]

इनका आर्थिक जीवन कृषि, वन उपज संग्रह और मजदूरी पर निर्भर है। यह लोग कोदो, गोन्दली, धान, मक्का, उड़द, मूँग, तिल, कुल्थी, तुअर आदि बोते हैं। वनों से महुआ, तेन्दूपत्ता, हर्रा, लाख, धवई फूल, रेशम, कोसा आदि एकत्र कर बेचते हैं। वर्षा में मछली पकड़ते हैं। पहले शिकार भी करते थे। अब मजदूरी भी करते हैं।

नगेसिया जनजाति भी पितृवंशीय, पितृसत्तात्मक और पितृनिवास स्थानिय परम्परा को मानने वाली जनजाति है। इनमें तीन- सिन्दुरिया, तेलहा और धुरिया- उपजातियाँ हैं। कहा जाता है कि, पहले इनमें उपजातियाँ नहीं थीं। जब एक पूर्वज द्वारा तीन विवाहों में एक सिन्दूर लगा कर, दूसरा मात्र सगाई कर माँग में तेल लगा और तृतीय विवाह न कर मात्र धूल टीका लगा अपना बना लेने के कारण इनसे उत्पन्न संतानों को क्रमशः यह संज्ञाएँ मिलीं। स्पष्ट है कि इनकी उच्चता और निम्नता का कारण और क्रम भी यह ही है। यह उपजातियाँ बर्हिविवाही गोत्रों में बँटी हैं। गोत्र टोटम आधारित हैं।

शिशु जन्म को ईश कृपा माना जाता है। गर्भावस्था में संस्कार नहीं हैं। प्रसव स्थानिय दाई की सहायता से घर पर कराते हैं। नाल ब्लेड से काट घर पर गाड़ते हैं। प्रसूता को कुल्थी, छीन्द जड़, सोंठ, गुड़, पेपर, सरई छाल आदि से बना काढ़ा पिलाते हैं। छठी पर शुद्धि करते हैं। जच्चा-बच्चा को नहला सूर्य और अराध्य के दर्शन करा रिश्तेदारों को भोज देते हैं। इसमें बीड़ी, तम्बाखू और चावल से बनी शराब हड़िया पिलाते हैं।

नगेसिया जनजाति में लड़कों की विवाह आयु समान्यतः 14-18 और लड़कियों की 12-16 है। अब शीघ्र विवाह का आग्रह कम हुआ है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष द्वारा दिया जाता है। वर पिता वधू पिता को अन्न, दाल, तेल, गुड़ और शगुन के रूपए देता है। इसे बुन्दा कहा जाता है। विवाह के चार चरण हैं- मंगनी,

---

[167] आर.एस.शर्मा-प्राचीन भारत में भौतिक प्रगति एवं सामाजिक संरचनाएँ,पृ.169

(http://books.google.co.in/books?id=1E_1dsjUuAkC&pg=PA169&lpg=PA169&dq=%E0%A4%A8%E0%A4%97%E0%A5%87%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE+%E0%A4%9C%E0%A4%A8%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF&source=bl&ots=oKxRRr4vUn&sig=W5taNErx_YN8nWMEVjVIJOKGnw&hl=en&ei=_5UpTM7RKsaHcaGY1dQC&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=2&ved=0CBcQ6AEwAQ#v=onepage&q=%E0%A4%A8%E0%A4%97%E0%A5%87%E0%A4%B8%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE%20%E0%A4%9C%E0%A4%A8%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%A4%E0%A4%BF&f=false)

फलदान, विवाह और गौना। विवाह जाति प्रमुख या किसी बुजुर्ग द्वारा सम्पन्न कराया जाता है। इनमें घुसपैठ, सहपलायन, विनिमय, सेवा विवाह आदि को मान्यता प्राप्त है।

शव जलाते हैं और अस्थियाँ नदी में प्रवाहित करते हैं। तीसरे दिन देवार पूर्वज पूजा कराता है। इस जनजाति में मंत्र, जादू आदि के ज़ानकार और पूजा कराने वाला देवार कहलाता है। बारहवें दिन भोज देते हैं। पितृ पक्ष के दिनों में मृतक के नाम पानी से तर्पण कर दाल-भात निकालते हैं।

इनमें भी जाति पंचायत है। इसका प्रमुख मुखिया कहलाता है। इसमें अनैतिक सम्बन्ध, विवाह, तलाक आदि के प्रकरण आते हैं। जाति के अराध्यों की पूजा व्यवस्था भी इसी के द्वारा की जाती है।

इस जनजाति के अराध्य हैं- गौरैया देव, शिकारी देव, सदना माता, धरती माता, अन्न कुंवरी, सभी हिन्दू देवी-देवता, सूरज, चाँद, नदी, पहाड़, वृक्ष, वन पशु, नाग आदि। भूत-प्रेत, जादू-टोना आदि मानते हैं। पूजा में बकरा या मुर्गा बलि करते हैं। देवार यह कार्य कराता है।

नगेसिया लोग दीपावली, फागुन, सरहुल, नवाखानी, पितर, पोला, दशहरा आदि त्योहार मनाते हैं। सरहुल (सरना पूजा), करमा, अखरा, बिहाव आदि न्रत्य करते हैं। सरहुल, करमा, बिहाव, भजन आदि लोक गीत गाते हैं।

इनमें शिक्षा अल्प है। विकास आदि के कारण रहन-सहन, वस्त्र विन्यास, लोक कला, खान-पान आदि में बदलाव है।

अर्थाभाव मुख्य समस्या है। अन्ध विश्वास और कुपोषण तो है ही।

21. उराँव (कुड़ुख, धाँगर):-

उराँव जनजाति छत्तीसगढ़ की प्रमुख जनजाति है। अंग्रेजी में इसे Uraon, Oraon, Oran या Oram लिखा जाता है। इन्हें उनकी बोली कुड़ुख के आधार पर कुड़ुख भी कहते हैं। स्थानिय लोग इन्हें धाँगर पुकारते हैं। यह लोग मध्य और पूर्वी भारत सहित बांग्लादेश में भी हैं। भारत में इनका अधिक संकेन्द्रण छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल आदि प्राँतों में है। यह लोग नेपाल और भूटान में भी हैं। भारत के महानगरों सहित यह लोग यूरोप और अमेरिका के नगरों में भी हैं। कई लोग तो इसाई धर्म के ऊँचे पदों पर भी हैं। शिक्षित और नौकरी पेशा हो जाने के कारण नगरों में भी बसे हैं। यह लोग छोटा (चुटिया) नागपुर के उराँव कहलाते हैं। इस पठार का विस्तार सरगुजा सम्भाग तक है। छत्तीसगढ़ में 2001 में इनकी जनसंख्या 645,950 थी, जो अधिकतर सरगुजा सम्भाग में थी। रायपुर राजधानी में भी, यह लोग, बसे हैं।

अंग्रेज शासन के समय इस जनजाति के ताना भगत और बिष्नु भगत समूहों ने क्रमशः ताना संत तुरिया भगत और भिक्कु भगत के नेतृत्व में उपनिवेशवादियों के चौकीदारी कर के विरूद्ध विद्रोह किया था।[168]

उराँव जनजाति की उत्तपति के विषय में शोध तो हुए हैं, पर अभी तक मत की स्पष्ट स्थापना नहीं हो पाई है। अधिकाँश का मत है कि, उत्तर-पश्चिम भारत (महाराष्ट्र-गुजरात) में आर्य दबाव के कारण, उराँव लोग, पहले पश्चिम भारत की ओर आए और वहाँ से अन्य क्षेत्रों की ओर फैले। इसी के आधार पर कहा गया कि, यह लोग कोंकड़ क्षेत्र से फैले और इस कारण से कुड़ुख कहलाए। मानव शास्त्री अध्ययनों में अभी इसकी सुस्पष्ट पुष्टि होना शेष है। यह स्थापित है कि, उराँव कई विस्थापनों और अप्रवजनों से गुजरे। यह माना जाता है कि, इन प्रवजनों के दौरान वे भोजपुर या शाहबाद में रहे और यहाँ से भी आर्य दबाव में ही पलायन को बाध्य हुए। इन्होंने कई पीढ़ियों तक पटना (बिहार) के आसपास रोहतास और अन्य पहाड़ियों पर निवास

[168] Indian Council of Historical Research, The Indian historical review, P. 282

किया और यहाँ से मुस्लिमों द्वारा हटाए गए।[169] रोहतास से पलायन दो दिशाओं में हुआ। एक दल गंगा तीर से राजमहल पहाड़ियों की ओर गया और दूसरा कोयल तीर से पलामू की ओर। पलामू से उत्तर-पूर्व राँची की ओर गए। छोटा (चुटिया) नागपुर से ही सरगुजा, जशपुर, कोरिया आदि जिलों में आए।

कुछ विद्वान उराँव शब्द को मुण्डारी भाषा का मानते हैं। यह माना जाता है कि, मुण्ड़ा लोगों ने उन्हें इस संज्ञा से तब पुकारा, जब वे छोटा (चुटिया) नागपुर में आ बसे। कुछ विद्वान इसे कुड़ुख भाषा का शब्द मानते हैं, जो एक टोटम से बना। धाँगर शब्द का अर्थ दो युवा लिंगों से लगाया जाता है।[170]

उराँव जनजाति की कथा में कहा जाता है कि, तुर्क मुस्लिम रोहताशगढ़ जीतना चाहते थे, परंतु योद्धा कुड़ुख लोगों से लड़ने से बचला चाहते थे। अतः उनकी कमजोरी जानने को महिला जासूस नियुक्त की गई। उसने यह तथ्य उजागर किया कि, उराँव लोग करमा और सरहुल उत्सव के दिन चावल से बनी हड़िया शराब पीकर धुत रहते हैं। अतः उसी समय आक्रमण किया गया। पुरूष धुत्त थे। अतः महिलाओं ने पुरूष परिधान धारण कर मोर्चा सम्हाला और दुश्मनों को खदेड़ दिया। ऐसा बारह बार हुआ। इस कारण उराँव लोगों में जनीशिखर त्योहार मानाने की परम्परा पड़ी। इसमें महिलाएँ शिकार करती हैं। यह प्रति बरहवें वर्ष होता है। तेरहवें वर्ष तुर्कों ने विजय पाई। उराँव निकाल बाहर किए गए। तब वे छोटा (चुटिया) नागपुर क्षेत्र में आए।[171]

उराँव जनजाति भी प्रोटो-आस्ट्रेलाइड मूल की है। इनकी ऊँचाई कम, नाक चपटी, रंग काला, बाल काले और घुंघराले होते हैं। उराँव, संथाल और माल पहाड़ी लोग एक ही मूल समूह के हैं। उराँव और मुण्ड़ा लोग सन्युक्त रूप से नागवंशी राजा चुने जाने की परम्परा छोटा (चुटिया) नागपुर क्षेत्र में रही। सम्भवतः 64 A.D. के समय राजा भू स्वामी नहीं था और उसे उपज में भाग दिया जाता था।[172] यह सभी आस्ट्रिक समूह की भाषाएँ बोलते हैं। उराँव लोगों की भाषा को द्रविड़ समूह की भाषा माना जाता रहा है। हालाँकि अब इसका विरोध भी है। यह भाषा ब्रहुई और पहाड़िया मल्टो के निकट की मानी जाती है। प्रोटो-आस्ट्रेलाइड परिवार की कुछ जातियों ने अपने से अधिक उन्नत मेडिटेरियन (भू-मध्य सागरीय) परिवार की द्रविड़-जातियों के सम्पर्क में आने से अपनी मौलिक भाषाओं को भूलकर द्रविड़ भाषाओं को ही अपना लिया है, जिसमें छोटा (चुटिया) नागपुर के उराँव प्रमुख हैं। इन बातों के कारण विद्वान बहुत दिनों तक जातियों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में भ्रम में पड़े रहे, क्योंकि तब तक भाषायें ही वर्गीकरण का सबसे मुख्य आधार थीं। किन्तु, जब मानव शास्त्रियों ने वैज्ञानिक मापदण्ड अपनाए और नई वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाया तब उपर्युक्त भ्रम में पड़कर उराँव आदि जातियों को द्रविड़ियन मानना कम हुआ। एक ही प्रोटो-आस्ट्रेलाइड जातियों को दो समझकर उनका *कोलेरियन* और *द्रविड़ियन* परिवारों में वर्गीकरण किया गया। शरत चन्द्र राय का भी यह ही मत था, किन्तु इससे भी आश्चर्यजनक भ्रम *इन्साइक्लोपीडिया* का था, जिसने, पता नहीं, किस आधार पर स्वयं मुण्डाओं को द्रविड़ परिवार का माना है। उन्होंने लिखा है : "मुण्डा = छोटा नागपुर अंचल में रहने वाली द्रविड़-असभ्य जाति विशेष।" यह भ्रमात्मक प्रचार माना गया। डॉक्टर गुहा ने 'रेस एलिमेण्ट्स इन दी इण्डियन पॉपुलेशन' में इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त की स्थापना करके कि, जब कोई जाति अपने से अपेक्षाकृत अधिक सभ्य जाति के सम्पर्क में बहुत दिनों तक रहती है, तब वह प्राय: अपनी भाषा को भूलकर सभ्य जाति की भाषा अपना लेती है। इस भ्रम का निराकरण कर दिया है। दुनियाँ की बहुत सी जातियों में यह बात हुई है। उराँव और मुण्डा स्वयं इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। मुण्डा क्षेत्र में जो दो-

---

[169] E.T.Dalton -The Oraons, Descriptive Ethnology of Bengal, 1872. Section 1, P. 215

[170] http://en.wikipedia.org/wiki/Oraon

[171] एम.एल.वर्मा-उराँव जनजाति

[172] http://jharkhandi.com/oraon.aspx

चार घर उराँव जहाँ-तहाँ आ बसे हैं, वे मुण्डा भाषा और उराँव क्षेत्र के मुण्डा-उराँव-भाषा बोलते हैं, विशेषकर झारखण्ड में।[173]

आस्ट्रिक परिवार की जो भाषायें भारत की जनजातियों द्वारा बोली जाती हैं, उनका नाम ग्रियर्सन ने *कोलेरियन* (या कोलभाषा-परिवार) दिया है। ग्रियर्सन ने इन नाम को प्रचारित करना चाहा, परन्तु फ्रेडरिक मिलर ने इन भाषाओं को *मुण्डा-भाषाओं* की संज्ञा दी। इन मुण्डा भाषाओं का प्रचार भारत की आदिम जातियों में पहले से था और इन्हीं जातियों के द्वारा भारत में पाषाण युग की सभ्यता का निर्माण हुआ था। इस प्रकार "मुण्डा' आस्ट्रिक-परिवार की सारी भारतीय भाषाओं का नाम होने के साथ ही अपनी एक स्वतन्त्र उपजाति और उसकी भाषा का नाम भी है।[174]

कुड़ुख भाषा का सम्मेलन अक्टूबर’2006 में राँची (झारखण्ड़) में और 10 अक्टूबर’2009 को रायपुर (छत्तीसगढ़) में हुआ। अब इस भाषा की पत्रिका भी निकलती है।

इस जनजाति में अंतर्राष्ट्रिय स्तर के खिलाड़ी, परमवीर चक्र विजेता, आर्च विशप, शिक्षाविद्, प्रशासक, राजनीतिज्ञ आदि भी हुए।

इस जनजाति के लोग मुण्ड़ा, नगेसिया, गोंड़, कंवर, खैरवार आदि जनजातियों के साथ ग्रामों में निवास करते हैं। इस जनजाति में शिक्षा प्राप्त कर आगे बढ़ जाने वाले उराँव तो नगरों में रहने लगे और पूर्णतः कथित मुख्य धारा में सम्मलित हो गए। पर अधिकाँश उराँव अभी भी उस स्थिति से दूर हैं। इनके घर मिट्टी के बने होते हैं। जिस पर खपरैल और लकड़ी की छत होती है। घर की देवार की पुताई हिन्दू उराँव काली मिट्टी से और इसाई उराँव चूने से करते हैं। फर्श प्रतिदिन गाय के गोबर से लीपते हैं। घर में दो-तीन कक्ष होते हैं। घर के चारो ओर परछी (बरामदा) होती है। मुख्य कक्ष अपेक्षाकृत्त बड़ा होता है, जिसमें अराध्य का स्थान होता है तथा अन्न रखने की कोठी भी यहीं रखी जाती है। रसोई परछी में होती है।

इनके घरों में सामान्यतः मिट्टी, एल्युमीनियम, काँसे और स्टील के बर्त्तन; चुल्हा, ढ़ेंकी, मूसल, चक्की, ओढ़ने-बिछने-पहनने के वस्त्र, वाद्य यंत्र विशेष कर मांदल (मिट्टी से बना मृदंग), कृषि उपकरण, मछली पकड़ने का जाल आदि होते हैं।

उराँव लोग प्रतिदिन दातौन कर स्नान करते हैं। पुरूष केश छोटे रखते हैं। महिलाएँ लम्बे बाल रखती हैं, जिसकी वेणी या जूड़ा बनाती हैं। केश धोने हेतु काली मिट्टी या साबुन का उपयोग करते हैं।

पुरूष छोटी धोती और अंगरखा तथा महिलाएँ लुगड़ा और पोलका पहनती हैं। इसाई उराँव पुरूष पेंट, शर्ट और महिलाएँ साड़ी, पेटीकोट, ब्लाऊज, अंतःवस्त्र, सलवार सूट आदि पहनते हैं।

सामान्यतः इनका भोजन चावल, गोंदली और कोदो का भात और पेज है। इसके साथ उड़द, मूँग, कुल्थी, अरहर आदि की दाला या मौसमी सब्ज़ी खाते हैं। माँसाहारी हैं। मुर्गा, मछली, बकरा, खरगोश, सुअर, हिरण, चूहा आदि का माँस खाते हैं। एक स्रोत[175] में यह उल्लेख है कि, सरगुजा में खेतो से चूहों को, उराँव जनजाति के लोग, मारकर खाते रहे हैं। चूहे खेतो के मेढ़ में बिल बनाकर रहते हैं। इसके लिए मेढों को

---

[173] पूनम मिश्र- मुण्डा भाष:एक परिचय (http://tdil.mit.gov.in/CoilNet/IGNCA/jk017.htm)

[174] वही

[175] http://edharhai.blogspot.com/2010/02/blog-post_7594.html

खोदकर, चूहों को निकालते हैं और जमीन पर पटक-पटक कर मारते हैं।[176] आयोजन और उत्सव आदि में चावल से बनी शराब हंड़िया पीते हैं। पुरूष बीड़ी पीते हैं। इन्हे खाने-पीने का खूब शौक है।[177]

उराँव जनजाति का आर्थिक क्रियाकलाप मजदूरी और वनोपज संग्रह है। वनों से माहुल पत्ता, महुआ, गुल्ली, साल बीज आदि एकत्र कर विक्रय करते हैं। कृषि पहाड़ी ढलानों पर है। वे कोदो, गोन्दली, धान, उड़द, मूँग, कुल्थी, तुअर आदि बोते हैं। अब निचली भूमि पर भी खेती करने लगे हैं। वर्षा काल में स्वयं के उपयोग हेतु मत्सय आखेट करते हैं। पढ़े लिखे लोग विभिन्न नौकरियाँ करते हैं। शासकीय नौकरी और चाय बगानों की नौकरियों में भी हैं।

चित्र 29 - सरगुजा में भोज्य चूहों सहित उराँव 30 - नृत्यरत उराँव

स्रोत्त- http://edharhai.blogspot.com/2010/02/blog-post_7594.html और tribes-of-india.blogspot.com

यह जनजाति भी कई उपजातियों में बँटी है। यथा- उराँव, धाँगड़, धनका, कोड़ा आदि। धर्म के आधार पर संसारी अर्थात हिन्दू उराँव और इसाई उराँव में विभक्त हैं। उपजातियाँ बर्हिविवाही गोत्रों में विभक्त हैं। अधिकाँश उराँव लोग अपने नाम के साथ अपना गोत्र भी लिखते हैं। ताना भगत या सरना धर्म को मानने वाले उराँव गोत्र के स्थान पर भगत लिखते हैं। कई लोग गोत्र के स्थान पर उराँव ही लिखते हैं। सभी गोत्र टोटम आधारित हैं। यह हैं- किरकिटा, खलखो, खाखा, खेस्स, तिर्की, टोप्पो, तिग्गा, कुजुर, मिंज, एक्का, बरला, बारवा, इन्दवार या इन्द, बेक, लकड़ा, धनवार, भगवार, किंड़ो, कच्छप, किस्पोटा, कांड़ा, कोकरो, गद्दि, खोया, चर्मकों, ददेल, निया, पन्ना, बंकुला, बासा, बन्दो, भगत, बिंको, मुंजनी, रूंड़ा, लिंड़ा, सोन, रावन आदि। इसाई धर्म अपनाने वाले कुछ उराँव टोप्पो के स्थान पर मार्जी लिखते हैं। उड़ीसा में कुछ लोग मूड़ी और रथ भी लिखने लगे हैं।

प्रसव घर पर सयानी (बुजुर्ग) महिला की देखरेख में कराया जाता है। नाल जच्चा के मैके से प्रदत्त छुरी को आग से तपाने के उपराँत से काट घर पर गाड़ते हैं। प्रसूता को सोंठ, अजवाइन, गुड़, घी, नारियल आदि से बना लड्डू खिलाते हैं। छठी पर शुद्धि करते हैं। जच्चा-बच्चा को स्नान करा नवीन वस्त्र पहनाते हैं। रिश्तेदारों से आशिर्वाद लेते हैं। उन्हें हंड़िया पिलाते हैं।

व्यस्क विवाह है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष द्वारा किया जाता है और सुक भराई में शराब, बकरा, चावल, दाल, शाक आदि दिया जाता है। इसमें नगद राशि सम्मलित नहीं है। विवाह रस्में जाति के बुजुर्ग व्यक्ति की देखरेख में सम्पन्न होती हैं। इसाई उराँव को विवाह के पूर्व 3 से 7 दिवस तक गिरजा घर में शिक्षा दी जाती है। इनका विवाह कभी जाति प्रथा अनुसार तो कभी चर्च में सम्पन्न होता है। इनमें भी सहपलायन, ढुकु (घुसपैठ), विनिमय, घरजमाई प्रथा, विधवा और परित्यक्ता पुनर्विवाह को सामाजिक मान्यता है।

---

[176] http://edharhai.blogspot.com/2010/02/blog-post_7594.html

[177] रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड-झनकार,पृ.78

शव गाड़ते हैं। सम्पन्न सनसारी अर्थात हिन्दू उराँव जलाते भी हैं। मृत्यु के तीसरे दिवस तीही नहवन हेतु रिश्तेदार एकत्र होते हैं। इसी दिन से शुद्धि मानी जाती है। तीन माह पश्चात गमी मानाते हैं। अब भोज दिया जाता है। इसाई उराँव की मृत्यु पर पादरी (इसाई पुजारी) को बुलाते हैं। वह अंतमलन संस्कार करता है, जिसमें ज्ञान, धर्म आदि का उपदेश दे पापों का प्रायश्चित करा आत्मा की शाँति हेतु प्रार्थना कराई जाती है।

उराँव जीवन चक्र का एक स्पष्ट वर्णन भी रघुवीर प्रसाद द्वारा उल्लेखित हुआ है।[178] उनके शब्दों में यह है- उपज काट कर अनाज घर में आने और अपने उपभोग हेतु सुरक्षित करने के उपराँत शेष को बेच देते हैं। इसके तत्काल उपराँत चैन और संतुष्टि के दिन प्रारम्भ होते हैं। पहुनाई, विवाह, शराब, मनोरंजन प्रमुख कार्य हो जाता है। पूर्व में जो मुर्दे गाड़े गए होते हैं, धान कटाई और गाही के पश्चात एक दिन निश्चित किया जाता है, अविवाहित मुर्दों को छोड़ शेष शवों को उखाड़ कर उनकी कब्र के पास उन्हें जलाते हैं। बची हुई हड्डियों में औरतें तेल और हल्दी लगाती हैं और मृतक की मृण मूर्ति बना, हड्डियों समेत टोकरियों में रखकर नदी या तालाब में सिरा देती हैं। इसके पश्चता सभी लोग घर लौट आते हैं। यहाँ एक भोज होता है और भोज के उपराँत रात भर नाचते-गाते हैं। इस नाच को हड़बोरी कहते हैं। इस प्रथा के होने के उपराँत ही विवाह प्रारम्भ किए जा सकते हैं। उराँव लोग प्रसन्नचित रहते हैं और मदिरा प्रेमी हैं। अगले कई माहों तक गाँवों में नाचना-गाना ही होता है और ढ़ोल की ही आवाज़ सुनाई देती है। विवाह जवान होने पर होता है। समान्यतः माँ-बाप ही विवाह पक्के करते हैं। लड़के-लड़की अपना विवाह 'घुमकुरिया' में पक्के करते हैं। छोटे घरों के कारण गाँव में एक अलग मकान होता है। इसमें सभी अविवाहित लड़के सोते हैं। इस मकान को घुमकुरिया कहते हैं। लड़कियाँ भी अपने माँ-बाप के मकान में नहीं सोतीं और गाँव की विधवाओं के साथ सोने भेज दी जाती हैं। वहाँ से वे भी घुमकुरिया पहुँच जाती हैं। यहाँ नाच-गाना होता रहता है। विवाह पक्का हो जाने पर लड़का बारात ले कर जाता है। बाराती बनावटी अस्त्र-शस्त्र से सजे होते हैं। विशेषकर तीर-कमान से। लड़की वाले भी वैसी ही सजधज के साथ लड़की समेत बाहर आते हैं। लड़का और लड़की अपने-अपने किसी साथी की गोद में चढ़े रहते हैं। फिर दोनों भागों में बनावटी लड़ाई होती है। इसके बाद सब मिल कर गाँव जाते हैं आउर रात भर शराब पिलाई जाती है, नाच-गाना होता है। दूसरे दिन वर-वधू को तेल, हल्दी लगा कर मण्डप के नीचे लाते हैं। वहाँ हल का एक जुआ, कुछ घर छाने की घाँस और एक पत्थर की सिल रखी हुई होती है। वर-वधु उस सिल पर खड़े होते हैं, वधू के पीछे वर खड़ा होता है। फिर दोनों एक कपड़े में लपेट दिए जाते हैं। सिर्फ़ उनके पैर और सिर खुले रहते हैं। एक कटोरे में बहुत सा सिन्दूर लाकर वर को दिया जाता है, जो उससे तीन रेखा वधू के माथे पर बनाता है। वधू भी इसी प्रकार तीन रेखाएँ वर के माथे पर बानाती है, पर उसकी पीठ वर की तरफ होने के कारण वह माथे को नहीं देख सकती, इसलिए वर के मुहँ पर कहीं भी सिन्दूर लग जाता है। उपस्थित लोग इस पर हंसते हैं और उसी वक्त मण्ड़प के ऊपर से पानी से भरी हुई हंड़िया किसी यत्न से वर-वधू पर ढ़ुलका दी जाती है और वे पानी से बिल्कुल भीग जाते हैं। उपस्थित औरते जैसे ही 'विवाह हो गया, विवाह हो गया' कह कर चिल्लाती हैं और वर-वधू एक कमरे में भेज दिए जाते हैं, जहाँ वे अपने कपड़े बदलते हैं। इसके बाद खा-पीना होने पर वर-वधू सहित बारात रवाना होती है। विवाह, मरण इत्यादि प्रथाओं में क्रमशः परिवर्त्तन होता जा रहा है। जो लोग इसाई गये हैं, उन्होंने इसाईयों की प्रथा स्थापित कर ली है। बाकी दूसरे लोग हिन्दुओं की प्रथा ग्रहण करते जाते हैं। उराँवों में सबसे बड़ी कसम थोड़ा सा गोबर, धान और मिट्टी सिर पर रखना है। एँसी हालत में अगर कोई झूठ बोलता है, तो उन लोगों के विचार से, उसका सत्यानाश हो जाना चाहिए। गाँवों यदि किसी के यहाँ चोरी हो गई तो एक कुम्हड़े का तुम्बा लेकर घर-घर से उसमें थोड़ा-थोड़ा पानी डलवाते हैं, फिर उस पानी से भरे हुए तुम्बे को और एक काली मुर्गी को गाँव के लोहार के पास कुछ चावल उस मुर्गी के सामने डालते हैं। जैसे ही मुर्गी चावल चुनना शुरू करती है, वैसे ही उसका गला काटकर उसका खून तुम्बे के पानी में ड़ालते हैं।

[178] रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड झनकार,पृ.78 से 81

फिर वह सब पानी लोहार की धौंकनी में भरते हैं। जिससे धौंकनी फूल जाती है। तब खाली तुम्बे को लेकर फिर गर-घर जाते हैं और इस वक्त, जिसने चोरी की हो, माल दे देता है। उनका विश्वास है कि, अगर पहले पानी देने वालों में से कोई चोर है तो उसका पेट लोहार की धौंकनी के समान फूलकर फट जाएगा।

उराँव जनजाति में भी पारम्परिक जाति पंचायत होती है। ग्राम की जाति पंचायत का प्रमुख महतो कहलाता है। यह जाति पंचायत जाति समस्या, वैवाहिक विवाद, अनैतिक सम्बन्ध, सम्पति बँटवारा आदि का निपटारा करती करती है। साथ ही जाति के लिए ग्राम की सरना पूजा, करमा पूजा आदि की भी व्यवस्था करती है। कई ग्रामों की जाति पंचायतों को मिला कर परहा पंचायत बनाते हैं। इसका प्रमुख परहा राजा कहलाता है और इसमें अन्य पदाधिकारी हैं- दीवान, कोटवार, पनेरी, पनभरवा, मुकतवा आदि। इसमें ग्राम की जाति पंचायत के अनसुलझे प्रकरण निराकृत्त किए जाते हैं।[179]

उराँव भूत-प्रेत पर विश्वास करते हैं। विपत्ति और रोग को भूत और डायन की करतूत माना जाता है। बैगा से निदान कराते हैं। बकरे या मुर्गी की बलि देते हैं। जादू-टोना पर विश्वास है। पहले, गाँव की किसी गरीब बुढ़िया पर जादू करने का शक कर उसे डायन करार देते थे। उससे भी पहले, कथित डायन को राँची की सीमा पर स्थित एक पहाड़ पर ले जाकर नीचे पथरीली खाई में धकेल कर मार डालते थे। इस पहाड़ को डायन थेरहा पहाड़ कहते थे।[180]

उराँव जनजाति का धर्म सरना है। हिन्दू धर्म की तरह पालन करने वाले कई समूह भी हैं। यथा- भगतों के कई समूह, विष्णु भगत, बिंछिदान भगत, कर्म भगत और ताना भगत। कुछ उराँव सरना धर्म का पालन इसाई तरीकों से भी करते हैं। विष्णु और बिंछंदान भगत विष्णु पूजक, कमरू और ताना भगत शिव और दुर्गा पूजक हैं। उराँवों के प्रमुख अराध्य धर्मेश अर्थात सूर्य हैं। वे धर्मेश को बड़ा देव भी कहते हैं। उराँव प्राकृतिक पूजक हैं। उनके गोत्र भी प्राकृतिक टोटम प्रणाली से आए। इनमें जाति प्रथा नहीं है। ग्राम देवी-देवताओं में अन्धेरी पाट, चण्ड़ी, गाँव देवता, पाट राजा आदि हैं। नवरात्रि के समय जशपुर नगर की देवी को बकरा भेंट करते हैं। त्योहारों में सुअर, बकरा, मुर्गा आदि की बलि देते हैं। मंत्र तंत्र का जानकार और पुजारी पाहन कहलाता है। उसे पहनी खेत के नाम से भूमि दी जाती है।

भगत समूह की स्थापना जात्रा और तुरिया भगत द्वारा की गई।

ताना भगतों ने उपनिवेशवादी करों का विरोध किया। वे गाँधी जी के कई आन्दोलनों में सम्मलित हुए। पूरे भारत में सम्भवतः ताना भगत ही ऐसा समुदाय है, जिसके सदस्यों का दिन प्रारम्भ होता है, तिरंगे की पूजा के साथ। 1914 में 24 वर्षीय जतरा ताना भगत के नेतृत्व में उराँव जनजाति के लोगों ने संकल्प लिया कि, वे ज़मींदारों के खेत में मज़दूरी नहीं करेंगे और अंग्रेज़ी हुकूमत को लगान नहीं देंगे। इस पहल ने आगे चलकर पंथ का रूप तब ले लिया। जब इस समुदाय के लोगों का संपर्क महात्मा गाँधी के साथ हुआ तब अहिंसा और सत्याग्रह के आह्वान पर ताना भगतों ने सादी ज़िंदगी जीने का संकल्प लिया जिस पर वो आज भी क़ायम हैं। वे जिस तिरंगे को पूजते हैं वो पुरानी भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का चरखे वाला झंडा है। इस झंडे को वो आज़ादी की लड़ाई का प्रतीक मानते हैं। इसलिए उनकी स्वभाविक राजनीतिक आस्था कांग्रेस पार्टी के साथ भी रही है। स्वतंत्रता संग्राम में असहयोग आंदोलन के दौरान गाँधी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने और स्वतंत्रता आन्दोलन का साथ देने के कारण उन्होंने लगान देनी बन्द कर दी। अंग्रेजी हुकूमत ने लगान नहीं दिए जाने के कारण उनकी ज़मीनों को नीलाम कर दिया। ताना भगतों में पहुत सारे ऐसे परिवार हैं जिनकी ज़मीनें ब्रितानी हुकूमत ने नीलाम कर ली। आज भी वे इन छीनी भूमियों की वापसी की बाट जोह रहे हैं। मगर सरकारी आंकड़े बताते हैं कि, ताना भगतों की लगभग 2,486 एकड़ ज़मीन आज

[179] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ।

[180] रघुवीर प्रसाद-झारखण्ड झनकार,पृ.77-78

भी उन्हें वापस नहीं मिली और इस संबंध में अभी भी 703 मामले झारखंड की विभिन्न अदालतों में चल रहे हैं। ताना भगतों का मानना है कि, उनके पूर्वजों ने अपने बच्चों का नाम मिशन के स्कूलों से इस लिए कटवा दिया था कि, वो अंग्रेजों के एजेंट थे और सरकारी स्कूलों से इसलिए कटवा दिया गया क्योंकि वो अंग्रेज़ हुकूमत के अधीन थे। अतः वे लोग 1914 से लेकर 1947 तक, देश की आज़ादी की ख़ातिर, स्कूल नहीं गए और इस वजह से पूरा समूह बुरी तरह से पिछड़ गया।[181]

यह माना जाता है कि, बंगाल के कुख्यात अकालों से उत्पन्न भुखमरी में, अन्न के बदले धर्म परिवर्त्तन कराने का कार्य, इसाई मिशनरियों ने, इस क्षेत्र में सर्वाधिक उराँव लोगों के साथ ही किया। वे उन्हें अनाज ही तब देते थे, जब वे इस धर्म को अपना लें।[182] आज यह तथ्य अन्य सुविधाओं यथा- शिक्षा, उपचार आदि के एवज में है।

जशपुर क्षेत्र के आदिवासियों ने लगभग एक सौ वर्ष पूर्व बेल्जियम से आये मिशनरियों से इसाई बपतिस्मा संस्कार पाया था। सन 1951 में राँची धर्मप्राँत से अलग कर रायगढ़-अम्बिकापुर धर्मप्राँत बनाया गया था। 1977 में अम्बिकापुर और सन 2006 में जशपुर धर्मप्राँत की रचना हुई थी। रायगढ़ के धर्माध्यक्ष विक्टर किंडो को स्थानांतरित कर जशपुर धर्मप्राँत का पहला धर्माध्यक्ष बनाया गया था। जशपुर धर्मप्राँत का मुख्यालय कुनकुरी में है, जहाँ एशिया का सबसे बड़ा गिरजा घर (चर्च) बनाया गया है। छत्तीसगढ़ राज्य में जशपुर धर्मप्राँत में काथलिकों की संख्या सर्वाधिक है। लगभग एक लाख अठासी हजार कैथलिकों में अधिकांश उराँव जनजाति के हैं।[183]

उराँव जनजाति में भी लोक गीत और लोक नृत्य हैं। करमा, सरहुल, विवाह आदि नृत्य हैं और करमा, सरहुल, फागुन, सोहराई, भजन आदि गीत हैं। वे परम्परा और इतिहास को भी नृत्य और गीत में पिरोते हैं।

इनमें शिक्षा का प्रचार हुआ है और वे कई जनजातियों से शिक्षा में आगे हैं। इस कारण विकास की ओर अग्रसर भी हुए हैं। परिवर्त्तन भी अधिक आया है। मकान, वेशभूषा, आभूषण, रहन-सहन, बोल-चाल, विश्वास, परम्परा, लोककला, खान-पान आदि सभी में परिवर्त्तन हुआ है। इसाई धर्म की ओर भी आकृष्ट हुए हैं। धार्मिक आस्था में संशय आ गया है। तत्काल धर्म बदलाव के बावज़ूद पारम्परिक मान्यताएँ और विश्वास वही हैं, वरन अजब घालमेल की ओर प्रवृत्त हो गए हैं। अधुनिक शिक्षित कुड़ुख बोली के प्रति भी उदासीन हैं। पिछड़ी कृषि, पढ़ गए युवक-युवतियों का ग्रामों से पलायन, हंड़िया और शराब सेवन इनकी समस्याओं में है।

उपनिवेश काल में छोटा (चुटिया) नागपुर क्षेत्र और उराँवों से कुछ विद्रोह भी सम्बन्धित रहे। कुछ का उल्लेख यथा स्थान, ऊपर आ भी गया है। कुछ का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। 1767 में छोटा (चुटिया) नागपुर (झारखण्ड) के आदिवासियों ने ब्रिटिश सेना का धनुष-बाण और कुल्हाड़ी से हिंसक विरोध शुरू किया था। 1773 में घाटशिला में भयंकर ब्रिटिश विरोधी संघर्ष शुरू हुआ। आदिवासियों ने स्थायी बन्दोबस्त (1793 ई.) के तहत जमीन की पैमाइश और नई जमाबन्दी का घोर विरोध प्रारम्भ हुआ । तमाड़ विद्रोह (1789-94) आदिवासियों द्वारा चलाया गया था । छोटा (चुटिया) नागपुर के उराँव जनजाति द्वारा

[181] http://www.bbc.co.uk/hindi/regionalnews/story/2006/08/060814_independence_tana.shtml

[182] http://en.wikipedia.org/wiki/Oraon

[183] http://storico.radiovaticana.org/in1/storico/2010-02/354745.html

जमींदारों के शोषण के खिलाफ विद्रोह प्रारम्भ किया गया। चेर विद्रोह 1800 ई. में प्रारम्भ हुआ था। 1776 ई. समयावधि में अंग्रेज पलामू के चेर शासक छत्रपति राय से दुर्ग की माँग की। छत्रपति राय ने दुर्ग समर्पण से इंकार कर दिया। फलतः 1777 ई. में चेर और अंग्रेजों के बीच युद्ध हुआ और दुर्ग पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया। बाद में भूषण सिंह ने चेरों का नेतृत्व कर अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया।1860 में मुण्डा एवं उराँव जनजाति के लोगों ने जमींदरों के शोषण और पुलिस के अत्याचार का विरोध करने के लिए संवैधानिक संघर्ष प्रारम्भ किया। इसे सरदारी लड़ाई कहा जाता है। यह संघर्ष रांची से प्रारम्भ होकर सिंहभूम तक फैल गया और लगभग 30 वर्षों तक चलता रहा। बाद में इसकी असफलता की प्रतिक्रिया में भगीरथ मांझी के नेतृत्व में खरवार आन्दोलन संथालों द्वारा प्रारम्भ किया गया, लेकिन यह प्रभावहीन हो गया।[184]

22. पावः-

पाव जनजाति, छत्तीसगढ़ राज्य की, अल्पसंख्यक जनजाति है। इनकी जनसंख्या 2001 में 1307 थी। राज्य में इनका निवास बिलासपुर जिले में मध्यप्रदेश के अनूपपुर जिले से लगे क्षेत्र में है।

इस जनजाति की उत्पत्ति पर एतिहासिक और आधुनिक वैज्ञानिक शोध नहीं हैं। इनकी किंवदंति के अनुसार यह लोग अपनी उत्पत्ति परेल वंश से मानते हैं, जिसके कारण पाव संज्ञा मिली।[185]

पाव लोग ग्रामों में गोंड़, कंवर आदि जनजातियों के साथ निवास करते हैं। इनके आवास मिट्टी और काष्ठ के बने होते हैं, जिस पर घास-फूस की छत होती है। कुछ ही घरों में खपड़े की छत होती है। इनके आवास तीन-चार कक्षों के होते हैं। घर के साथ आँगन होता है। सोने और रहने के कक्ष को कहवा कहते हैं। फर्श मिट्टी का होता है, जिसे गाय के गोबर से लीपा जाता है। दीवारें की पुताई छुई (श्वेत या पीत मिट्टी) से की जाती है। इनके घरों में घरेलू वस्तुएँ कम ही हैं। यथा- भोजन बनाने और खाने के बर्त्तन (एल्युमीनियम, मिट्टी, काँसा आदि), चारपाई, चक्की, ओढ़ने-बिछाने के कपड़े, मत्स्य आखेट का जाल, कृषि उपकरण, नृत्य-संगीत के वाद्य यंत्र आदि।

बबूल, हर्रा या नीम की 15-20 सेंटीमीटर लम्बी पतली टहनी के दातौन से दाँत साफ करते हैं। दो-तीन दिन के अंतराल से स्नान करते हैं। महिलाएँ केश काली मिट्टी से से साफ करती हैं। शरीर और केश में स्त्री, पुरूष दोनों गुल्ली का तेल लगा कंघी करते हैं। महिलाएँ चोटी बनाकर जूड़ा बनाती हैं।

पुरूष धोती-कुर्ता पहनते हैं। वे सिर पर पगड़ी बाँधते हैं। महिलाएँ पोलकी (एक प्रकार का ब्लाऊज) और लुगड़ा पहनती हैं। वे हस्तशिल्प से गुदना भी गुदवाती हैं।

पाव लोगों का प्रमुख आहार मक्का, कोदो, कुटकी या चावल का पेज है। वे बटरा (मटर), उड़द, मसूर, अरहर, मूँग आदि की दाल; मौसमी सब्जी; कन्द-मूल आदि भी खाते हैं। माँसाहारी हैं। कभी-कभी मछली, बकरा, हिरण, खरगोश आदि खाते हैं। त्योहार, उत्सव आदि अवसरों पर महुए की शराब पीते हैं।

इनका जीवकोपार्जन कृषि, वन उपज संग्रह, मजदूरी और शिकार पर निर्भर है। यह लोग धान, मक्का, ज्वार, कोदो, कुटकी, उड़द, मूँग, अलसी, राई आदो उगाते हैं। पिछड़ी कृषि और असिंचित भूमि होने

[184]http://biharjourney.blog.co.in/2010/06/22/%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%8B%E0%A4%B9/

[185] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ।

से पैदावार कम है। वनों से महुआ, गुल्ली, तेन्दूपत्ता, लाख, चिरौंजी, आँवला, इमली आदि एकत्र कर बेचते हैं। जंगली कन्द-मूल-फल स्वयं के उपयोग हेतु भी लेते हैं। पहले शिकार भी करते थे। अब गौण है। वर्षा काल में स्थानिय जल स्रोतों से स्वयं के उपयोग हेतु मछली पकड़ते हैं।

पाव जनजाति में भी सगोत्रिय विवाह नहीं है। इनमें भी कई गोत्र है। जिनमें सभी का अपना प्रतीक अर्थात टोटम है।

शिशु जन्म ईश देन माना जाता है। प्रसव हेतु स्थानिय दाई को बुलाते हैं। परिवर और रिश्ते की महिलाएँ भी प्रसव समय पर उपस्थित रहती हैं। प्रसव उपराँत दाई नाल को ढ़लेल या चाकू से काटती है। नाल घर पर गाड़ी जाती है। प्रसूता को गुड़, सोंठ, काली मिर्च, अजवाईन, गोन्द आदि के मिश्रण से बना लड्डू खिलाते हैं। छठी पर शुद्दि करते हैं। जच्चा-बच्चा दोनों को स्नान करा सूरज और कुल अराध्य को प्रणाम कराते हैं। रिश्तेदारों को खाना खिलाते हैं। दाई को अनाज, वस्त्र आदि देते हैं।

इस जनजाति में लड़कों की विवाह आयु समान्यतः 17-18 और लड़कियों की 15-16 वर्ष है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष की ओर से रखा जाता है। वधु पक्ष की सहमति मिलने पर वर पिता वधु पिता को अनाज और नगद रूपए देता है। विवाह की रस्म जाति का बुजुर्ग व्यक्ति पूरी कराता है। इस जनजाति में भी सेवा विवाह, विनिमय, पुर्नविवाह, विधवा विवाह आदि को समाजिक मान्यता प्राप्त है।

अधिकांशतः शव गाड़ते हैं। कभी-कभी प्रतिष्ठित व्यक्ति का शव जलाते भी हैं। बच्चों का शव गाड़ा ही जाता है। मृतक संस्कार तृतीय दिवस कर भोज दिया जाता है।

पाव जनजाति में भी परम्परागत जाति पंचायत है। इसका प्रमुख गौंटिया कहलाता है। गौंटिया का पद वंशानुगत है। इस पंचायत का कार्य विवाह, तलाक, देवी-देवताओं की पूजा, बलि-व्यवस्था, अनैतिक सम्बन्ध, उत्तराधिकार, सम्पत्ति आदि विवादों का परम्परागत ढ़ंग से निराकरण है।

पाव जनजाति के अराध्य हैं- बड़का (बूढ़ा) देव, ठाकुर देव, दुल्हा देव, बूढ़ी माई, सभी हिन्दू देवी-देवता, सूर्य, चन्द्र, वृक्ष, नदी, नाग आदि। भूत-प्रेत और जादू-टोने पर विश्वास है।

इनके त्योहार हैं- हरेली, नाग पंचमी, नव रात्री, दशहरा, दीपावली, होली आदि। लोक नृत्य करते और लोक गीत गाते हैं।

इनमें शिक्षा अल्प है। विकास के अनुक्रम में इनकी वेषभूषा, बोलचाल, रहन-सहन, लोक कला, खानपान आदि में बदलाव आया है। अर्थाभाव इनकी प्रमुख समस्या है।

23. परधानः-

परधान जनजति छत्तीसगढ़ राज्य में रायपुर सम्भाग के कबीरधाम और बिलासपुर सम्भाग के बिलासपुर जिलों में निवास करती है। 2001 में इनकी जनसंख्या 10,481 थी।

गोंड़ जनजातीय समुदाय की विभिन्न उपजातियाँ अपने पारम्परिक निर्धारित कार्य करती हैं। इस पर गोंड़ जनजाति पर लेख खण्ड में चर्चा की जा चुकी है। अतः सन्दर्भ हेतु उसे देखा जा सकता है। उसी अनुक्रम में परधान जनजाति भी गोंड़ जनजाति के पुजारी और गायक-संगीतज्ञ का कार्य करती है। परधान गायक हमेशा गोंड राजाओं की प्रशंसा करते हुए गीत गाया करते थे। उनके गीतों के माध्यम से गोंडो के

अतीत जीवित रहा। कुछ लोग परधान को गोंडो के चारण कवि कहते हैं। उनके गोंडवानी और करम सैनी, गोंड जनजाति के अतीत के बारे में है, जिसमें इतिहास एवं मिथकों की झलके हैं। इन्हें और देवारों को पण्ड़वानी गायन से जोड़ा जाता है। पंड़वानी छत्तीसगढ़ का वह एकल नाट्य है जिसका अर्थ है पाँड़ववाणी अर्थात पाँड़वों की कथा, जो कि महाभारत की कथा है। अतः यह महाभारत की कथा का गायन-वादन के साथ स्थानिय मंचीय प्रदर्शन है, हालाँकि इसमें अर्जुन के स्थान पर भीम नायक के स्थान पर है। ये कथाएं छत्तीसगढ़ की परधान तथा देवार जातियों की गायन परंपरा है। परधान गोडों की एक उपजाति है और देवार धुमन्तू जाति है । इन दोनों जातियों की बोली, वाद्यों में अन्तर है। परधान जाति के कथा वाचक या वाचिका के हाथ में "किंकनी" होता है और देवारों के हाथों में रून्झू होता है । परधानों ने और देवारों ने पंड़वानी लोक महाकाव्य को पूरे छत्तीसगढ़ में फैलाया। परधान जाति के गायक अपने यजमानों के घर में जाकर पंड़वानी सुनाते थे।[186]

परधान जाति की पण्ड़वानी महाभारत पर आधारित होने के साथ-साथ गोंड मिथकों का मिश्रण है। जहाँ महाभारत का नायक अर्जुन है वहीं पण्डवानी का नायक है भीम। भीम ही पाण्डवों की सभी विपत्तियों से रक्षा करता है। पण्डवानी में माँ कुन्ती को माता कोतमा कहा गया है और गान्धारी को गन्धारिन। गन्धारिन के इक्कीस बेटे बताए गए हैं। पण्डवानी में जिस क्षेत्र को दिखाया गया है, वह छत्तीसगढ़ ही है। पाँण्ड़व जहाँ रहते थे उसे जैतनगरी कहा गया है। कौरवों के निवास स्थान को हसना नगरी कहा गया है। पण्डवानी में पाँण्ड़व तथा कौरव - दोनों पशुपालक है। पाँण्ड़व और कौरव पशुओं को लेकर चराने जाते थे। पशुओं में थे गाय, बकरियाँ और हाथी। कौरव हमेशा अर्जुन को तंग किया करते थे और भीम ही थे जो कौरवों को सबक सिखलाते थे।

एक कथा यह है- पण्डवानी में कौरवों ने एक बार भीम को भोजन के साथ विष खिलाकर समुद्र में डुबा दिया। भीम जब पाताल लोक में पहुँचता है, सनजोगना उसे अमृत खिलाकर पुनर्जीवित करती है। सनजोगना नाग कन्या थी, जो पाताल लोक में भीम और सनजोगना का विवाह होता है। कुछ दिन के बाद भीम छटपटाने लगता है, अपना माँ और भाईयों को देखना चाहता है। तब सनजोगना भीम को पाताल लोक से समुद्र तट पर ले आती है। भीम अपनी माता कोतमा और चार भाईयों के पास पहुँचकर बहुत खुश हो जाता है। जब कौरवों ने लख महल में पाण्डवो को मारना चाहा, भीम ही था जो पाताल लोक तक एक पथ का निर्माण करता है और सबकी सुरक्षा करता है। इस घटना के बाद भीम अपनी माँ और भाईयों को लेकर बैराट नगर पहुँचता है। विराट नगर (पंड़वानी में बैराट नगर) के राजा का नाम संग्राम सिंह है। उसी विराट नगर में कीचक का भीम वध करता है। पण्डवानी में महाभारत के युद्ध को महाधान की लड़ाई बताया गया है। और इस युद्ध के संदर्भ में द्रौपदी की सोच बहुत ही अलग दिखाई गई है।

पंड़वानी करने के लिए किसी त्यौहार या पर्व की जरुरत नहीं होती है। कभी भी कहीं भी पंड़वानी आयोजित कर सकते हैं। कभी-कभी कई रातों तक पंड़वानी लगातार चलती रहती है। वर्तमान में पंड़वानी गायिका गायक तंबूरे को हाथ में लेकर मंच पर घूमते हुए कहानी प्रस्तुत करते हैं। तंबूरे कभी भीम की गदा तो कभी अर्जुन का धनुष बन जाता है। संगत के कलाकार पीछे अर्ध चन्द्राकर में बैठते हैं। उनमें से एक "रागी" है जो हुंकारु भरते जाता है और साथ-साथ गाता है, रोचक प्रश्नों के द्वारा कथा को आगे बढ़ाने में मदद करता है। पंड़वानी की दो शैलियाँ हैं - एक है कापालिक शैली जो गायक गायिका के स्मृति में या

[186]http://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AA%E0%A4%82%E0%A4%A1%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A5%80 और http://tdil.mit.gov.in/coilnet/ignca/chgr0031.htm

"कपाल"में विद्यमान है। दूसरी है वेदमती शैली जिसका आधार है शास्त्र। कापालिक शैली वाचक परम्परा पर आधारित है और वेदमती शैली खड़ी भाषा में सबलसिंह चौहान के पद्य महाभारत पर आधारित है।[187]

चित्र 31 - पण्डवानी गायन   स्रोत-hi.wikipedia.org

कुछ क्षेत्रों में परधानों ने चित्र कला में भी रूचि दिखाई। डिंडोरी- मंडला के परधान जनजाति के चित्राकारों ने, पिछले दो ढाई दशक में जो चित्र बनाए, वह समकालीन गोंड चित्रकला या जणगण कलम के नाम से जाने गए। आज पचास से अधिक परधान और गोंड चित्रकार जो रचनाएं कर रहे हैं, वे समकालीन हैं। उसके संदर्भ उनकी प्रकृति, वातावरण, गीतों, कथाओं और मिथ कथाओं में हैं।[188]

परधान जनजाति की उत्पति पर एतिहासिक और आधुनिक वैज्ञानिक शोध होने हैं। किंवन्दंति अनुसार- प्राचीन काल में सात भाई- गोंड़, बैगा, गोंड़ ग्वारी, अगरिया, ढुलिया, नगारची और परधान- थे। वे बूढ़ा देव (महा देव) पूजन को गए। सभी भाई पूजा उपराँत वापस आ गए, परंतु छोटा भाई परधान ने बाँस से वाद्य यंत्र (किंकनी) बना बूढ़ा देव की स्तुति कर बजाने लगा। मधुर स्वर और लय बद्धता से प्रभावित हो बूढ़ा देव ने प्रगट हो संगीत और पूजा में निपुड़ता का आशिर्वाद दिया। इसी के वंशज परधान जाति के लोग हुए और यह ही कार्य करने लगे।

परधान गोंड़ जनजाति की ही शाखा मानी जाती रही है, पर उनसे निम्न। वे उनके पुजारी और मंत्री का कार्य करते रहे। परधान शब्द संस्कृत्त से मंत्री आदि होने के कारण प्रयुक्त हुआ। वे गोंड़ लोगों से अधिक बुद्धिमान माने गए। गोंड़ लोग और वे स्वयं अपने को पनल कहते हैं। परधान संज्ञा बहुसंख्यक हिन्दू लोगों द्वारा दी गई। यह लोग परगनिहा, देसाई और पठारी भी कहलाते हैं। परगनिहा परगने के प्रमुख को भी कहा जाता रहा है। देसाई देशमुख की तरह भू राजस्व अधिकारी को कहा जाता था। पठारी वंशानुगत भाट या पहाड़ी हेतु प्रयुक्त होता रहा है। छत्तीसगढ़ में इन्हें परधान पठारिया कहा जाता है।[189]

---

187 http://tdil.mit.gov.in/coilnet/ignca/chgr0031.htm और
http://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AA%E0%A4%82%E0%A4%A1%E0%A4%B5%E0%A4%BE%E0%A4%A8%E0%A5%80

188 नवल शुक्ल-आदिवासी साहित्य की उपस्थिति (तदभव-दलित विशेष अंक)
(http://www.tadbhav.com/dalit_issue/aadibasi_sahitya.html#adibasi)

189 R.V.Russell- The Tribes and Castes of the Central Provinces of India, Vol.-IV, Page 432-3
(http://books.google.co.in/books?id=eM1TdcVsK88C&pg=PA432&lpg=PA432&dq=Pardhan+tribe&source=bl&ots=Gw5UEb27_V&sig=87UW6nYGMctOqvO0VbyOQ9BksEY&hl=en&ei=UiYzTJCBBY-2rAeyqfH2Bg&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=9&ved=0CCQQ6AEwCA#v=onepage&q=Pardhan%20tribe&f=false)

परधान जनजाति के ग्राम पृथ्क नहीं होते हैं। वे लोग छत्तीसगढ़ की अन्य जनजातियों यथा गोंड़, भूमिया, बैगा आदि के साथ ग्रामों में रहते हैं। इनके घरों की संख्या, प्रत्येक ग्राम में, अन्य जंजातियों की तुलना में कम ही रहती है। ग्राम मध्य में कच्चे रास्ते के दोनों ओर घर बने होते हैं। घर की दीवारें मिट्टी और छत घाँस-फूस एवं खपरैल की बनी होती हैं। दीवारे पीली या सफेद मिट्टी से पोती जाती हैं। फर्श भी मिट्टी से बना होता है। इसे प्रति सप्ताह लीपा जाता है। इस आवास में एक या दो कक्ष होते हैं। इन घरों के सामने और पीछे परछी होती है। घर में सामने और पीछे द्वारा होते हैं, इसे सामान्यतः सागौन काष्ठ से बनाते हैं। मध्य मुख्य कक्ष में अन्न कोठी, अराध्य का स्थान, वस्त्र, वाद्य यंत्र और अन्य घरेलू सामान होता है। पिछली परछी में रसोई और चुल्हा होता है। यहीं रसोई के बर्त्तन भी रखे जाते हैं। पशुओं हेतु घर के बगल में पृथ्क कोठार होता है। घर में प्रतिदिन झाड़ू लगा कर सफाई करते हैं।

यह लोग प्रतिदिन प्रातः रतनजोत या हर्रा की टहनी से दातौन कर स्नान करते हैं। केश धोने हेतु काली मिट्टी उपयोग करते हैं। पुरूष दाढ़ी, मूँछ और सिर के बाल काटते हैं। बालों में मूँगफली या गुल्ली का तेल लगाते हैं। स्त्रियाँ और बच्चे आँखों में काजल लगाते हैं।

पुरूष कुर्ता, धोती, बंड़ी, साफा आदि और महिलाएँ अंगिया, पोलका, छींट, लुगड़ा आदि पहनती हैं। महिलाएँ हस्तशिल्प से गोदना गुदवाती हैं और पैरों में पैरी, तोड़ा; कमर में करधन; कलाई में काँच की चूड़ी, गिलट के कंगन, गुलेटा; गले में नथ, लौंग आदि आभूषण पहनती हैं।

परधान जनजाति के घरों में रसोई के साधन यथा- मिट्टी का चूल्हा, तवा, लोहे का चिमटा, कढ़ाई, अन्य बर्त्तन यथा- एल्युमीनियम या पीतल के पैना, तगाड़ी, भगोना, गिलास, लोटा, थाली, कटोरी आदि होते हैं। अब स्टील के बर्त्तन व्यवहार में आ गए हैं। पानी भरने को मिट्टी का घड़ा होता है। घरेलू उपयोग की अन्य वस्तुओं में ढ़ेकी, मूसल, कुनेता, चकिया, टोकरा, सूपा आदि होता है। इनका मुख्य वाद्य किंगरी भी अवश्य ही रखते हैं। साथ ही ढ़ोल, नगाड़ा, तम्बूरा, खंजरी, हारमोनियम आदि भी रखने का प्रयास करते हैं और उन्हें भी बजाते हैं।

इनके भोजन में मक्का और ज्वार की रोटी, कोदो और कुटकी का भात, चावल, उड़द, तुवर, मौसमी सब्जियाँ आदि होती हैं। जंगली कन्द-मूल, फल-फोल, पत्ते भी खाते हैं। माँसाहारी है। मुर्गी, बकरा, अंड़े, मछली, खरगोश, चूहे आदि का माँस खाते हैं। महुआ शराब भी पीते हैं।

परधान जनजाति संस्कारतः जजमानी प्रथा पर आश्रित होती है। गोंड़ों के पुजारी का कार्य करने पर इन्हें अन्न, दाल आदि जीवकोपार्जन हेतु प्राप्त होता है। परधान का आशय दूसरे के (पर) धान (अन्न) पर आश्रित से भी लिया जाता है, जो इसी कारण आया। यह लोग संगीत, लोक गीत आदि से भी कमाते हैं और इन्हें अनाज, दाल, नगद आदि प्राप्त होता है। अब यह लोग कृषि, मजदूरी, वन उपज संग्रह, पशु पालन, नौकरी आदि भी करते हैं। कृषि में यह लोग कोदो, कुटकी, मक्का, ज्वार, उद-अद, तुवर, जगनी आदि बोते हैं।[190]

परधान जाति मुख्यतः राज, गांड़ा और पोथिया- परधान उपजातियों में बँटी है। राज परधान सबसे उच्च और राजगोंड़ पुरूष और परधान स्त्री के वंशज माने जाते हैं। राज परधान बूढ़ादेव के पुजारी होते हैं। गांड़ा परधान राज परधान से नीचे माने जाते हैं। वे वाद्य या बाजा बजाने का कार्य करते हैं। परधानों के कुछ और भी उपजातीय विभाजन हैं। यथा- घुमक्कड़ी कर जीवन यापन करने वाले देसाई परधान, बस्तर माड़ क्षेत्र में निवास करने वाले माढ़ेर परधान, छत्तीसगढ़ मैदान में निवास करने वाले खलौटिया परधान,

---

[190] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की जनजातीय विषयक विभिन्न पुस्तिकाएँ।

इसी क्षेत्र में पुजारी का काम करने वाले बैगा परधान, नौकरी करने वाले और पुराने कपड़ों का क्रय-विक्रय करने वाले अर्राख परधान, बाँस हस्तशिल्प से टोकरी आदि बनाने और बेचने वाले कंड़रा परधान आदि। कंड़रा लोगों को मण्ड़ला-सिवनी क्षेत्र में सरोती और पठारी भी कहा जाता है।

उपरोक्त उपजातियाँ कई बर्हिविवाही गोत्रों में बँटी हैं। जैसे- मरकाम, सिरसाम, कुर्राम, सरेआम, परतेती, उइके, भलावी आदि। प्रत्येक गोत्र के टोटम होते हैं। अपजाति अंतः विवाही समूह होता है। परधान गोंड़ आदि जनजातियों से नीचे माने जाते हैं, पर राज परधान पुरोहितीय कार्य के कारण अपने को उच्च मानते हैं। इनमें परिहास और आहार सम्बन्ध है।

संतान उत्पत्ति को ईश्वर की देन मानते हैं। हालाँकि यह तथ्य अधिकाँश जनजातियों में मान्य है। रजःस्वला स्त्री को अपवित्र माना जाता है। उनके लिए रसोई, पूजा, पानी भरने आदि के कार्य निषिद्ध होते हैं। गर्भावस्था में कोई संस्कार नहीं है। प्रसव घर पर सुईन दाई द्वारा कराया जाता है। वह ही नाल काटती है, जिसे घर में गाड़ा जाता है। प्रसूता को चाय, उड़द की दाल सुदक आदि पिलाते हैं। छठी पर शुद्धि करते हैं। प्रसूता और नवजात शिशु नहला और नवीन वस्त्र धारण करा देवी-देवता और सूर्य को प्रणाम कराते हैं। इसी दिन शिशु का नामाकरण भी करते हैं।

सामान्यतः लड़को की विवाह आयु 16-18 और लड़कियों की 14-17 वर्ष है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। विवाह में व्यय की राशि, अन्न, दाल, गुड़ और तेल आदि वधु पक्ष को देते हैं। वधु को साड़ी, पोलका आदि वस्त्र देते हैं। मंगनी, फलदान, विवाह और गौना के चार चरणों मे विवाह पूर्ण होता है। बारात में 30-40 व्यक्ति पैदल या बैलगाड़ी में वधु आवास जाते हैं। अब विभिन्न उपलब्ध वाहन भी प्रयुक्त होते हैं। साथ में बाजा वाला भी होता है। विवाह फेरे लेने पर पूर्ण होता है। इस वधु धन पारम्परिक विवाह के अतिरिक्त विनिमय विवाह, सह पलायन, घुसपैठ, सेवा विवाह, पुर्नविवाह को भी सामाजिक मान्यता है।[191]

शव गाड़ते हैं। सम्पन्न या प्रतिष्ठित व्यक्ति की मृत्यु पर उसका शव जलाते हैं। ग्यारहवें दिन देवी-देवता और पूर्वजों की पूजा कर रिश्तेदारों को भोज दे शुद्धि करते हैं। आगामी वर्ष से पितृपक्ष में मृतक के नाम से मृत्यु तिथि को पानी से तर्पण कर कौवों को दाल-भात, भजिया आदि खिलाते हैं।

परधान जनजाति में भी अपनी जाति पंचायत है। इस पंचायत का मुख्य कार्य जाति के देवी-देवताओं की पूजा व्यवस्था करना, जाति में विवाह, फलदान, छुटा आदि प्रसंगों का निराकरण करना, अनैतिक सम्बन्धों को रोकना, झगड़ा निपटाना आदि है।

इस जनजाति के अराध्य हैं- मुठवा, हरदुल लाला, माता, भैंसासुर, धुरलापाट, खड़ेराई, भीम सेन, जोगनी आदि। वे सभी हिन्दू अराध्यों को भी पूजते हैं। सभी जनजातियों की तरह नदी, पर्वत्त, वृक्ष आदि भी उनके अराध्य हैं। भूत-प्रेत, जादू-टोना, आत्मा, पुर्नजन्म आदि मानते हैं।

इनके त्योहार हैं- राम नवमी, बीदरी, आखा तीज, अखाड़ी, जीवती, पंचमी, आठें, पोला, पितर पक्ष, दशहरा, दीपावली, महाशिव रात्रि, होली आदि। त्योहारों में अराध्यों की पूजा करते हैं। नारियल, मुर्गी, बकरा आदि की बलि चढ़ाते हैं। दाल-भात, बलि माँस, पूड़ी, भजिया आदि का भोज करते हैं। दारू पीते हैं।

---

191 http://www.aptribes.gov.in/html/tcr-studies-eci-pardhan.htm

परधान लोग संगीतज्ञ हैं। किंगरी प्रमुख वाद्य है। अन्य वाद्य बजाने में भी योग्य हैं। लोक गीत गायन में भी योग्यता है। राम चरित्र, महा भारत, आल्हा-ऊदल, स्थानिय राजा-रानी की कथाएँ गाते हैं। हालाँकि इनमें शिक्षा अल्प है। विकास अनुक्रम में अत्यधिक बदलाव के शिकार हुए हैं। जजमानी प्रथा लुप्त प्राय होती जा रही है। अब कृषि, मजदूरी, वन उपज संग्रह और नौकरी ही अश्रय रह गया है। पंण्ड़वानी भी अंतर्ष्ट्रीय और नगरीय दर्शकों को ध्यान में रख कर परिमार्जित हुई है। रहन-सहन, वेष-भूषा, खान-पान, लोक कला आदि में बदलाव है। पारम्परिक संगीत और लोक कला पीछे भी छूट रही है।

कला का छूटना, अल्प आय, पिछड़ी कृषि, अन्ध विश्वास, अल्प शिक्षा, कुपोषण, वंशानुगत रोग आदि इनकी समस्याएँ हैं। गोंड़ जनजाति से जुड़ाव के कारण Sickle cell hemoglobin (HbS), Beta-thalassemia trait और G6PD की कमी के कारण उत्पन्न रोग इनमें भी पाए जाते हैं। परधान जनजाति सिकल सेल रोग हेतु सर्वाधिक खतरे वाले समूहों में एक है।[192]

24. पारधी (बहेलिया/शिकारी):-

पारधी/शिकारी जनजाति छत्तीसगढ़ की अल्प संख्यक जनजाति है। 2001 में इनकी संख्या 10,757 ही थी। यह जनजाति रायपुर सम्भाग के रायपुर, दुर्ग, राजनाँदगाँव और महासमुन्द; बिलासपुर सम्भाग के बिलासपुर और कोरबा तथा बस्तर सम्भाग के उत्तर बस्तर (काँकेर) जिलों में निवासरत है। इन्हें बहेलिया, बहेल्लिया, चिता पारधी, लंगोली पारधी, शिकारी, टाकनकार, टाकिया भी कहा जाता है। राज्य के कुछ भागों में इन्हें सामान्य श्रेणी में भी माना गया है। वर्तमान में पारधी रायपुर जिले के बिन्द्रानवागढ़, राजिम, देवभोग तहसील में अनुसूचित जनजाति मे है, लेकिन इसी जिले के भाटापारा और बलौदाबाजार तहसीलों में सामान्य वर्ग में है। इसी तरह दुर्ग जिले में यह समुदाय दुर्ग, पाटन, बालोद, गुंडरदेही, गुरूर, डौंडीलोहारा और धमधा तहसीलों में अनुसूचित जनजाति में शामिल है, जबकि इसी जिले के नवागढ़, बेमेतरा, साजा और बेरला तहसील क्षेत्र में यह सामान्य वर्ग में है। राजनांदगाँव के पारधी अनुसूचित जनजाति वर्ग में है, लेकिन कवर्धा के पारधी सामान्य वर्ग में है, जबकि इन सब के बीच सामाजिक संबंध भी हैं और इनकी आर्थिक और शैक्षणिक स्थिति भी सामान है।[193] उपनिवेश काल में इन्हे अपराधी जनजाति माना जाता था।[194] कुछ लोग इन्हें समाज रक्षा समूह के रूप में भी चिन्हित करते हैं।[195]

पारधी (शिकारी) जनजाति की उत्पति पर आधुनिक वैज्ञानिक और एतिहासिक शोध नहीं हैं। रस्सेल्ल और हीरालाल के द्वारा इन्हें राजपूत और बावरी जाति का मिश्रित समूह माना गया है, जो मुख्य जाति से पृथ्क हो गया। पारधी शब्द की व्युत्पति संस्कृत के पारध शब्द से मानी गई है, जिसका अर्थ शिकार

---

192 http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pubmed/2129613 (Institute of Immunohaematology ICMR, G.S.Seth Medical College, Parel, Mumbai से V.R.Rao और A.C.Gorakshakar का सर्वेक्षण)

193 http://www.deshbandhu.co.in/newsdetail/14074/2/0

194 http://www.ambedkar.org/jamanadas/CriminalTribes.htm (Dr. K. Jamanadas- Criminal Tribes Of India)

195 http://www.mynews.in/merikhabar/News/_N19130.html और http://visfot.com/index.php/story_of_india/875.html

है। इस जनजाति का मनना है कि, महाभारत काल में भगवान महादेव द्वारा पारधी आखेटक का रूप धर वन वराह का आखेट किया गया था। अर्जुन का तीर भी साथ-साथ ही उस वराह को लगा। अतः इस शिकार पर अधिकार हेतु दोनों में युद्ध हुआ। अर्जुन ने महादेव को पटकनी देने हेतु उनका पैर पकड़ा, किंतु महादेव ने प्रसन्न हो वर दे दिया। पारधी लोग इसी पारधी शिकारी वेषधारी महादेव से अपनी उत्पति मानते हैं।

पारधी लोग ग्रामों में अन्य जनजातियों के साथ परंतु पृथक पारा में निवास करते हैं, जो गाँव के एक किनारे पर होता है। इनके घर छोटे और कम ऊँचाई के होते है। घर मिट्टी, घाँस-फूस और खपरैल के बने होते हैं, जिनमें एक रसोई और एक अन्य कक्ष होता है। घर का बाहरी भाग परछी, रसोई रधनी खोली और अन्य कक्ष माई घर कहलाता है।[196]

चित्र 32 - पारधी महिलाएँ आवास बच्चे और उनका ,स्रोत-merikhabar.com

पुरूष पंछा, गमछा, धोती, सलूका, बंडी, कुर्ता आदि पहनते हैं। महिलाएँ बारह हाथ का लुगड़ा पहनती हैं। पहले वे ब्लाऊज आदि नहीं पहनती थें। अब साड़ी-ब्लाऊज भी पहनती हैं। वे अधिकांशतः गिलट के आभूषण पहनती हैं। वे देवार महिलाओं द्वारा हस्तशिल्प से गुदना गुदवाती है6। गुदना हातह, पैर, बाँह, माथे, ठुड़ी आदि पर गुदवाया जाता है।

इस जनजाति के घरों में सामान्यतः कोठी, जाता, मूसल, चटाई, चरपाई, वस्त्र, बर्त्तन, कुल्हाड़ी, कुदाली, हँसिया, पक्षी पकड़ने के फन्दे, खण्ड़ाऊ, फाँसा रखने का निसलो आदि होते हैं।

इन के भोजन में चावल और कोदो का भात, बासी और पेज प्रमुख है। वे साथ में मूँग, उड़द, तिवड़ा आदि की दाल या मौसमी सब्जी भी लेने की कोशिश करते हैं। माँसाहारी हैं। शिकार करते रहे हैं। तीतर, बटेर, खरगोश, चूहा, हिरण आदि को शिकार कर खाते हैं। मुर्गी, बकरा आदि पालतू खाते हैं। मछली वर्षा आदि में पकड़ कर खाते हैं। महुआ निर्मित्त कच्ची शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी पीते हैं। कुछ महिलाएँ तम्बाखू खाती हैं।

पारधी या शिकारी वनों से तीतर, बटेर, खरगोश, बाज, वन मुर्गी, फाख़्ता आदि सहित अन्य पशु पक्षी पकड़ कर बेचते रहे हैं। कभी इसमें हिरण, सियार सहित अन्य बड़े पशु भी सम्मलित थे। याह कारय वे स्वयं द्वारा हस्तशिल्प से निर्मित्त जालों से करते थे। वे हस्तशिल्प के अन्य कार्य कर भी जीवकोपार्जन करते हैं। यथा- छेन्द पत्तओं से चटाई, झाड़ू, टोकनी आदि बनकर बेचना। वे शिकार से प्राप्त बची वस्तुओं से स्थानिय लोगों में प्रचलित मान्यताओं के अनुसार उपचार भी करते हैं और उससे भी आय प्राप्त करते है। यथा- बच्चे को नज़र से बचाने हेतु गिद्ध या मोर नाखून को गले में पहनाना, नाखून को जला कर मोहनी दवा बनाना, टी.बी. हेतु चमगादड़ का उपयोग, त्वचा फटने-सूखने पर उपयोग,, परसूद हेतु सियार रक्त आदि। सामन्यतः आखेटक जातियाँ क्रिष नहीं करती, पर पारधी लोग खाली समय में कर लेते हैं। हालाँकि

[196] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान और प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की पुस्तिका-छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियाँ (सम्पादक-टी.के.वैष्णव)

थोड़ी मात्रा में ही। कोदो, धान, तिवड़ा, तिल, उड़द आदि बोते हैं।वे कृषि मजदूरी भी करते हैं। वर्षा में स्वयं के उपयोग हेतु मछली पकड़ते हैं।[197]

यह जनजाति भी पितृवंशीय, पितृसत्तात्मक, पितृनिवास स्थानिय गुण धारक जनजाति है। इस जंजाति में भी एकल परिवार ही है। इनमें बारह- सिसोदिया, चौरसिया, सोलंकी, मच्छीमार, तितोड़ी, कथरियो, मरारियो, मालियो, गवारो, रहिरियो, चुआर और कुरगल- गोत्र हैं। इनके अतिरिक्त यह गोत्र नाम भी प्रचलित हो गए हैं- नेताम, पुवार, गवाड़ा, मरकाम, डिरिया, कोसारिया, सोरी, छेदाम, कुंजाम, मरई आदि।[198] अधिकतर लोग चौहान, पवार और सोलंकी सरनेम उपयोग करते हैं।[199] गोत्रों की उत्पति की भी किवंन्दंतियाँ प्रचलित हैं।[200] कहीं-कहीं यह भी उल्लेख आया है कि, पारधी भी कई तरह के होते हैं। जैसे राज, बाघरी, गाय, हिरन शिकारी और गाँव पारधी। इस हेतु यह उल्लेख किया गया कि, राजा के पास जो शिकार करने वाला विशेषज्ञ था वह राज पारधी कहलाया। जब राजा की इच्छा बाघ पर सवारी की होती तो बाघरी पारधी बाघ पकड़ता और उसे पालतू बनाता। बाघ को जीवित पकड़ उसे पालतू बनाना अत्यधिक कठिन कार्य रहा होगा। गाय पारधी का मुख्य वाहन गाय रहा। प्रत्येक परिवार के पास एक गाय होना आवश्यक था। यह गाय प्रशिक्षित भी थी। यह पारधी के शिकार के धंधे की मां होती मानी गई और इसलिए पारधी गाय का माँस नहीं खाते। किसी पारधी के लिए हिरन के पीछे दौड़कर मारना कठिन था। वह इसमें गाय की सहायता लेता था। वह ऐसी गाय बाजार से खरीदने की बजाय अपनी ही गाय से काम लेता है। हिरन के शिकार के वक्त जब गाय चरती हुई आगे बढ़ती है तब उसके पीछे पारधी छिपा आता है। हिरन के पास आते ही पारधी उसके ऊपर अचानक छलांग मारता है। पारधी की गाय शिकार की सारी शैलियां जानती है। उसकी गाय इतनी सीखी होती है कि शरीर के जिस हिस्से में हाथ रखो तो वह समझ जाती है क्या करना है। कहते हैं कि, पारधी पंछियों की बोली भी जानते हैं। जैसे पारधी के तीतर जब दूसरे तीतरों को गाली देते हैं, तब जंगल के कई तीतर लड़ने के लिए आते हैं, लेकिन वह बीच में लगे जाल में फंस जाते हैं। इस तरह शिकार के और भी कई ढंग हैं। पारधी शिकार के बारे में सर्वाधिक सूचना रखने वाला जाति समूह है।[201]

पारधी या शिकारी प्रसव कार्य घर के बाहर परछी में या घर के पीछे पृथ्क झोपड़ी बना कर सुईन दाई से कराते हैं। शिशु नाल खपरैल या बारीक कमची से काट घर के बाहर गाड़ते हैं। जच्चा को मृदा भाण्ड में भोजन देते हैं। पौष्टिक आहार में सोंठ, गुड़, तिल लड्डू, सूखा नारियल आदि देते हैं। छठे दिन छठी पर शुद्धि करते हैं। इसी दिन शिशु का मुण्ड़न भी करते हैं। बच्चे को पूजा घर में लाते हैं। आगंतुक उपहार स्वरूप रूपए देते हैं। शिशु का नाम मुखिया या किसी बुजुर्ग द्वारा रखा जाता है। आवास की शुद्धि हेतु दारू या महुआ का जल छिड़का जाता है। घर की गाय गोबर से लीपाई की जाती है।

इनमें भी सगोत्रीय विवाह वर्जित है। सामान्यतः विवाह आयु लड़कों हेतु 18-20 और लड़कियों हेतु 16-18 वर्ष है। विवाह तय करते समय वर पक्ष वधु पक्ष के घर जा बीड़ी (माखुर) देता है और कहता है- “

---

[197] छत्तीसगढ़ अभिलेख प्रभाग-पारधी

[198] छत्तीसगढ़ आदिम जाति अनुसन्धान और प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की पुस्तिकाएँ

[199] http://www.ambedkar.org/jamanadas/CriminalTribes.htm (Dr. K. Jamanadas- Criminal Tribes Of India)

[200] जी.आर.अहिरवार-पारधी (म.प्र.आदिम जाति अनुसन्धान परिषद)

[201] http://www.ambedkar.org/jamanadas/CriminalTribes.htm और http://en.wikipedia.org/wiki/Phase_Pardhi

आज से हमारा समधी बन जाओ। हमारी बीड़ी पियो।" बीड़ी स्विकार करने पर सम्बन्ध तय माना जाता है। वर पिता अनाज, दाल, नगद आदि वधु पिता को देता है। विवाह रस्म बुजुर्ग व्यक्ति की देखरेख में सम्पन्न होती है। पैढ़ू, उढ़रिया, गुरांवट, लमसेना विवाह भी समाज को मान्य है। विधवा या परित्यक्ता को चूड़ी पहनाने (पुर्नविवाह) की अनुमति है।

पारधी भी शव गाड़ते हैं। कब्र में सर्वप्रथम पुत्र मिट्टी ड़ालता है। तीन दिन तक शोक के कारण चुल्हा नहीं जलाया जाता। तीज नहावन कर नाई से नाखून कटा तेल लगवाते हैं। सगे सम्बन्धी भी नाई से केश कटवाते हैं। दसवें दिन स्त्री और पुरूष दोनों पगड़ी रस्म पूरी करते हैं।

पारधी जनजाति के लोग लगभग दस-दस गाँवों के मध्य वंशानुगत मुखिया का चुनाव करते हैं। इनकी जाति पंचायत में पंच, सचिव, चपरासी आदि पद होते हैं। इसमें विवाह, तलाक, जाति विरोधि कार्य आदि की स्थिति में बैठक करते हैं। पारम्परिक जुर्माने, दारू, बीड़ी और भोज द्वारा विवाद निराकृत्त करते हैं।

यह जनजाति प्रकृति और देवी पूजक है। हालाँकि देवता की भी पूजा करते हैं। इनके अराध्य हैं- छप्पन कोड़ देवी, सावली देवी, देवी नोकोट, तेंतीस कोट, शीतला देवी, काली देवी, रायस कोतर देवी, महा काली, गंगा देवी, मालिया देवी, सिंग भवानी, ठाकुर देव, बूढ़ा देव, बरम देव, पारधन आदि। हिन्दू देवी-देवता राम, कृष्ण, हनुमान, शिव अराध्य है6। वे सूर्य, चन्द्र, नदी, वृक्ष, नाग अदि की पूजा करते हैं। पूजा में मुर्गा या बकरे की बलि करते हैं। अनिष्ठकारी टोना में विश्वास है। इसे करने वाली स्त्रि टोनही और पुरूष टोनहा कहलाता है। य्हा लोग मानते हैं कि, मंत्र शक्ति से भूत-प्रेत वश में किए जा सकते हैं। जादू-टोने के प्रभाव को दूर करने वाला बैगा कहलाता है। बच्चों को भोत, प्रेत, टोना, नज़र आदि से बचाने हेतु हाथ में सफेद या काली चूड़ी या गले में ताबीज पहनाते हैं।

पारधी या शिकारी जनजाति के लोक गीतों में शिकार और छिन्द कटाई के समय गाए जाने वाले गीत, सुवा गीत, ददरिया, करमा गीत, पुरवा गीत, सरकी (चटाई) गीत, जन्म अवसर पर गाए जाने वाले गीत, विवाह गीत, देवी गीत आदि हैं। पुरूष रहस (होली में), करमा, राम सप्ताह आदि नृत्य और महिलाएँ पड़की (दीपावली), विवाह नृत्य आदि करती हैं।

पारधी अल्प शिक्षित जनजाति है। विकास अनुक्रम में इनमें बदलाव आया है। शासकी आवास योजनाओं के कारण पक्के आउर अपेक्षाकृत्त बड़े मकान में रहने लगे हैं। वस्त्र विन्यास, खान-पान, रहन-सहन, लोक कलाएँ आदि बदली हैं। फिल्म गीत का प्रभाव बढ़ा है। शिकार भी अत्यधिक कम हो गया है।

इनकी भी मुख्य समस्या अर्थाभाव है। मजदूरी पर आश्रय बढ़ा है।

25. परजा (धुरूवा):-

परजा छत्तीसगढ़ की अल्प संख्यक जनजाति है। छत्तीसगढ़ में, यह लोग, 2001 में 1,588 ही थे। यह लोग बस्तर सम्भाग में ही हैं, जहाँ इन्हें धुरूवा भी कहते हैं। वैसे यह लोग अधिकाँशतः आँध्र प्रदेश और उड़ीसा में रहते हैं। इनकी भाषा या बोली परिज है।

इस जनजति की उत्पति पर आधुनिक वैज्ञानिक और एतिहासिक शोध होना है। रस्सेल्ल इस जनजाति को भी गोंड़ जनजाति एक उप समूह मानता है। यह लोग बस्तर में उड़ीसा से आए। वे अपनी उत्पत्ति सूर्य से मानते हैं। उड़िया भाषा में पो का अर्थ पुत्र और रजा का अर्थ राजा है। अतः इसका आशय यह माना गया कि, जनजातीय ग्रामों के प्रमुख लोगों से बना समूह।

परजा जनजाति के लोग बस्तर में अन्य जनजातियों यथा माड़िया, भतरा, हलबा आदि और शुण्डी, महरा, धाकड़, अहीर आदि अन्य जातियों के साथ ग्रामों में निवासरत हैं। इनका घर एक या दो कमरों का होता है, जो मिट्टी का बना होता है। दीवारे पीली या श्वेत मिट्टी तथा फर्श गोबर से लीपते हैं।

इनके घरों में कोठी, जाता, मूसल, बर्त्तन, कुल्हाड़ी, कृषि उपकरण, कपड़े, चटाई, टोकरी आदि होती है।

सामान्यतः पुरूष एक छोटा कपड़ा लपेट कर पहनते रहे हैं। बाहर जाते समय बन्ड़ी भी पहन लेते हैं। महिलाएँ मोटे सूत का लुगड़ा, घुटने के ऊपर से कमर में लपएटते हुए पहनती रही हैं। अब पोलका भी पहना जाने लगा है। वे आलों का जूड़ा बनाती हैं। हाथ, पैर और चेहरे पर हस्तशिल्प से गुदना गुदवाती हैं। वे हाथ, पैर, गले, नाक, कान आदि में गिलट के आभूषण पहनती हैं।

इनका मुख्य भोजन कोदो, माड़िया, चावल आदि का पेज; मौसमी शाग-भाजी; उड़द, तुवर, कुल्थी आदि की दाल है। माँसाहारी हैं। विभिन्न पक्षी, मुर्गी, बकरा, सुअर, खरगोश, हिरण, गोह, गिलहरी, चूहा, मछली आदि खाते हैं। वे सल्फी, लांदा, महुआ आदि शराब पीते हैं।

परजा जनजाति के लोग मुख्यतः पहाड़ी ढ़लांनों मड़िया, कोदो, उड़द, तुअर, कुल्थी और समतल पर धान की खेती करते हैं। उपज कम है। हस्तशिल्प भी इनका पेशा रहा है। यह लोग बाँस की चटाई, टोकरी आदि बनाते हैं। वे वनों से कन्द, मूल, भाजी एकत्र कर खाते हैं और महुआ, लाख, तेन्दूपत्ता, कोसा, गोन्द आदि भी एकत्र कर बेचते हैं। मजदूरी भी करते हैं। पहले शिकार भी करते थे। अब शिकार पर रोक है। वर्षा आदि में स्व उपयोग हेतु मछली पकड़ते हैं।

इनमें कई उपजातियाँ हैं। यथा- परांगी परजा, बरेंगी (जोड़िया) परजा, कोड़ परजा, गदबा परजा, दिड़ाई परजा, पेंगू परजा, धुर परजा आदि। उपजातियाँ गोत्रों में विभक्त हैं। यथा- बाघ, कश्चिम (कछुआ), बोकरा (बकरा), नेताम (कुत्ता), गोही (गोह), पड़की (पक्षी), नाग (सर्प) आदि। सभी गोत्र के अपने टोटम हैं। गोत्र बर्हिविवाही समूह हैं। इस जनजाति में भी परिवार पित्तृवंशीय, पित्तृनिवास स्थानीय होता है।

चित्र 33 - परजा महिलाएँ स्रोत-trekearth.com

इनमें भी गर्भावस्था में संस्कार नहीं हैं। प्रसव ग्राम या जाति की बुजुर्ग महिलाओं द्वारा कराया जाता है। प्रसूता को सोंठ, गुड़, वन जड़ी-बूटी आदि का काढ़ा पिलाते हैं। छठी पर शुद्धि करते हैं। जच्चा-बच्चा को स्नान कराते हैं। सम्बन्धियों को दारू पिलाते हैं।

विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। लड़कों की विवाह आयु सामान्यतः 16 से 18 वर्ष और लड़कियों की 13 से 17 वर्ष के मध्य है। विवाह हेतु लड़का और लड़की की सहमति अनिवार्य है। सामान्यतः वे अपना जीवन साथी स्वयं चुनते हैं। वर पक्ष वधु पक्ष को वधु धन के रूप में सामान्यतः चावल, गुड़, दाल और नगद देता है। वधु पक्ष के लोग वधु को लेकर वर के घर जाते हैं। दो मण्ड़प बनाए जाते हैं। हल्दी लगाने और फेरे का कार्य जाति के बुजुर्ग व्यक्ति के द्वारा सम्पन्नकराया जाता है। विनिमय, सेवा विवाह, सहपलायन, घुसपैठ, विधवा विवाह, पुर्नविवाह, देवर-भाभी पुर्नविवाह आदि को सामाजिक मान्यता है।

परजा लोग भी शव गाड़ते हैं। मृतक के कपड़े, बर्तन, कुछ अन्न आदि को दफनाने के स्थान पर छोड़ कर जाते हैं। तीसरे दिन पुरूष मुण्ड़न कराते हैं और घर की सफाई करते हैं। दसवें दिन धार्मिक पूजन आदि कर भोज देते हैं।

परजा जनजाति में भी पारम्परिक जाति पंचायत पाई जाती है। इसके प्रमुख का पद अनुवांशिक होता है। इसमें विवाह, तलाक, अनैतिक सम्बन्ध, उत्तराधिकार आदि के वाद, पारम्परिक ढ़ंग से, निराकृत्त किए जाते हैं। पंचायत के निर्णय मान्य किए जाते हैं।

परजा जनजाति की प्रमुख देवी माँ दंतेश्वरी है। इनके अन्य अराध्य हैं- भीमसेन देव, ठाकुर देव, बूढ़ादेव, बूढ़ी माई आदि। भूत-प्रेत, जादू-टोना आदि पर विश्वास है। धार्मिक पुजारी और जादू-टोना का ज़ानकार सिरहा कहलाता है।

इनके प्रमुख त्योहार हैं- पोला, नवाखाई, दशहरा, दीपावली, होली आदि। त्योहारों पर अराध्य को शराब चढ़ाते हैं। प्रति वर्ष अराध्य मुर्गा बलि अर्पित करते हैं। चैत्र और पूष प्रमुख पर्व हैं।

परजा लोगों के प्रमुख लोक नृत्य हैं- परजी नृत्य, काकसार, विवाह नृत्य आदि। लोक गीत हैं- रीलो, करमा, ददरिया, विवाह गीत आदि। प्रत्येक उत्सव, त्योहार और आयोजन पर नृत्य की परम्परा है।

इनमें भी शिक्षा अल्प है। हालाँकि विकास कार्यक्रमों, शिक्षा, संचार, यातायात, बाह्य सम्पर्क आदि से रहन-सहन, वस्त्र-विन्यास, खान-पान आदि में परिवर्तन आया है। अर्थाभाव ही प्रमुख समस्या है। शिक्षा की कमी, कुपोषण, अन्धविश्वास, अस्वच्छता, उपचार आदि समस्याएँ भी हैं।

26. सौंताः-

सौंता भी छत्तीसगढ़ की अल्पसंख्यक जनजाति है। यह जननजाति उड़ीसा में भी पाई जाती है। यह लोग उड़ीसा से ही छत्तीसगढ़ आए। 2001 में छत्तीसगढ़ में इनकी जनसंख्या 2,959 थी और यह लोग

बिलासपुर सम्भाग के बिलासपुर, कोरबा और रायगढ़ तथा सरगुजा सम्भाग के सरगुजा जिलों में निवास कर रहे थे।[202]

सौंता जनजाति के लोग ग्रामों सामान्यतः अन्य जनाजातिय लोगों यथा- गोंड़, धनवार, कनवर आदि के साथ ही निवास करते हैं। हालाँकि इन ग्रामों में इनके परिवारों की संख्या कम ही है। इनके घर रास्ते के दोनो अलंग होते हैं। घर की छप्पर घास-फूस या खपरैल की होती है। दीवारें पीली या सफेद मिट्टी से लीपी जाती हैं। फर्श मिट्टी का बना होता है। घर में सामान्यतः दो कक्ष होते हैं। घर के आगे परछी होती है। मुख्य कक्ष में देव-स्थान और अन्न कोठार होता है। पशु कोठा, घर के बाजू में, पृथ्क से होता है। घर की सफाई प्रतिदिन और फर्श की गाय के गोबर से लिपाई 2-3 दिन में की जाती है। सामान्यतः यह कार्य महिलाएँ ही करती हैं।

सामान्यतः घर पर कपड़े, बर्त्तन,चारपाई, कृषि उपकरण आदि वस्तुएँ होती हैं।

बबूल, नीम या हर्रे की दातौन और स्नान प्रतिदिन करते हैं। अभी तक पीली चिकनी मिट्टी से सिर के केश धोते थे, अब साबुन भी उपयोग करते हैं। इन्हें धोने के उपराँत गुल्ली, मूँगफली, नीम आदि का तेल लगा कंघी करते हैं। महिलाएँ जूड़ा बनाती हैं। वे आभूषण भी पहनती हैं। यथा- पैरों में सांटी, पैरपट्टि; कमर में करधन; सुहागिन महिलाएँ पैर की उंगलियों में बिछिया; कलाई में चूड़ी, ऐंठी, पटा; बाजू में पहुँची; गले में सुंड़ा, रूपिया माला, चैन; कान में खिनवा; नाक में फूली आदि। वे हस्तशिल्प से गुदना भी गुदवाती हैं। गुदना को स्थाई गहना माना जाता है।

पुरूष मुख्यतः पंछा, सलूका, बन्डी, धोती, कुरता आदि और महिलाएँ लुगड़ा, पोलका आदि पहनती हैं। अब पैंट, शर्ट, साड़ी, ब्लाउज आदि के प्रति भी रूझान हुआ है।

सौंता लोगों का मुख्य भोजन कोदो और चावल का भात है, जिसे मौसमी शाक के साथ सामान्यतः खाया जाता है। वे भात के साथ उड़द, मूँग, कुल्थी आदि की दाल या वनीय कन्द-मूल, भाजी आदि भी खाते हैं। माँसाहारी हैं। अण्ड़े, मछली, मुर्गी, बकरी, खरगोश आदि खाते हैं। त्योहार, उत्सव, जन्म, विवाह, आयोजन आदि के अवसर पर महुआ शराब पीते हैं। पुरूष बीड़ी पीते हैं।

सौंता जनजाति के लोग आदिम कृषि, वन उपज संग्रह, मजदूरी, बाँस हस्तशिल्प आदि पर आश्रित हैं। पहले शिकार भी करते थे। यह लोग कोदो, कुटकी, धान, मूँग, उड़द, तुवर, तिवड़ा, तिल आदो बोते हैं। वनों से महुआ, चार, गोन्द, तेन्दूपत्ता, हर्रा, लाख आदि एकत्र करते हैं। यह लोग बाँस हस्तशिल्प से टोकनी आदि बना कर बेचते हैं। वर्षा काल में स्वयं के उपयोग हेतु मछली भी पकड़ते हैं।

यह जनजाति भी पितृवंशीय, पितृसत्तात्मक और पितृनिवास स्थानिय की परम्परा का पालन करती है। इनमें दो विभाजन हैं- छत्तीसगढ़या और उड़िया। जो लोग 7-8 पीढ़ी से यहाँ हैं वे छत्तीसगढ़िया और 2-3 पीढ़ी से यहाँ हैं वे उड़िया कहलाते हैं। इनके गोत्र बर्हिविवाही हैं। गोत्र हैं- पोन्दरू, घुरवा, मरकाम, सोनवानी, तेलासी, लवदरिया, सिराठिया, भैंसा, सुआ, बाघ आदि। सभी गोत्र प्रकृतिक जीव या निर्जीव वस्तुओं पर आधारित हैं। वे इनसे अपना सम्बन्ध दर्शाते हैं और इसकी पूजा भी करते हैं। टोटम है, पर अब उसका स्पष्ट प्रभाव घटता लगता है।

---

[202] आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की टी.के.वैष्णव व्दारा सम्पादित पुस्तिका छतीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियाँ

संतानोपत्ति को ईश देन माना जाता है। रजस्वला स्त्री को अपवित्र मानते हैं। वह खाना बनाने, पानी भरने, पूजा करने आदि कार्यों के लिए वर्जित मानी जाती है। गर्भावस्था में कोई संस्कार नहीं है। प्रसव घर पर सुइन दाई द्वारा करा जाता है। शिशू नाल वह ही काटती है। जिसे घर पर ही गाड़ते हैं। प्रसूता को छिन्द जड़, कुल्थी, सरई छाल, ऐठीमुड़ी गोन्द, सोंठ और गुड़ से बना काढ़ा पिलाते हैं। रिश्तेदारों को भोजन कराते हैं।

विवाह की उम्र, लड़कों में 12-18 और लड़कियों में 10-16 वर्ष है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। विवाह में अनाज, दाल, गुड़, तेल, नगद आदि सुक भरने के रूप में दिए जाते हैं। विवाह के चरण हैं- मंगनी, फलदान, विवाह, गौना। वधु को लुगड़ा, पोलका दिया जाता है। विवाह में फेरा लगाने की रस्म सौंता जनजाति का मुखिया पूरी कराता है। इनमें विनिमय, सहपलायन, घुसपैठ, सेवा विवाह भी मान्य है।

शव गाड़ते हैं। सम्पना और प्रतिष्ठित मृतक को जलाते भी हैं। ग्यारहवें दिवस शुध्दि और पूर्वज पूजा कर भोज देते हैं। द्वितीय वर्ष के पितृपक्ष में और मृत्यु तिथी को पानी तर्पण कर दाल, भात और बड़ा उसके नाम से रखते हैं।

सौंता में भी पारम्परिक जाति पंचायत है। इसका प्रमुख गौंटिया कहलाता है। यह वंशानुगत पद है। जाति पंचायत अराध्य पूजा व्यवस्था, विवाह विवाद, अनैतिक सम्बन्ध विवाद, झगड़ों आदि का निराकरण करती है।

सौंता जनजाति के अराध्य हैं- ठाकुर देव, बूढ़ा देव, ग्राम देवता, धरम देवता, डिहारिन माई, खूंट देव, शीतला माता, कंकालिन माता, सूरज नारायण, चन्दा, धरती माता, पनघट, बागह देव, नाग देव, सभी हिन्दू अराध्य आदि। प्राकृतिक और जीवन वस्तुओं को पूज्य मानते हैं। अराध्य को शराब चढ़ा, मुर्गे की बलि देते हैं। जादू, टोना, भूत, प्रेत, पुर्नजन्म आदि को मानते हैं।

इनके त्योहार हैं- हरेली, रथदूज, पोला, पितर, नवाखाई, दशहरा, दीपावली, होली आदि। नृत्य हैं- करमा, बिहाव, पड़की (दीपावली पर लड़कियों द्वारा), रहस (होली पर लड़को द्वारा)। नृत्य के समय मांदर, मंजीरा आदि बजाते हैं। लोक गीत हैं- बिहाव, करमा, सुआ आदि।

शिक्षा कम है। विकास अनुक्रम में परिवर्तन आए हैं। लोक कला, रहन-सहन, खान-पान, वेष-भूषा आदि बदली है। अर्थाभाव प्रमुख समस्या है।

27. सवराः-

सवरा जनजाति के लोग छत्तीसगढ़ के अतिरिक्त उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, बिहार आदि में भी हैं। वर्ष 2001 में इनकी जनसंख्या, छत्तीसगढ़ में, 104,718 थी और यह लोग रायपुर सम्भाग के रायपुर और महासमुन्द जिलों तथा बिलासपुर सम्भाग के रायगढ़ और बिलासपुर जिलों में निवासरत थे।[203]

203 आदिम जाति अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण संस्थान,रायपुर की टी.के.वैष्णव व्दारा सम्पादित पुस्तिका छतीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियाँ

सवरा भारत की प्राचीन जनजाति है। इसे भी कोलेरियन समूह में माना जाता है। इस जनजाति को द्रविड़ और मंगोल, दोनों से, उत्पन्न माना जाता है। यह लोग अपनी उत्पत्ति रामायण आख्यान से प्रसिद्ध शबरी से मानते हैं। महाभारत में भी सबर जाति का उल्लेख आता है। इन जातियों (या जनजातियों) का "कोल' और "शबर' नाम मिलता है। "शबर' घृणासूचक शब्द नहीं रहा है। यह शब्द संस्कृत-ग्रन्थों में प्राय: वहां आया है, जहाँ इन जातियों से अच्छे सम्बन्ध के प्रसंग में चर्चा है। विन्ध्य क्षेत्र की "सहरिया' झारखण्ड की "सौरिया' और उड़ीसा, छत्तीसगढ़, कर्नाटक तथा झारखण्ड की "सावरा' आदि जातियों के नाम इसी शब्द से सम्बद्ध हैं। इन्हीं शब्दों को संस्कृत में "शबर' रुप प्रदान किया गया है।[204]

रायपुर सम्भाग के सावरा लोग अपनी उत्पत्ति रामायण आख्यान से प्रसिद्ध वानर राज सुग्रीव से मानते हैं। इनकी उत्पत्ति हेतु दंत कथा भी है- मनुष्य को कृषि प्रशिक्षण देने हेतु महादेव ने हल बनाया। सवर जाति के पूर्वजों को, इस हेतु, कुल्हाड़ी से वन काट साफ करने को आदेशित किया। वे इस दरमियान नन्दी को हल के पास छोड़ दूसरा बैल लेने गए। सबर द्वारा वन काटने का कार्य किया और तबा उसे तीव्र भूख लग आई। अन्य खाद्य सामग्री नहीं मिलने के कारण नन्दी को मार कर खा लिया गया। महादेव बापस लौटे। वन सफाई का कार्य देख, प्रसन्न हो, सबर को तंत्र-मंत्र और जड़ी-बूटी का ज्ञान दिया। बाद में नन्दी के विषय में जान उसे और उसके वंशजों को भूखे रहने का श्राप दिया। इस तरह गरीबी को सवरा नियति से जोड़ दिया गया है।

यह लोग ग्रामों में अन्य जनजाति यथा- बिंझवार, कोन्ध, खरिया कंवर आदि के साथ निवास करते हैं। इन ग्रामों में अन्य जातियाँ यथा- कोलता, अघरिया, धोबी, अहीर, ब्राह्मण आदि भी निवास करती हैं। इनके भी आवास भी मिट्टी, बाँस, काष्ठ और खपरैल के बने होते हैं, जिसमें दो-तीन कक्ष होते हैं। कमरे में देव स्थान और कोठी का स्थान सुरक्षित होता है। सामान्यतः दीवारे श्वेत या पीली मिट्टी से और फर्श गाय के गोबर से लीपा जाता है। पशु कोठार पृथ्क होता है।

घर पर अन्न भण्डारण की कोठी, अन्न पीसने की चक्की, कूटने का मूसल, रसोई के बर्त्तन, चारपाई, ओढ़ने-बिछाने-पहनने के वस्त्र, चुल्हा, कृषि उपकरण, कुल्हाड़ी, मछली पकड़ने का चेरिया आदि होते हैं।

प्रत्येक प्रातः महिलाएँ घर की सफाई करती हैं। इस जनजाति के लोग प्रतिदिन बबूल, हर्रा, करंज, नीम आदि से दातौन और तदुपरांत स्नान करते हैं। पुरूष बाल कटे हुए रखते हैं। केश चिकनी मिट्टी या साबुन से धो तेल लगा कंघी करते हैं। महिलाएँ चोटी और जूड़ा बनाती हैं। वे हस्तशिल्प से गुदना गुदवाती हैं। आभूषण पहनती हैं। बिछिया, पैरपट्टी (पैर), करधन, ऐंठी (हाथ), पहुँची (बाहु), चेन, हमेल (गला), खिनवा (कान), झुमका, फूली (नाक) आदि गिलट के आभूषण पहने जाते हैं।

सवरा पुरूष पंछा और बंड़ी तथा महिलाएँ लुगड़ा पहनती हैं। अब ब्लाउज भी पहाना जाने लगा है।

यह लोग सामान्यतः चावल और कोदो का पेज या भात खाते हैं। इसके साथ उड़द, तुअर या कुल्थी दाल या मौसमी शाक भी खाते हैं। माँसाहारी हैं और कभी-कभी अंड़ा, मुर्गा, मछली, बकरा आदि खाते हैं। महुआ शराब पीते हैं। पुरूष तम्बाखू को पत्ते में लपेट चोंग़ी पीते हैं।

---

[204] पूनम मिश्र- मुण्डा भाषा:एक परिचय (http://tdil.mit.gov.in/CoilNet/IGNCA/jk017.htm)

इनका आर्थिक जीवन पिछड़ी कृषि, वन उपज संग्रह, खाद्य संकलन, मजदूरी आदि पर निर्भर है। कोदो, धान, मूँग, उड़द, अरहर, तिल, आदि उगाते हैं। महुआ, टोरी, तेन्दूपत्ता, हर्रा, गोन्द, लाख, चार, सरई बीज आदि वन से संग्रह कर बेचते हैं। वनों से कन्द, मूल, फल, भाजी स्वयं के उपयोग हेतु एकत्र करते हैं। वर्षा में स्वयं के उपयोग हेतु मछली पकड़ते हैं।

सवरा लोगों में महासमुन्द और रायगढ़ जिलों में मुख्यतः तीन उपजातियाँ हैं- कला पीड़िया (बड़े सवरा), आड़े सवरा और ठाकुर सवरा (छोटे सवरा)। तीनो उपजातियाँ अंतः विवाही समूह हैं। यह उपजातियाँ गोत्रों में विभक्त हैं। यह हैं- भैंसा, भोई, बाघ, कुन्दला, वनमूला, बींछी, बगुला या हंसराज, नाग, कलशा, सूरजवंशी, गुरिया, बाहरा, भाटिया, हथिया आदि। इस जनजाति में भी पितृवंशीय, पितृसत्तात्मक्ता और पितृवंश स्थानिय के गुण हैं।

इस जनजाति में भी गर्भावस्था में कोई संस्कार नहीं है। प्रसव पति गृह में परिवार की बुजुर्ग महिला द्वारा कराया जाता है। नाल सुंतई (सीप) से काटते हैं। जच्चा को कुल्थी दाल, खम्हार छाल का काढ़ा, सोंठ, पीपर, गुड़, नारियल खाने को देते हैं। छठी पर शुद्धी करते हैं। जच्चा-बच्चा को स्नान करा नवीन वस्त्र पहनाते हैं। रिश्तेदारों और मित्रोंको भोजन कराते और शराब पिलाते हैं।

इस जनजाति में सामान्यतः लड़कों की विवाह उम् 14 से 19 और लड़कियों में 12 से 16 वर्ष है। विवाह प्रस्ताव वर पक्ष रखता है। प्रस्ताव स्विकृत्त होने पर वधु पक्ष को सूक का अनाज, शगुन रूपए, गुड़, दाल, चिवड़ा, साड़ी आदि दी जाती है। विवाह रस्म जाति के सियान या गारिया (बैगा) द्वारा पूर्ण कराई जाती है, विशेष कर फेरे की। इनमें विनिमय, सेवा विवाह, घुसपैठ, सहपलायन, विधवा पुर्नविवाह, देवर-भाभी पुर्नविवाह आदि को भी सामाजिक मान्यता हैं।

सवरा लोग शव जलाते हैं। अस्थियाँ महानदी में विसर्जित करते हैं। तीसरे दिन पुरूष सदस्य मुण्ड़न कराते हैं। घर की पुताई आदि कराते हैं। मृत्यु भोज या तो तीसरे दिन या दसवें दिन देते हैं।

इनमें भी पारम्परिक जाति पंचायत है। इसके पदाधिकारी महासमुन्द जिले में मुक्कदम और दीवान हैं। मुक्कदम प्रमुख और दीवान सहयोगी है। इसमें विवाह, तलाक, अनैतिक सम्बन्ध, उत्तराधिकार, बंटवारा आदि के प्रकरण पारम्परिक तरीके, सामाजिक भोज और जुर्माना लेकर, से निराकृत्त किए जाते हैं। इअसके ऊपर परगना जाति पंचायत है। इसमें सभापति और कोषाध्यक्ष होता है। वे अंर्तजातिय विवाह, विवाह विच्छेद के अनसुलझे प्रकरण आदि विवादो का निराकरण करते हैं।

सवरा जनजाति के अराध्य हैं- जगन्नाथ भगवान, ठाकुर देव, करिया धुरूवा, दूल्हा देव, माता देवाला, शबर शबरी, घटवालिन, साहड़ा देव, भैंसासुर, समलाई मंगला, खड़ापाठ, पुरूआ पाठ, सभी हिन्दू अराध्य, सूर्य, चन्द्र, धरती, नदी, पर्वत्त,वृक्ष, नाग आदि। भूत-प्रेत, जादू-टोना, आत्मा, पुर्नजन्म, झाड-फूँक आदि पर विश्वास है। अराध्य पूजा में मुर्गा या बकरे की बलि देते हैं।

यह लोग रथयात्रा, हरियाली, नागपंचमी, जन्माष्टमी, नवाखाई, दशहरा, दीपावली, होली आदि त्योहार मनाते हैं। विवाह, रहस (होली पर) आदि नृत्य करते हैं। रामधुनी, रामायण, भजन आदि गाते हैं। करमा, ददरिया आदि भी गाते हैं।

शिक्षा कम है। विकास कार्यक्रमों, शिक्षण, संचार, यातायात और बाह्य सम्पर्कों आदि के कारण इस जनजाति के रहन-सहन, विश्वास, खान-पान, वस्त्र विन्यास, कृषि पद्धति, लोक कला आदि में परिवर्त्तन आया है।

इनकी भी प्रमुख समस्या अर्थ अभाव की ही है। शिक्षा की कमी, कुपोषण, अन्ध विश्वास, पिछड़ी श्रम साध्य कम उत्पादक कृषि, रोग उपचार का अभाव आदि उसकी अनुषाँगि इकाई की तरह साथ हैं।

(तीन). अनुसूचित जातियाँ:-

विगत पृष्ठों में हमने पाँच विशेष पिछड़ी जनजातियों का विवरण दिया था। उसके उपराँत हमने शेष अन्य 27 जनजातियों की चर्चा की। छत्तीसगढ़ राज्य की जनजातियाँ उन्नत नहीं हैं। कुछ लोग राजगोंड़ों, उराँव, बिंझवार, हलबा आदि में विकास के प्रति आग्रह देखते हैं।

जनजातियों का प्रवर्ग क्षेत्र मूल निवास के प्रवर्ग से जोड़ा जाता है। भारतीय हिन्दू वर्ण व्यवस्था के तहत यह लोग कभी क्षत्रीय वर्ण में तो कभी अंतिम दलित वर्ण में भी गिने जाते हैं। अभी तक धर्म और वर्ण विभाजन की यह धारणा, जनजातियों के मुद्दे पर, पूर्ण स्पष्ट नहीं है।

भारतीय जातिय व्यवस्था का स्थापित और व्यावासय जनित सुस्पष्ट विभाजन अनुसूचित जाति प्रवर्ग से प्रारम्भ होता है। यह सभी जातियाँ हिन्दू धर्म में हैं। यह जाति व्यवस्था इस धर्म का स्थापित लक्षण है। यह लोग हिंदू धर्म मानते हैं। यह व्यवसाय आधारित विभाजन ही जाति समूह में बदला। भारत हिमालय और समुद्र से घिरा होने के कारण अलग सा था। श्रम-विभाजन की परम्परा जाति प्रथा के रूप में पुष्त हुई। जातियाँ सुस्पष्ट और स्थापित रहीं। इसका निर्धारण जन्म से ही माना गया। अन्य कोई आधार नहीं माना गया। अनुसूचित जाति वर्ग की समस्त जातियाँ, वर्ण व्यवस्था के अंतिम पायदान पर ही आईं। समय-समय पर इन्हें विभिन्न संज्ञाएँ मिलीं। यथा- गाँधी जी द्वारा हरिजन, शासन द्वारा अनुसूचित जाति, वर्ण विभाजकों द्वारा शूद्र आदि। अब सर्वाधिक प्रचलित संज्ञा दलित जातियों की है।

छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जातियों की उपस्थिति पर्याप्त है। जे.डी.बेगलेर ने तो कल्पना की ऊँची उड़ान भरी। उसका मत है कि, एक कथित बिहारी जनश्रुति के अनुसार जरासंघ के शासन में दलित अंत्यज़ों के छत्तीस (36) घर दक्षिण, बेगलर के अनुसार दक्षिण अर्थात छत्तीसगढ़, चले गए और वहां बसे। इसी छत्तीस घर से छत्तीसगढ़ बना और इसी कारण से छत्तीसगढ़ में दलित अंत्यजों की संख्या अधिक है।[205]

वर्ष 2001 की जनगणना में इनकी जनसंख्या 2,418,722 थी। यह राज्य की कुल जनसंख्या का 11.61% है।

अनुसूचित जातियाँ पारम्परिक जातिगत व्यवसायों, जो सामान्यतः अस्वच्छ व्यवसाय हैं, को अपनाती हैं। यह व्यवसाय चिन्हाँकन 1931 की जनगणना में किया गया था और वह ही अब तक मान्य है। उसके उपराँत अब 2011 की जनगणना जाति आधार पर प्रस्तावित हुई है।

छत्तीसगढ़ में इन समूहों की पृथ्क-पृथक जनसंख्या में पर्याप्त अंतर है। चमार 10 लाख (1 मिलियन) से ऊपर हैं और देवार सात हजार से भी कम।

जातियों के मध्य जनसंख्या, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, साक्षरता, शिक्षा आदि में अंतर है। सतनामियों आदि में जागरूकता और विकास की ओर ललक है, तो देवार अभी भी भिक्षावृत्ति पर ही टिके हुए हैं।

छत्तीसगढ़ राज्य में तकनीकी रूप से 43 जातियों को अनुसूचित जाति प्रवर्ग में रखा गया है। इनमें से 32 जातियाँ या तो छत्तीसगढ़ में पाई ही नहीं जाती हैं या नगण्य प्राय हैं। इस प्रकार अनुसूचित जाति प्रवर्ग की मात्र 11 जातियाँ बचती हैं, जो छत्तीसगढ़ राज्य में सामान्यतः दिखती हैं। इनमें से कुछ जातियों की जनसंख्या तीन हजार से भी कम है। जैसे- ओधेलिया और बेलदार (सोनकर)।

उपरोक्त चिन्हित 11 जातियों की चर्चा आगे की जा रही है।

---

[205] तेलंग- छत्तीसगढ़ी बोली का अध्ययन,पृ.3

1. औधेलिया :-

छत्तीसगढ़ राज्य में औधेलिया जाति के लोग अल्प संख्या में ही हैं। वह भी मात्र बिलासपुर सम्भाग के बिलासपुर जिले में। 1981 की जनगणना में इनकी जनसंख्या मात्र 2,429 ही थी।[206]

औधोलिया जाति के लोग सुअर पालन के कार्य के अतिरिक्त मजदूरी भी करते हैं।

यह लोग आमतौर पर ग्राम सीमा पर निवास करते रहे हैं। इनके आवास गृह कच्चे होते हैं और सामान्यतः मिट्टी के बने होते हैं। छत खपरैल की होती है। घर के आगे और पीछे आँगन रखने का प्रयास करते हैं, जिससे आवश्यकता पड़ने पर सुअर पालन में सहायता मिले।

यह लोग हिन्दू धर्म के अराध्यों को मानते हैं और इस धर्म के त्योहार मनाते हैं।

भोजन में चावल इनका मुख्य आहार है। स्थानिय सब्जियाँ खाते हैं। माँस और मदिरा के प्रति रूझान है।

औधोलिया परिवार पितृसत्तात्मक हैं।

2. बसोरः-

बसोर अनुसूचित जाति के लोगों की भी संख्या, छत्तीसगढ़ में कम है। इनका लगभग पूर्ण जीवकोपार्जन हस्तशिल्प पर निर्भर है। यह लोग बाँस हस्तशिल्प में निपुण होते हैं। उसके बर्त्तन, सजावटी और उपयोगी समान आदि बनाने के लिए जाने जाते हैं। बसोर लोग ढ़ोल बजाने का भी कार्य करते हैं। इन्हें बंसोर, बुरूड़, बंसोड़ी, बांसफोर और बसार भी कहा जाता है।

मध्य प्रदेश को सम्मलित करते हुए भी 1991 में इनकी जनसंख्या 16,292 ही थी।[207] हालाँकि एक स्रोत में इनकी जनसंख्या भारत में 9 लाख मान, छत्तीसगढ़ में 18 हजार अनुमानित कर 13 हजार को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला भी माना गया है।[208]

बसोर जाति की व्युत्पति डोम जाति से मानी जाती है। डोम प्रचीन जाति है और कई जातियों और उपजातियों की व्युत्पति इससे हुई, जिसमें युरोपीय जिप्सी जातियाँ भी सम्मलित हैं।[209] एच.एम.ईलियट डोम को भारत की मूल जाति मानते हैं। राबर्ट वाने रस्सेल्ल का मानना है कि कंजर, बेड़नी, सांसी, मिरासी जैसी घुमंतु और वेश्यावृत्ति में लिप्त जातियाँ बंगाल की डोम जाति से ही निकलीं और इनसे अन्य देशों के जिप्सी।[210] यह लोग सेनाओं आदि के काफिले के साथ दूर देशों में जाते थे और वहीं बस जाते थे।[211] इस

---

[206] छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियाँ (डा.टी.के.वैष्णव)

[207] छत्तीसगढ़ आदिम जाति कल्याण विभाग की अ.जा. की सूचि पुस्तिका में उल्लेखित

[208] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[209]निकोलस साउल,सूसन टेवुट्ट,गियरसन,फ्रिंक,जोयजी,फिसेल,टरनर,सम्पसन,रूड़िग़र,हैनकाक आदि का मत [http://www.britannica.com/Ebchecked/topic/168403 /Dom , Grierson(1888)-Fournal of the Gypsy lore socity और Nicholas saul,Susan Tebbutt-The role of the Romanies:Images and counter-images of “Gypsies”]

[210] R.V.Russell and Hira lal-The Caste and Tribe of the Central provinces of India)

[211] The Sansis of Punjab; a Gypsy and De-notified Tribe of Rajput Origin, Maharaja Ranjit Singh- The Most Glorious Sansi, pp 13, By Sher Singh, 1926-, Published by , 1965, Original from the University of Michigan,   Tribalism in India, pp 160, By Kamaladevi Chattopadhyaya, Edition: illustrated,

बिन्दू पर पृथ्क चर्चा आगे डोम पर विवरण देते समय की गई है। जी.एस.घुरे यह मानते हैं कि, बसोर जाति की व्युत्पति डोम जाति से ही हुई, हालाँकि वे लोग इनसे और धोबी जाति से दूरी बनाते हैं।[212]

यह लोग ग्रामवासियों के साथ गाँवों में निवास करते हैं। । बसोर महिलाएँ दाई का कार्य करने में माहिर मानी जाती हैं।

बुरूड़ या बसोर संज्ञा बाँस से ही बनी है पहले यह लोग वनों से बाँस लाते थे, अब इन्हें वन विभाग द्वारा रियायती दरों पर बाँस प्रदाय किया जाता है।

इनके घर छोटे और मिट्टी के बने होते हैं। इसमें परछी और आँगन रखा जाता है, जहाँ बैठ कर बाँस का कार्य करते हैं। इनके घरों में इनके निर्माण के उपकरण अवश्य होते हैं।

बसोर परिवार पितृसत्तात्मक होते हैं। यह लोग हिन्दू अराध्यों को मानते हैं और हिन्दू त्योहारों को मानते हैं।

3. बेलदार (सोनकर) :-

बेलदार या सोनकर जाति के लोग भी, छत्तीसगढ़ में, कम संख्या में हैं। 1991 में मध्यप्रदेश को मिला कर मात्र 2,976 ही थे।[213] यह लोग रायपुर सम्भाग और बिलासपुर जिले में हैं।

इनका मुख्य कार्य ज़मीन खोदने की मज़दूरी करना रहा है। पहले यह लोग चूने के पत्थर और मिट्टी गधों पर ढ़ोते थे और इसी कारण बेलदार और गधेरा कहलाते थे। यह लोग अब मजदूरी करने लगे हैं और मिट्टी खोदने के पारम्परिक कार्य को मजदूरी से जोड़ लिया है।

इनके घर मिट्टी के बने होते हैं, जिस पर खपरैल की छत होती है।

इनका पारिवारिक ढ़ाँचा भी पित्तृसत्तात्मक है।

हिन्दू धर्म के अराध्यों को मानते हैं और त्योहार मानाते हैं।

4. भंगी (मेहतर, बाल्मीकि):-

भंगी जाति के लोग, छत्तीसगढ़ राज्य के सभी जिलों में पाए जाते हैं। महात्मा गाँधी ने इन्हें ही हरिजन कहा था। इन्होंने स्वयं को बाल्मीकि कहना अपनाया। बाल्मीकि को संस्कृत्त रामायण का रचयिता और आदि या प्रथम कवि माना जाता है और यह धारणा रही है कि, वे इसी जाति के थे। भंगी, मेहतर,

---

Published by Vikas, 1978, Original from the University of Michigan, Sociological Bulletin,pp 97, By Indian Sociological Society, Published by Indian Sociological Society., 1952, Indian Librarian edited by Sant Ram Bhatia,pp 220, Published by , 1964 Item notes: v.19-21 1964-67, Original from the University of Michigan, "Two, Ranjit Singh who seemingly got “total ascendancy” in Punjab was not a Jat but a Sansi...", Sangat Singh, MCLEOD AND FENECH AS SCHOLARS ON SIKHISM AND MARTYRDOM, Presented in International Sikh conferences 2000 , www.globalsikhstudies.net, The Sikhs in History, pp 92, By Sangat Singh, Edition: 2, Published by S. Singh, 1995, Original from the University of Michigan और Journal of the Gypsy Lore Society , Page 114, Gypsy Lore Society - 1912

[212] जी.एस.घुरे

[213] छत्तीसगढ़ आदिम जाति कल्याण विभाग की अ.जा. की सूचि पुस्तिका में उल्लेखित

बाल्मीकि, लालबेगी और धारकर एक ही हैं। स्वीपर संज्ञा भी इसी जाति हेतु प्रयुक्त होती है। पारम्परिक रूप से सफाई, मैला उठाना और हटाना आदि इनका मुख्य व्यवासाय रहा है।

1991 में इनकी जनसंख्या, मध्य प्रदेश सहित, 13,151 थी।[214] अर्थात मात्र छत्तीसगढ़ में यह कम ही होंगें, परंतु एक अन्य स्रोत में इनकी जनसंख्या भारत में 43.65 लाख मान, छत्तीसगढ़ी बोलने वालों की संख्या 15 हजार बताई गई है।[215]

कभी यह लोग सर्वाधिक रूप से अछूत माने जाते थे। संडास साफ करना, शवों (पशु और मानव दोनों) को हटाना, सफाई करना, मैला उठाना आदि इनके कार्य रहे हैं।[216] शुष्क शौचालयों, बूचड़खानों आदि के कारण अब स्थिती में बदलाव आया है। भंगी दलितों में भी सबसे नीचे थे।[217]

प्रसिद्ध उपन्यासकार अमृत्त लाल नागर उपन्यास नाच्यो बहुत गोपाल में यह तथ्य सामने लाते हैं कि, प्रारम्भिक विदेशी आक्रांतओं ने पराजित शासक जातियों की महिलाओं को तो अंक शायनी बनाया, पर पुरूषों को मैला उठाने को बाध्य कर अपमानित किया। इस मान भंग के कारण वे भंगी संज्ञा को प्राप्त हुए, परंतु अपने को मूल मैला उठाने वालों से ऊपर समझने के कारण महत्तर मानने लगे, जिससे मेहतर संज्ञा बनी।[218]

भंगी हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, मुख्यतः हनुमान की। हिन्दू त्योहार मनाते हैं। कुछ ने इसाई और बौद्ध धर्म भी अपना लिया है। हिन्दू घरों से इन्हें त्योहारों पर जजमानी का खाना और घरेलू सामान उपहार में मिलने की परम्परा रही।

यह लोग गाँव से बाहर निवास करते रहे हैं। अब मजदूर और कारखानों आदि में श्रम करने लगे हैं। इनके परिवार भी पितृसत्तात्मक हैं। घर छोटे और मिट्टी के बने हैं।

5. चमारः-

चमार छत्तीसगढ़ की प्रमुख अनुसूचित जाति है। चमार में चमारी, बैरवा, भाम्बी, जाटव, मोची, रेगर, नोना, रोहीदास, अहिरवार, चमारमांगन, रैदास, सतनामी, रामनामी, सूर्यरामनामी और सूर्यवंशी आते हैं।

1991 में, मध्य प्रदेश सहित, इनकी जनसंख्या 1,075,734 थी। एक अन्य स्रोत में इनकी जनसंख्या भारत में 4 करोड़ 80 लाख से कुछ अधिक मान, छत्तीसगढ़ में 20 लाख अनुमानित कर साढ़े 12 लाख को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला भी माना गया है।[219] यह जाति छत्तीसगढ़ के सभी जिलों में है। यह लोग रायपुर सम्भाग में अधिक केन्द्रित हैं।[220]

इस जाति में, छत्तीसगढ़ राज्य में, अलग-अलग समूह पृथ्क-पृथ्क कार्य करते हैं। सतनामी और रामनामी समुदाय के लोग कृषि मजदूरी और मजदूरी का कार्य करते हैं। अन्य सभी समूह पारम्परिक चमड़ा हस्तशिल्प का कार्य करते हैं। यह लोग चर्म हस्तशिल्प में माहिर माने जाते हैं, विशेषकर जूते और चप्पल निर्माण में। अब मजदूरी भी करते हैं। भाम्बी उपसमूह ढ़ोल और नगाड़े बनाता रहा है, जो मन्दिर आदि में बजाए जाते रहे हैं।

---

[214] छत्तीसगढ़ आदिम जाति कल्याण विभाग की अ.जा. की सूचि पुस्तिका में उल्लेखित

[215] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[216] http://wikipedia.org/wiki/Bhangi

[217] संजीव खुदेश की पुस्तक सफाई कामग़ार समुदाय वाशिंगटन विश्वविद्यालय में पढ़ाई जाती है।

[218] अमृत्त लाल नागर-नाच्यो बहुत गोपाल

[219] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[220] छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जनजातियाँ (डा.टी.के.वैष्णव)

चमार संज्ञा की व्युत्पत्ति संस्कृत के चर्मकार शब्द से हुई। पहले यह जाति उत्तर भारत और नेपाल में केन्द्रित थी और प्रारम्भ में चपरासी के रूप में सर्वाधिक यह लोग ही सामने आए।[221] बलूच मोची जाट के रूप में भी सामने आए, जिसका अर्थ ऊँट सवार से है।

चमार भारत की दूसरे नम्बर की सर्वाधिक जनसंख्या वाली जाति है। अनुसूचित जातियों में यह जाति सबसे बड़ा दबाव समूह है। हालाँकि अनुसूचित जाति वर्ग में महार भी एक बड़ा जाति दबाव समूह है। परम्परागत रूप से यह जाति नीचे की जातियों में थी और गुर्जर के ठीक बाद। यह लोग महार और मंग लोगों से अपने को ऊपर मानते हैं। सामान्यतः दलित जातियों में अपने को, अन्य से ऊँचे मानते हैं। चर्म शोधन कार्य में लगे होने के कारण पहले अछूत माने जाते थे। आज यह विकासशील जाति है और इस प्रवर्ग में आरक्षण का सर्वाधिक लाभ भी इस जाति के लोग उठाते हैं। महारों को भी आरक्षण लाभ उठाने वाली विकासशील जाति माना जाता है।

यह माना जाता है कि, **चमार भारत की प्राचीनतम जातियों में से है और यह लोग भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व से यहाँ** रह रहे हैं। **इतिहासकार उन्हें ही सबसे प्राचीन और सच्चा हिन्दू मानते हैं। शेष लोग बाद में इस धर्म से जुड़े, वह भी यहाँ आकर बसने और रहने के कारण।** यह लोग पंजाब आदि में राजनीतिक और सामाजिक रूप से आगे भी हैं।

चमार हिन्दू धर्म का पालन करते और हिन्दू देवी-देवताओं को मानते हैं। अब कुछ सिक्ख, बौद्ध और इसाई हो गए हैं। कुछ ने आद्यधर्म, रविदासी और आर्य समाज जैसे आन्दोलनों को अपनाया है। निरंकारी एक नए तत्व के रूप में सामने आया है। छत्तीसगढ़ में इनका झुकाव सतनामी और रामनामी पंथ की ओर रहा है।

यह जाति राजनीतिक रूप से सशक्त जाति है। कुछ लोगों का मनना है कि, जिस तरह महारों ने अम्बेड़कर को समर्थन दिया था, उसी तरह इस जाति ने बहुजन समाज पार्टी को समर्थन दिया।

इस जाति में योद्धा और लड़ाकू होने के तत्व भी पाए जाते हैं। चमारों की कुछ उपजातियाँ क्षत्रियों से भी छिटक कर बनीं। भट्टी, तूर, चौहान, बरगुजार आदि को कुछ लोग इसी तरह का जाति समूह मानते हैं। इस तत्व को पहचान उपनिवेशवादी शासकों ने चमार रेजीमेंट तक का गठन किया। पाकिस्तान के शासक अयूब खान इसी रेजीमेण्ट के थे। 1857 के विद्रोह के नायक बाँके चमार, चेतराम, जाटव, बेलूराम आदि इस जाति के प्रसिद्द योद्धा माने गए।

छत्तीसगढ़ में सतनामी पंथ बहुत प्रसिद्ध हुआ। हिन्दुओं का सतनामी पंथ 1657 में हरियाणा के नरनौल से प्रारम्भ हुआ था। यह पंथ रविदास पंथ से निकला था। रविदास ने रैदास पंथ की स्थापना की थी। सतनाम का अर्थ भगवान के सत्य नाम से है। विशेष कर राम और कृष्ण से। सतनाम का शाब्दिक अर्थ सच्चा नाम है। राज्य में इसके अनुयाइयों की संख्या अधिक है, जो युग पुरूष गुरू घासी दास के प्रभाव को दर्शाता है। गुरू घासीदास ने सतनामी पंथ को छत्तीसगढ़ में स्थापित किया। कई तो माँस, मदिरा तक का त्याग कर देते हैं। मुगल काल में सतनामियों का विद्रोह हुआ था।

सतनाम अपनाने से छत्तीसगढ़ की दलित जातियों में उत्थान और सुधार आया।

झलकारी बाई झाँसी की रानी के स्थान पर लड़ी थी। माँगूराम आद्यधर्म की प्रवर्त्तक और ग़दर पार्टी के सदस्य थे।

कई लोगों के योगदान भी अप्रतिम रहे।

सामान्यतः माँसाहारी हैं। माँस और मदिरा से कई सतनामी दूर रहने का प्रयास करते हैं। विवाह एक-पत्नीत्व पर आधारित है। दहेज प्रथा है। विधुर विवाह अधिक ग्राह्य है, पर विधवा विवाह कम। शव को जलाते हैं। दसगात्र पर उसे चावल देते हैं।

6. चिकवा (चिकवी) :-

[221] http://wikipedia.org/wiki/Chamar

चिकवा या चिकवी जाति छत्तीसगढ़ मे है। 1991 में इनकी जनसंख्या 23,648 थी। हालाँकि इसमें मध्य प्रदेश भी समाहित है, पर इनका मुख्य संकेन्द्रण छत्तीसगढ़ में ही रहा है। यह लोग छत्तीसगढ़ प्रांत के बिलासपुर सम्भाग के रायगढ़ और सरगुजा सम्भाग के सरगुजा और जशपुर जिलों में हैं। यह हस्तशिल्पी जाति है। बुनकरी इनका पारम्परिक व्यवसाय है। यह लोग अधिकाँशतः बुनकरी द्वारा ही जीवकोपार्जन करते हैं।

इनके घरों में बुनकरी के औज़ार और बुनकरी का ताना-बाना लगाने का खड्डा अवश्य होता है।

यह जाति में भी पितृसत्तात्मक परिवार है। यह लोग हिन्दू अराध्यों के अराधक और इस धर्म के त्योहारों को मानाने वाले हैं।

7. देवार :-

देवार जाति का मुख्य कार्य या व्यवसाय भिक्षा माँगना है। यह लोग सुअर भी पालते हैं। इस जाति की महिलाएँ हस्तशिल्प से गोदना गोदने में निपुण होती हैं। यह उनका व्यवसाय है। छत्तीसगढ़ के लोग उनसे ही गुदना गुदवाते हैं, जो कि यहाँ की जनजातियों और जातियों का स्थाई आभूषण या गहना माना जाता है।

देवार लोग अत्यधिक गरीब हैं। यह लोग छत्तीसगढ़ के समस्त क्षेत्रों में हैं। रायपुर सम्भाग में इनका संकेन्द्रण अधिक है।1991 में इनकी जनसंख्या 6,279 थी।[222] हालाँकि इसमें मध्य प्रदेश भी समाहित है, पर इनका संकेन्द्रण छत्तीसगढ़ में ही है। एक अन्य स्त्रोत में इनकी जनसंख्या भारत में तीन लाख मान, छत्तीसगढ़ में 11 हजार अनुमानित कर कुल 3 लाख में से 14 हजार को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला भी माना गया है।

देवार लोग हिन्दू धर्म के वैष्णव मत को मानने वाले हैं। हिन्दू देवी-देवताओं की पूजा करते हैं और हिन्दू त्योहारों को मानाते हैं।[223]

8. डोम (डुमार, डोमे):-

डोम छत्तीसगढ़ में बिलासपुर सम्भाग के रायगढ़ और सरगुजा सम्भाग के सरगुजा और कोरिया जिलों में निवास करते हैं। 1991 में इनकी जनसंख्या 10,694 थी। हालाँकि इसमें मध्य प्रदेश भी समाहित है, पर इनका संकेन्द्रण छत्तीसगढ़ में ही है। हालाँकि एक स्त्रोत में इनकी जनसंख्या भारत में साढ़े 21 लाख से कुछ अधिक मान, 40 हजार को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला भी माना गया है।[224]

छत्तीसगढ़ में डोम जाति कला के व्यवासय में है। इनका मुख्य कार्य बाजा बजाना है। यह लोग सड़क सफाई का भी कार्य करते हैं। यह लोग मजदूरी और सड़कों पार गाकर भीख माँगने का भी कार्य करते रहे हैं। कला-संगीत से जीवकोपार्ज ही मुख्य कार्य रहा है। इनकी महिलाएँ घरों में भी कार्य करती रही हैं।

डोम जाति को जातिय इतिहास के विकास क्रम में महत्वपूर्ण स्थान हासिल है। कुछ अंवेषक डोम जाति की व्युत्पति किसी मूल जनजाति से मानते हैं। कई बार कुछ अंवेषक इन्हें परम्परागत ब्राह्मणवादी जाति व्यवस्था से इस लिए पृथ्क मानते हैं, क्योकि इनकी मान्यताएँ और विश्वास कुछ अलग हैं। हालाँकि

---

222 छत्तीसगढ़ आदिम जाति कल्याण विभाग की अ.जा. की सूचि पुस्तिका में उल्लेखित

223Sudhir Kumar Behara-Dewar:The cast and its identity (Insight Journal-Saturday,Sept.10,2005)

224 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

उनकी यह भी धारणा हैं कि, गाय की हत्या कर देने के कारण उनके भगवान ने, उन्हें गरीबी में रहने को श्रापित किया।

यह लोग हिन्दू धर्म का पालन करते हैं। सभी हिन्दू अराध्यों की पूजा करते हैं। इनके विशेष अराध्य हैं- बाबा रामदेव और भिंरो। राजस्थान में बाबा रामदेव का मन्दिर इनका मुख्य आकर्षन रहा है।

निकोलस साउल, सूसन टेवूट्ट, गियरसन, फ्रिंक, जोयजी, फिसेल, टरनर, सम्पसन, रूड़िग़र, हैनकाक आदि कई विज्ञ जन ने यह स्थापित किया है कि, **इसी डोम जाति से, युरोप आदि की, कई घुमंतु जिप्सी जातियों की व्युत्पति हुई।**[225] यह जिप्सी जातियाँ इसी कारण लोम और रोम संज्ञा का उपयोग करती हैं। सीरिया की जिप्सी जाति तो अपने आप को डोउम (डोम-Doum) ही कहती हैं।

जी.एस.घुरे यह मानते हैं कि, **बसोर जाति की व्युत्पति डोम जाति से** ही हुई, हालाँकि वे लोग इनसे और धोबी जाति से दूरी बनाते हैं। एच.एम.ईलियट इसे **भारत की मूल जाति** मानते हैं।

स्पष्ट है कि, **डोम अनुसूचित जाति में एक मुख्य जाति है, जिसने भारत की कई अनुसूचित जातियों की व्युत्पति के साथ मध्य एशिया और युरोप की कई जिप्सी जातियों की व्युत्पति में योग दिया। जिप्सियों की डोमरी और रोमानि बोली भी इन्ही से उत्पन्न हुई।**

राबर्ट वाने रस्सेल्ल का मानना है कि **कंजर, बेड़नी, सांसी, मिरासी जैसी घुमंतु और वेश्यावृत्ति में लिप्त जातियाँ बंगाल की डोम जाति से ही निकलीं और इनसे अन्य देशों के जिप्सी।**[226] यह लोग सेनाओं आदि के काफिले के साथ दूर देशों में जाते थे और वहीं बस जाते थे। कई विद्वान यह मानते हैं कि, पंजाब के प्रसिद्ध महाराज रणजीत सिंह सांसी थे।[227]

डोम लोगों में भी पितृसत्तामक परिवार हैं। इनके घर छोटे और मिट्टी के बने होते हैं। माँस-मदिरा का सेवन करते हैं।

9. गांड़ाः-

---

[225] http://www.britannica.com/Ebchecked/topic/168403 /Dom , Grierson(1888)-Fournal of the Gypsy lore socity और Nicholas saul,Susan Tebbutt-The role of the Romanies:Images and counter-images of “Gypsies”

[226] R.V.Russell and Hira lal-The Caste and Tribe of the Central provinces of India

[227] The Sansis of Punjab; a Gypsy and De-notified Tribe of Rajput Origin, Maharaja Ranjit Singh- The Most Glorious Sansi, pp 13, By Sher Singh, 1926-, Published by , 1965, Original from the University of Michigan, Tribalism in India, pp 160, By Kamaladevi Chattopadhyaya, Edition: illustrated, Published by Vikas, 1978, Original from the University of Michigan, Sociological Bulletin,pp 97, By Indian Sociological Society, Published by Indian Sociological Society., 1952, Indian Librarian edited by Sant Ram Bhatia,pp 220, Published by , 1964 Item notes: v.19-21 1964-67, Original from the University of Michigan, "Two, Ranjit Singh who seemingly got “total ascendancy” in Punjab was not a Jat but a Sansi...", Sangat Singh, MCLEOD AND FENECH AS SCHOLARS ON SIKHISM AND MARTYRDOM, Presented in International Sikh conferences 2000 , www.globalsikhstudies.net, The Sikhs in History, pp 92, By Sangat Singh, Edition: 2, Published by S. Singh, 1995, Original from the University of Michigan और Journal of the Gypsy Lore Society , Page 114, Gypsy Lore Society - 1912

गांड़ा जाति के लोग छत्तीसगढ़ के सभी जिलों में हैं। 1991 में इनकी जनसंख्या 204,086 थी। हालाँकि इसमें मध्य प्रदेश भी सम्मलित है, पर इनका संकेन्द्रण छत्तीसगढ़ में ही है। हालाँकि एक स्त्रोत में इनकी जनसंख्या भारत में 12 लाख मान, छत्तीसगढ़ में सवा तीन लाख अनुमानित कर सवा दो लाख को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला भी माना गया है।[228]

गांड़ा जाति हस्तशिल्प के पारम्परिक व्यवसाय में है और इनका कार्य बुनकरी का है। यह लोग कला-संगीत के व्यवसाय में भी हैं और बाजा बजाने का कार्य करते हैं। यह लोग ग्राम कोटवार भी बनते थे। अब मजदूरी करने लगे हैं।[229]

राबर्ट वाने रस्सेल्ल इनकी उत्पति छोटा-नागपुर की पान जनजाति से मानता है।[230]

यह लोग भी हिन्दू धर्म मानते और उसके अराध्यों की पूजा करते हैं। हिन्दू त्योहार मनाते हैं। इनके घर छोटे और मिट्टी के बने होते हैं।

10. घसिया (घासी):-

घसिया जाति के लोग छत्तीसगढ़ प्राँत के सभी जिलों में रहते हैं।1991 में इनकी जनसंख्या 72,140 थी।[231] हालाँकि इसमें मध्य प्रदेश भी सम्मलित है, पर इनका संकेन्द्रण छत्तीसगढ़ में ही है। एक अन्य स्त्रोत में इनकी जनसंख्या भारत में सवा चार लाख मान, छत्तीसगढ़ में 1.19 लाख अनुमानित कर 75 हजार को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला भी माना गया है।[232]

घसिया जाति के लोगों का मुख्य पारम्परिक कार्य घाँस काटना है और इस कार्य के कारण ही इस जाति को घसिया की संज्ञा मिली। यह लोग घासी भी कहलाते हैं।[233] घसियारा (घाँस काटने वाला) इसी से बना। यह लोग कोरिया आदि जिलों में बाजा बजाने का भी कार्य करते हैं, जिसे घसिया बाजा कहा जाता है।

यह लोग भी हिन्दू धर्म मानते और उसके अराध्यों की पूजा करते हैं। हिन्दू त्योहार मनाते हैं। इनके घर छोटे और मिट्टी के बने होते हैं।[234]

11. महार (मेहरा, मेहर):-

महार जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य के सभी जिलों में निवास करते हैं। 1991 में इनकी जनसंख्या 154,688 थी। हालाँकि इसमें मध्य प्रदेश भी सम्मलित है, पर इनका संकेन्द्रण छत्तीसगढ़ में ही है।[235]

---

[228] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[229] N.Patnaik-The Ganda,A Scheduled caste weaver community of westran Orissa

[230] R.V.Russell and Hira lal-The Caste and Tribe of the Central provinces of India,P.77

[231] छत्तीसगढ़ आदिम जाति कल्याण विभाग की अ.जा. की सूचि पुस्तिका में उल्लेखित

[232] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[233] E.W.Crooke-Tribe and castes of North westren provinces and Oudh

[234] Sir Athel stane Baines-ethnography:Castes and tribes

[235] छत्तीसगढ़ आदिम जाति कल्याण विभाग की अ.जा. की सूचि पुस्तिका में उल्लेखित;
छत्तीसगढ़ की अनुसूचित जातियाँ (डा.टी.के.वैष्णव)

हालाँकि एक स्रोत में इनकी जनसंख्या भारत में 87 लाख मान, छत्तीसगढ़ में पौने तीन लाक अनुमानित कर ड़ेढ़ लाख को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला भी माना गया है।[236]

महार लोगों का मुख्य व्यवसाय हस्तशिल्प का है। यह लोग बुनकरी के द्वारा जीवकोपार्जन करते हैं। यह लोग ग्राम कोटवार भी होते हैं।[237] अब यह लोग अनुसूचित जाति प्रवर्ग में सम्भवतः आरक्षण का लाभ उठाने वाले प्रमुख समूह हैं। यह इस प्रवर्ग का प्रमुख दबाव समूह भी है।

महार जाति के लोग मराठी भाषी महाराष्ट्र क्षेत्र से निकले हैं। महाराष्ट्र में इनकी जनसंख्या 9% तक है और वहाँ इसे मूल जाति तथा भूमिपुत्र सिद्धांत के तहत माना जाता है।[238]

चौदहवीं शताब्दी में महार संत चोखा मेला ने धार्मिक समारोहों में भाग लेने का मुद्दा उठाया था। वरकारी पंथ उनसे और उनके परिवार से जुड़ा हुआ है। सोलहवीं शताब्दी में ब्राह्मण मराठी कवि एकनाथ ने इस बात पर चालीस कविताएँ लिखीं कि, काश मैं महार होता। सत्रहवीं शताब्दी में यह लोग शिवाजी की सेना में भी सम्मलित हुए। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और उन्नीसवीं शताब्दी में यह लोग उपनिवेशवादी शासकों की सेना में रहे, जिन्होंने पृथ्क महार रेजीमेंट भी बनाई। यह लोग रेल और आयुद्ध निर्माण फैक्टरियों में भी सम्मलित हुए और अभी भी हैं।[239]

महार लोग हिन्दू धर्म का पालन करते हैं और उसकी जाति एवं अछूत प्रथा के सबसे बड़े आलोचक हैं। वे, इस कारण, से बौद्ध और इसाई धर्म भी अपनाने लगे हैं। बौद्ध अधिक हुए हैं। डा. भीम राव अम्बेड़कर द्वारा बौद्ध धर्म अपनाने के कारण, इस बात को बल मिला।[240] एक स्रोत में छत्तीसगढ़ में मात्र 10 हजार महार इसाई बताए गए हैं।[241]

ड़ा.अम्बेड़कर के बौद्ध धर्म के सम्पर्क में आने कारण ही, बाद में, बौद्ध अशोक के अशोक चक्र और अशोक स्तम्भ मुखर रूप से सामने आए और अन्ततः भारत के राष्ट्रीय चिन्ह बने। महारों के बौद्ध धर्म अपनाने के कारण वे बौद्ध और नवबौद्ध भी कहलाने लगे हैं।

पहले महार लोगों की जीविका इनाम और बलूता (ग्रामोपज का अंश) में मिली भूमि और अन्न द्वारा चलती थी। वे बुनकरी कार्य तो करते ही थे, पर साथ ही ग्राम के संगीतकार और गायक भी होते थे। तदुपरांत इन्होंने औद्योगिक मजदूरी इतनी बड़ी संख्या में अपनाई कि, 1921 में मुम्बई की टेक्सटाईल मिलों का 12% मजदूर महार जाति का हुआ। हालाँकि यह बुनकरी से जुड़ा व्यवसाय ही था।

अम्बेड़कर के रचनात्मक प्रयासों से यह जाति अध्ययन और अध्यापन के प्रति अत्यधिक रूझान के साथ सामने आई और यह लोग आरक्षण का सर्वाधिक लाभ उठाने और शासकीय सेवाओं में पर्याप्त संख्या में आने में सफल रहे। प्रगतिशील माने जाते हैं।

इस जाति का समाज भी पितृ सत्तात्मक है।

(चार). अन्य पिछ्ड़ा वर्ग की जातियाँ:-

---

[236] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[237] http://www.britannica.com/Ebchecked/topic/ 357931/Mahar

[238] http://en.wikipedia.org/wiki/People-of-the-konkan-Division

[239] http://www.everyculture.com/South-Asia/Mahar-history-and-Culture-relations-html

[240] Jayshree Gokhale-Form Concessions to Cofrontations:The Politics of an Indian Untouchable Community

[241] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

छत्तीसगढ़ में अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त एक अन्य जाति समूह भी पृथ्क से चिन्हित है, जिसे अब अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियाँ कहा जाता है। इस वर्ग की जातियाँ भी अल्प विकसित और पिछड़ी हैं और कथित छोटी जातियाँ होने के कारण श्रम और हस्तशिल्प के कार्य भी इनके परम्परागत व्यवसाय हैं। कई मूल हस्तशिल्प भी इन जातियों का व्यवसाय हैं।

बी.पी.मण्ड़ल की अध्यक्षता वाले पिछड़ा वर्ग आयोग ने इस क्षेत्र का भ्रमण 1980 में किया। मण्ड़ल स्वयं भी, अब अन्य पिछड़ा वर्ग में सम्मलित जाति, अहीर, से थे। इस मुद्दे पर 1953 में काका कालेलकर आयोग ने भी कार्य किया था। भारतीय सविंधान की धारा 340 यह सुनिश्चित करती है कि, किसी भी सरकार हेतु इस वर्ग के उत्थान के लिए कार्य करना आवश्यक है।[242]

अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों से आशय आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़ी उन जातियों से है, जिन्हों ने कथित रूप से जन्म के आधार पर विपरीत परिस्थितियों का सामना किया और वे अनुसूचित वर्ग की जातियों में सम्मलित नहीं हैं। अतः सामान्यतः यह माना गया कि, इनमें से अधिकाँश के पास कम भूमि है या नहीं है और उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता के अवसर कम रहे हैं। इस आधार पर यह धारणा रही कि, मोटे तौर पर यह जातियाँ आर्थिक उपार्जन और जीवकोपार्जन हेतु सामान्य या अगड़ी जातियों पर ही अश्रित रहीं। अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों के भी अधिकाँश सदस्य ग्रामों में रहते हैं और अधिक श्रम वाले पारम्परिक व्यवसायों में ही लगे हैं।[243]

विश्व के लगभग सभी धर्मों का उदय एशिया में ही हुआ। यह एशिया की बौद्धिक क्षमता को इंगित करता है। धर्म सभी की बराबरी की सुनिश्चिता के साथ ही सामने आते हैं और वे किसी भी तरह के भेदभाव का विरोध करते हैं, फिर वह भेद लिंग, भाषा, जाति, समाज, धन या किसी अन्य प्रकार ही क्यों न हो। समानता और भेदभाव रहित धर्म तो सभी हैं, पर इसी पर विशेष ज़ोर देने वाले दो धर्म- सिक्ख और मुस्लिम- भी भारत में प्रचलन में हैं। पर भारत में उत्पन्न या बाहर से आया कोई धर्म भी अंततः भारतीय जाति प्रथा को अपना ही बैठा, चाहे उसकी मान्यताएँ कुछ भी रही हों। इसमें, उक्त दो सहित इसाई धर्म भी उसी लकीर पर चला। मुस्लिम ने तो इसे स्पष्टतः स्विकार भी कर लिया। इसे इस तथ्य के सशक्त इशारे के रूप में भी लिया गया कि, इस धर्म में जो व्यक्ति हिन्दू धर्म की जिस जाति या पेशे से गया वह सामान्यतः उसी में रहा। छत्तीसगढ़ की अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों की सूचि में मुस्लिम धर्म की भी 26 जातियाँ उल्लेखित हैं, भले ही उन्हें वर्ग या समूह की संज्ञा दी गई। सामान्यतः जाति को हिन्दू धर्म की प्रथा माना जाता है, पर अब यह अन्य धर्मों में भी मान्य हो गई है और वह भी सप्रयास।

मण्ड़ल कमीशन द्वारा अन्य पिछड़ा वर्ग के तहत 3,000 समूह चिन्हित किए गए। उन्होंने इन्हें अतिरेक पूर्ण ढ़ंग से कुल जनसंख्या का 52% निरूपित किया, जो बाद में भारतीय राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा 32% ही चिन्हित हुए। अब इसे इससे भी कम माना जाता है। अब 2011 की जनगणना जाति आधार पर हो रही है, इसके आँकड़े आने पर सही तथ्य सामने आ जाऐंगे। छत्तीसगढ़ में भी इनका प्रतिशत और अनुपात चिन्हित नहीं है। इसे 25-30% अनुमानित किया जाता है।

छत्तीसगढ़ राज्य में अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों के रूप में 92 जातियाँ सूचिबद्ध हैं। यह सूचि अविभाजित मध्यप्रदेश के समय की है। इसमें उनकी उपजातियाँ, वर्ग, समूह, पुकारे और चिन्हित किए जाने की संज्ञाएँ और नाम भी जोड़े गए हैं। इनमें कई जातियाँ या तो छत्तीसगढ़ में नहीं ही रहती हैं या नगण्य प्राय हैं। जैसे- तवायफ, भारूड़, बरई, सुत, दांगी, पिंजारा, आंजना, भुतिया, मीणा, भाट, हरबोला, गुर्जर, नायटा, पटका, सिकिलगर, बोवारिया, तुरहा, त्युर, रजड़, जादम, धोरिया, रूहेला, रेवारी आदि।

अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियाँ अधिकाँशतः कृषि या उससे सम्बद्ध और जनित व्यवासायों पर आश्रित रही हैं। इस वर्ग में हस्तशिल्प का कार्य करने वाली जातियाँ भी कई हैं। यथा-

---

[242] डी.डी.बसु-भारत का संविधान,पृ.384-385

[243] http://en.wikipedia.org/wiki/Other_Backward_Classes

बारी- पर्ण हस्तशिल्प (पत्तों से बर्त्तन, साज-सज्जा के समान आदि का निर्माण),
छीपा- वस्त्र छपाई और रंगाई,
चितारी- दीवारों पर चित्रकारी (भित्तिचित्र),
चुनकर या राजगीर- चूना, गारा का कार्य और भवन निर्माण,
बढ़ई- काष्ठ हस्तशिल्प,
बाया महरा या कौशल बया- बुनकर,
कोष्टा या देवांगन- बुनकर,
गड़रिया- बुनकार (ऊन, कम्बल),
सुनार- आभूषण हस्तशिल्प
लोहार- लौह हस्तशिल्प,
कड़ेरा- आतिशबाजी निर्माण,
लखेरा- लाख और काँच के सामान (चूड़ी आदि) बनाना,
पटका- रेशम धागे और वस्त्र बनाना,
सिकिलग़ार- शस्त्र पार धार देना और उनका निर्माण आदि।

अन्य पिछड़ा वर्ग में कला पर आश्रित जातियाँ भी है। यथा- वासुदेव (विरूदावली गायन), भाट (राजा के सम्मान में प्रशंसात्मक कविता लेखन, पाठ और विरूउदावली गायन), धोली (ढ़ोल वादन, पूजा, गायन), तवायफ (नाचने और गाने के द्वारा मनोरंजन), सरगटा (ढ़ोल वादन) आदि।

अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों में वह जातियाँ भी सम्मलित कर दी गई हैं, जो या तो जनजातियाँ हैं या उन जैसा ही व्यवहार करती हैं। यथा- बोवरिया (हालाँकि यह छत्तीसगढ़ में नहीं रहती), मानकर (इस जाति की निहाल जनजाति ही है), पनका, खैरूवा (खैरवार), लोढ़ा (तंवर), मोवांर, तेलंगा (तिलगा), गयार (परधनिया) आदि।

छत्तीसगढ़ के लिए घोषित इन अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों में से उन को चिन्हित किया जाए जो इस राज्य में रहती दिखती हैं, तो उनकी संख्या 35-40 ही होगी। कुछ अतिअल्पसंख्यक जातियाँ भी हैं। यथा- तेलंगा (तिलगा), रोतिया, असारा, भड़भूंजा, बारी, अनुसूचित जाति वर्ग के इसाई या बौद्ध धर्म अपनाने वाले लोग आदि। अतः छत्तीसगढ़ में स्पष्ट रूप से निवासरत जातियों को चिन्हित कर उन पर चर्चा की जा रही है, जो 21 हैं।

1. अहीर (राउत):-

आहीर जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य के सभी जिलों में निवासरत हैं। राज्य में इस जाति की पहचान राउत नाम से की जाती है, जिससे राउत नाचा नृत्य और उसका बिलासपुर उत्सव प्रसिद्ध है। अहीर जाति हेतु ब्रजवासी, गवाली, गोली, जादव, यादव, बरगही, बरगाह, ठेठवार, राउत, गोवरी, ग्वारी, गोवरा, गवारी, ग्वारा, महाकुल (राउत), महकुल, गोप, ग्वाली, लिंगायत नाम भी प्रचलित हैं।

यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि, इसमें सम्मलित यादव संज्ञा उस यादव से पृथ्क है, जो कि राजपूत होते हैं और यह भी कि, अहीरों द्वारा प्रयुक्त यह यादव शब्द क्षत्रीय राजपूत यदु वंश से उत्पन्न शब्द नहीं है।

अहीर जाति का पारम्परिक और जातिगत व्यवसाय पशु पालन है, विशेषकर दुधारू पशुओं का, उसमें भी गाय और भैंस, का पालन और उनसे प्राप्त दूध का विक्रय है। वे यह मानते हैं कि, उनके अराध्य सदा उनके पशुओं के पास होते हैं। यह लोग हिन्दू हैं, हिन्दू अराध्यों को मानते हैं और हिन्दू त्योहार मनाते हैं।

अहीर शब्द की व्युत्पति संस्कृत के अभीर से मानी गई है, जिसका अर्थ है- भीरू नहीं। प्राचीन अभीर लोग योद्धा थे, जो कृषि कार्य भी करते थे।[244] गाय दुहने के कारण, यह लोग, ग्वाल कहलाए। इस तरह की संज्ञाएँ व्यवसाय जनित थीं। पवित्र गाय से सम्बन्धित होने के कारण, इन्हें, विशिष्ट स्थान भी मिला।1931 की जातिगत जनगणना में भारत में 14 मिलियन (1 करोड़ 40 लाख) अहीर थे।[245] यह लोग नेपाल तक विस्तारित थे।

औपनिवेशिक शासन में योद्धा वर्ग में चिन्हित होने के कारण सेना और पुलिस में जाने का रूझान हुआ।[246] अपने आप को राजपूत यादव और यदुवंश से जोड़ने की इच्छा के कारण 1922-23 से यादव उपनाम के प्रति आग्रह को स्थापित किया जाने लगा। 1922 की लखनऊ अहीर काँग्रेस के उपराँत 1923 में इलाहाबाद अहीर महोत्सव हुआ, जिसमें यादव संज्ञा के साथ प्राँतीय सभा सामने आई।[247] इस हेतु उन्होंने कृष्ण के सखाओं अर्थात गोप-गोपियों के वंशज होने का तर्क प्रस्तुत किया और बाद में कृष्ण से ही जोड़ने लगे। अब अहीर जाति को यदुवंशी, नन्दवंशी और ग्वालवंशी में भी विभक्त किया गया।

यह माना जाता है कि, अहीर लोग भारत मध्य एशिया के पूर्वी भाग से खैबर दर्रे से अफगानिस्तान होते हुए आए और सर्वप्रथम विस्तारित पंजाब मे भू-भाग पर बसे। द्वितीय शताब्दी ईस्वी के आसपास शक और कुषाण आदि भारत आ रहे थे। एक अन्य मत में उन्हें ईस्वी सम्वत के प्रारम्भ में एशिया माइनर या सीरिया से आना बताया गया है। कुछ लोग उनका आगमन आर्यो से पहले का मानते हैं। कुछ विद्वान उन्हें धांगरों का एक उपसमूह मानते हैं। इतिहासकार यह मानते हैं कि, अहीर शब्द युरेशिया की अवर जनजाति से बना। जैसे जाट गैटे से, शक स्कैथी से, गुर्जर और खत्री ख़जार से, ठाकुर और तरखन तुखिरियन से, सौराष्ट्र सौरामट्टी या सरमाटियनस से और सिसौदिया स्सेनियन से।[248] टाड़[249] और के.सी.यादव ने पुरूरवास समूह के यादव चन्द्रवंशीय क्षत्रीय से उत्पत्ति का सिद्धांत दिया। इनका मूल निवास सतलुज और यमुना के मध्य का क्षेत्र बताया गया।

एक मत (डा.बुद्ध प्रकाश) यह है कि, अभीर शब्द से अभीरायण शब्द बना और उससे हरियाणा (राज्य) शब्द।[250]

महाभारत के सभा और भीषम पर्व में सिन्ध की सरस्वति नदी के समीप अभीर देश बताया गया। इन्हें बेबीलान की सुरभीर की उत्पति हेतु दाई माना गया। श्रीमद्भागवत में सिन्धु के पास अभीर देश का उल्लेख आया। ऐसा उल्लेख प्लाटमी ने भी किया। कुछ विद्वान बाइबिल के अफीर समूह को अहीर ही मानते

---

244 Ganga Ram Garg-Encyclopaedia of the Hindu world,Vol-.1, P.113 और M. S. A. Rao-Urban sociology in India: reader and source book;P:286,(New Delhi; Orient Longman,1974)

245 http://www.adherents.com/Na/Na_16.html

246http://books.google.com/books?id=8G8COTxOUkgC&pg=PA105&dq=ahir+martial+tribe&hl=en&ei=cLhyTOa6DoSKvQOtoflB&sa=X&oi=book_result&ct=result&resnum=2&ved=0CC8Q6AEwAQ#v=onepage&q=ahir%20martial%20tribe&f=false और Eyre and Spottiswoode-Report on the Census of British India taken on the 17th February 1881, London, P. 326

247 Nandini Gooptu -The politics of the urban poor in early twentieth-century India, P.205, (Cambridge University Press, 2001)

248 http://www.archive.org/strem/tribescasteesofceruss_djvu.txt; http://www.wahlah.org; http://www.google.co.in/serch?h1=ensq=gujjar+khazar+thakur+ahir+as+avars&btng=serch&meta+saq=fsod= और http://www.geocities.com/pakhistory/indos-cythian.html

249 Tod,1829,Vol1,p69 ii,p358 और Population geography: a journal of the Association of Population ..., Vol. 10 By Association of population Geographers of India, P.2

250 Sukhdev Singh Chib-Haryana,P.3

हैं। काकटिक भाषा में भारत के लिए प्रयुक्त संज्ञा सौफिर है, जिससे सुरभिर बना। मकरन्द पुराण में यह उल्लेख किया गया कि, परशुराम द्वारा पृथ्वी को क्षत्रीय विहीन करने के दौरान अभीर भाग कर पर्वत्त पर छुप कर बच गए। यहाँ यह कहा जाता है कि, या तो वे हैहयों की उपजाति थे या उनसे कहीं उत्पन्न हुए। वात्सायन के कामसूत्र में भी अभीर राज्य का उल्लेख है। कृष्ण की गोप-गोपियों के साथ इनका उल्लेख चौंथी सदी से प्रारम्भ हुआ। अहीर राजाओं के दो पृथक-पृथक वंशों ने नेपाल पर भी शासन किया, जिसमें क्रमशः 8 और 3 शासक हुए।

गुजरात से प्राप्त एक अभिलेख में भिल्सा (विदिशा) और झाँसी के मध्य का क्षेत्र अहीरवाड़ा कहा गया। समुद्र गुप्त के इलाहाबाद लौह स्तम्भ अभिलेख में पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम के अभीर राज्यों को करद राज्य बताया गया है। हालाँकि कई विद्वान गुप्त और मौर्य को भी अभीर मानते हैं। चौंथी सदी के नासिक अभिलेख में मिर्जापुर का एक क्षेत्र अहरउरा और झाँसी के समीप का एक क्षेत्र अहिरवारा उल्लेखित है। रस्सेल्ल इटावा और खुरई के आसपास ग्वालों का अधिपत्य सातवीं सदी में मानता है। देवगढ़ (छिन्दवाड़ा) में भी इनका प्रभाव था।

सीथियनों और कुषाणों द्वारा धकेले जाने पर ही अहीर मध्य प्राँत और छत्तीसगढ़ आए। मध्य प्राँत में अहरोरा नगर भी बसाया। मध्य काल में ही वे योद्धा से कृषि और पशु पालन की ओर मुड़े।

अहीर और जाट गोत्र मिलते-जुलते हैं।

यह भी कहा जाता है कि, अहीर शासक जाति और क्षत्रीय थे। इनके राज्य में ब्राह्मण दूसरे दर्ज़े पर आ गए। इस कारण उन्होंने षणयंत्रपूर्वक इन्हें धीरे-धीरे शूद्रों में या नीचे के क्रम में ढ़केल दिया।

छत्तीसगढ़ में अहीर अधिकाँशतः राउत कहलाते हैं। यह लोग कृषि और पशु पालन कार्य में लगे हैं। दूध विक्रय का व्यवसाय इनके हाथ में है। यह लोग छत्तीसगढ़ी बोली बोलते हैं।

यह लोग वैष्णव कृष्ण भक्त होते हैं। हिन्दु धर्म, हिन्दू अराध्य और हिन्दू त्योहारों को मानते और मनाते हैं। जन्माष्टमी इनका प्रमुख त्योहार है।

मृतक को जलाते हैं। दशगात्र और त्रयोदशी संस्कार करते हैं।

राउत लोग लम्बे और पतले होते हैं। अतः यह माना जाता है कि, वे राउत नाचा करते समय सुन्दर दिखते हैं। इन्हें मेहनती भी माना जाता है। सुबह 4 बजे से पहले उठकर पशुओं को चराने के लिए लेकर निकल जाते है। संध्या के पहले घर वापस नहीं लौटते और घर लौटकर भी बकरी, भेड़, गाय की देखभाल करते है।

2. बैरागीः-

बैरागी जाति के लोग वैष्णव हिन्दू हैं। अतः वैष्णव भी कहलाते हैं। यह लोग धार्मिक भिक्षा से ही जीवकोपार्जन करते हैं। इस बैरागी जाति में ब्राहमण बैरागी जाति सम्मलित नहीं है और इसमें वैष्णव भी उपजाति की तरह सम्मलित है, न कि, मूल वैष्णव मत या बैरागी पंथ या सम्प्रदाय के रूप में। यह बैरागी लोग विष्णु, राम और कृष्ण के पूजक हैं।

बैरागी लोग जटाएँ रखते हैं। कभी-कभी किसी तीर्थ पर ही बाल मुंड़ाते हैं। गुरू के देहांत पर अवश्य बाल मुंड़ाते हैं। श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। द्वारिका से लाई गई मृदा, जिसमें कृष्ण और गोपियाँ स्नान करते थे, से चक्र, शंख, पद्म और गदा बनाते हैं। चिमटा रखते हैं। पहले मृग चाल भी रखते थे। भोजन ग्रहण करने

के पूर्व उसमें तुलसी पत्र डाल उसे शुद्ध करते हैं। माँस और मदिरा के सेवन का पूर्ण त्याग करते हैं। एक-दूसरे से मिलते समय जय सीताराम का अभिवादन करते हैं।[251]

बैरागी जाति में कथित शूद्र वर्ण की जातियों को छोड़ कर शेष तीन वर्ण की जातियों के लोग सम्मलित होते हैं। हालाँकि इस बैरागी जाति समूह में सामान्यतः हिन्दू जाति क्रम में नीचे की जातियों के लोग ही सम्मलित होते रहे हैं। कुछ ऊँची जातियों के लोग भी सम्मलित होते हैं। तथापि सभी साथ भोजन करते हैं। रस्सेल्ल का तो यह भी मानना है कि, त्याज्य, भगोड़े, परित्यक्त और गरीब लोग भी इसमें सम्मलित होते हैं, जिससे उन्हें सामाजिक सम्मान और भोजन मिल सके।[252] इसमें स्त्रियाँ भी सम्मलित होती हैं, पर इसमें अधिकाँशातः पुरूष ही हैं। सभी धार्मिक जीवन जीते हैं।

बैरागियों को उच्च सामाजिक स्तर प्राप्त है। सभी जाति के हिन्दू लोग उनसे भोजन ग्रहण करते रहे हैं। वे धार्मिक गुरू की तरह रहते हैं, और गुरू मंत्र भी देते हैं। वे अपने चेलों और द्विज जातियों को राम और कृष्ण से सम्बन्धित मंत्र और अन्य जातियों के लोगों को शिव से सम्बन्धित गुरू मंत्र देते हैं। जनेऊ धारण करते और तिलक लगाते हैं। पहले स्त्री सम्बन्ध वर्जित था, बाद में जुर्माने पर मान्य कर लिया गया। अविवाहित बैरागी की सम्पति का उत्तराधिकार चेले को था। विवाहित का उत्तराधिकार पुत्र को, अन्यथा चेले को, मिलता है। विवाहित बैरागी का दर्जा नीचा माना जाता है। वे अविवाहित बैरागी के साथ चौके में बैठ कर भोजन नहीं कर सकते हैं।

मृतक को जलाते हैं, परंतु प्रसिद्ध और पवित्र संत बैरागीयों को गाड़ते हैं। ऐसे बैरागी भगता कहलाते हैं। गुरू या महंत की समाधि बनाते हैं, जो सामान्यतः उनके मठ में होती है।

मठ बनाते हैं। यहाँ गुरू और महंतों की समाधियाँ, धर्मशाला, ग्रंथालय होता हैं। छत्तीसगढ़ में इनके कई मठ हैं।

विवाहित बैरागियों में हिन्दुओं की तरह प्रथाएँ हैं। विवाह-विच्छेद और पुर्नविवाह प्रचलित है। हालाँकि यह नियम तो नहीं है, पर कृषि कार्य करने वाले बैरागियों में अपने हाथों से जुताई करने की परम्परा रही है। कुछ बैरागी बड़े भू स्वामी भी होते हैं। (राज)नाँदगाँव और छुईखदान में बैरागी शासक हुए। राजनाँदगाँव के बैरागियों का सम्बन्ध पंजाब से रहा और छुईखदान के बैरागियों का राजस्थान से।[253]

बैरागियों के चार पंथ रहे हैं- रामानुजी या रामनन्दी, निमानन्दी, विष्णु स्वामी और मध्य। छत्तीसगढ़ राज्य और रायपुर सम्भाग में रामानुजी या रामनन्दी और निमानन्दी पंथ के बैरागी लोग ही अधिक हैं। यह लोग राजनाँदगाँव और छुईखदान क्षेत्र के शासक रहे। अतः वहाँ उनकी संख्या अधिक है।

अठारहवीं शताब्दी के अवसान काल में सोहागपुर पंजाब से शाल (दुशाले) के घुमंतु व्यापारी बैरागी प्रहलाद दास रतनपुर रूक गए। तब रतनपुर में नागपुर के भोंसले मराठा बिम्बाजी का राज था। प्रहलाद दास को यहाँ बहुत व्यावसायिक लाभ हुआ। तब बैरागी अविवाहित ही रहते थे। प्रहालद दास का शिष्य (चेला) महंत हरि दास सम्पति का उत्तराधिकारी हुआ। बिम्बाजी की कई रानियों मे से सात या आठ रानियों ने महंत हरि दास से दीक्षा ले ली। अब महंत राजगुरू कहलाने लगे और उन्हें रतनपुर राज्य के प्रत्येक ग्राम से दो रूपये भेंट बसूली (गुरू दक्षिणा) का अधिकार दिया गया। इस धन से महाजनी

---

[251] R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The tribe and Castes of the Central Province of India,Vol:II,P.93-94 (http://www.scribd.com/doc/2396270/The-Tribes-and-Castes-of-the-Central-Provinces-of-IndiaVolume-II-by-Russell-R-V)

[252] वही

[253] धानूलाल श्रीवास्तव-अष्ट-राज्य-अम्भोज,पृ.45 और 78

(चल/अचल सम्पति बन्धक/गिरवी रख धन ब्याज पर उधार देना) का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया। यह व्यवसाय भी बहुत लाभप्रद रहा। इस प्रकार वे विपुल धन के स्वामी हो गए।[254] पाड़ादाह जमीन्दार ने, हरिदास के पास जमिन्दारी गिरवी रख कर, धन उधार लिया और ऋण पटाने में असमर्थ रहा। अतः जमीन्दारी हरिदास के पास आ गई।[255] हरिदास की मृत्यु उपराँत उनके शिष्य (चेले) महंत रामदास पाड़ादाह जमिन्दारी के उत्तराधिकारी हुए। तब (राज)नाँदगाँव में जमीन्दार इस्लाम धर्मावलम्बी थे। (राज)नाँदगाँव जमीन्दारी भी, उक्त प्रकार से ही, रामदास के पास आ गई। रामदास के उपराँत महंत रघुवर दास और उनके उपराँत हिमंचलदास शिष्य परम्परा में उत्तराधिकारी हुए। इसके काल में अधिक व्यय या दान आदि से कोष रिक्त हो गया। रियासत पर नागपुर के भोंसलों का नियंत्रण था। उनका नियत वार्षिक राजस्व भी भुगतान नहीं किया जा सका। हिमंचलदास को नागपुर आहुत किया गया। वह प्रवीण गायक थे। उनके गायन ने भोंसले शासक को प्रसन्न कर दिया। सभी बकाया माफी के साथ उपहार स्वरूप मोहगाँव परगना भी उन्हे दे दिया गया और वह भी बिना लगान के। हिमंचलदास के उपराँत महंत मौजी रामदास सत्ता में आए। उन्होंने खैरागढ़ के साथ मिल कर, नागपुर दरबार के विद्रोही, डोंगरगढ़ जमीन्दार और उसके भाई को परास्त किया।[256] उन्हे आधा डोंगरगढ़ (आधा सिंगारपुर, छुरिया और डोंगरगढ़ परगने) पुरस्कार में दे दिया गया।[257] इन्होंने शिष्य महंत घासीदास को दत्तक पुत्र बनाया। बाद में रामदास गृहस्थ हो गए और विवाह से औरस पुत्र हुआ। इस तरह राजनाँदगाँव की सत्ता पंजाबी बैरागियों के पास आ गई और उत्राधिकार में स्वतंत्रता तक बनी रही।

छुईखदान रियासत के अंतिम शासक वंश का संस्थापक एक वैष्णव बैरागी महंत रूप दास को माना जाता है।[258] यह चितौड़ के राजपूत महाराणा के रिश्तेदार थे और इनका नाम रूप सिंह था। वे पारिवारिक वैमनस्यों के कारण, पानीपत में दीक्षा लेकर, वैष्णव बैरागी हो गए थे। उन्होंने अपने भतीजों- ब्रह्म सिंह और तुलसी सिंह- को भी ब्रह्म दास और तुलसी दास के नाम से दीक्षा दिलवाई और साथ रखा। वे अठारहवीं शताब्दी में नागपुर आ गए और भोंसलों के एक सरदार हो गए। इसी समय कोकड़ा जमीन्दारी, जो छुईखदान क्षेत्र का पुराना नाम था, ने विद्रोह कर दिया। नागपुर शासक द्वारा रूप दास को इसका दमन करने हेतु भेजाअ गया। दोनों में युद्ध हुआ। कोकड़ा का जमीन्दार मारा गया। नागपुर राजा इस कार्य से प्रसन्न हुआ और 1750 में रूप दास को कोकड़ा की ज़ागीर दे दी। इस प्रकार छुईखदान में भी बैरागियों की सत्ता स्थापित हुई।

यहाँ यह भी समीचीन होगा कि,बैरागी मत की उत्पत्ति भी उल्लेखित कर दी जाए। दसवीं से तेरहवीं-चौदहवीं शती तक इस प्रकार भक्ति का आन्दोलन दक्षिण में शास्त्रीय रूप धारण करके तथा आध्यात्मिक पक्ष में दृढ़ होकर पुन: उत्तर की ओर आया और चौदहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रबल वेग के साथ देश के विस्तृत भूभाग में महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, मध्यदेश, मगध, उत्कल, असम और वंगदेश में फैलकर व्यापक लोकधर्म बन गया। उत्तरभारत में इसका नवीन रूप में प्रचार करने वाले सबसे

---

254 धानू लाल श्रीवास्तव-अष्ट-राज्य-अम्भोज,पृ.45 और छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन

255 धानू लाल श्रीवास्तव-अष्ट-राज्य-अम्भोज,पृ.45 और छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन

256 छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन में यह उल्लेख है कि, (सम्भवतः) डोंगरगढ़ के घासीदास द्वारा छत्तीसगढ़ से नागपुर में अंग्रेजों और मराठों हेतु जा रहे कर संग्रह के खाजाने को रोका और लूटा गया था। वह बन्दी बनाया गया।

257 छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन में यह उल्लेख है कि, (सम्भवतः) खैरागढ़ को अन्य उपहारों के साथ सिंह की उपाधि लगाने का भी अधिकार दिया गया।

258 छुईखदान के इस अंतिम शासक वंश का सन्क्षिप्त इतिहास यहाँ के पूर्व दीवान भागीरथ के नोट के आधार पर उनके पौत्र धानू लाल श्रीवास्तव ने अष्ट-राज्य-अम्भोज में लिखा और अभी तक वह ही प्रयुक्त हो रहा है।

प्रथम और सबसे अधिक शक्तिशाली स्वामी रामानन्द हुए, जिन्होंने आध्यात्मिक दृष्टि से रामानुज के विशिष्टाद्वैत को ही मानते हुए भक्ति का पृथक् सम्प्रदाय स्थापित किया, जिसमें दाक्षिणात्य श्रीवैष्णवों की तरह स्पर्शास्पर्श के नियम कठोर नहीं थे। लक्ष्मीनारायण के स्थान पर उन्होंने सीताराम को उपास्य देव बनाया। रामानन्दी वैष्णव वैरागी वैष्णव कहे जाते हैं। रामानन्द की दो प्रकार की शिष्य-परम्पराए और थीं। एक में निम्न जातियों के लोग थे और दूसरी में सवर्ण लोग। मध्ययुग में भक्ति का प्रचार करने वाले भक्त-कवियों में एक के प्रतिनिधि कबीरदास और दूसरी के तुलसीदास हुए।[259] इन्होंने ही छत्तीसगढ़ में वैष्णव प्राचार किया और विरक्त मत की स्थापना की, जो बैरागी कहलाया। यहाँ इनके कई मठ बने। दो रियासतों में सत्ता रही। इनके शिष्य कबीर हुए, जिनका कबीर पंथ भी छत्तीसगढ़ में व्यापक प्रचलित हुआ।

तेरहवीं शताब्दी में राघवानन्द के शिष्य रामानन्द ने छत्तीसगढ़ में वैष्णव मत का प्रचार किया। उन्होंने स्त्रियों और गैर-ब्राह्मणों को भी दीक्षित किया। इन्होंने ही छत्तीसगढ़ में विरक्त दल का गठन किया, जो अब बैरागी कहलाता है। बैरागी और दशनामी सन्यासियों मठ छत्तीसगढ़ में स्थापित हुए, जो आज तक हैं। गरीब दास (जन्म 1560) पौनी (जिला-भण्ड़ारा) में, उनके शिष्य बलभद्रदास का रायपुर में दूधाधारी मठ (राजा जैतसिंहदेव के काल में) स्थापित हुआ। बलभद्रदास मात्र दूध का आहार लेते थे। अतः दूधाधारी मठ का नाम बना। मराठा बिम्बाजी भोंसले उनसे मिलने गए और ज़ागीर भी प्रदान की। इस मठ के वैष्णव दास ने दूधाधारी संस्कृत महाविद्यालय स्थापित किया। ग्वालियर से आए द्याराम ने शिवरीनारायन मठ स्थापित किया। हैहय राजा इसी गद्दी से सम्बद्ध हुए। रायपुर में ही बैरागियों के चार मठ थे। कई बैरागी मालगुजार और साहूकार भी थे। राज्य में कई स्थानों पर और भी मठ बने। राजनाँदगाँव और छुईखदान की सत्ता भी बैरागी लोगों को मिली। कबीर रामानन्द के प्रमुख शिष्य थे, किनके कबीर पंथ का प्रचार भी छत्तीसगढ़ में पर्याप्त हुआ।

यहाँ यह उल्लेख भी प्रासाँगिक है कि, शुद्धाद्वैत पर आधारित पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य (1478-1530) का जन्म छत्तीसगढ़ के चम्पारण में हुआ था।[260]

3. बंजाराः-

बंजारा छत्तीसगढ़ राज्य की घुमक्कड़ जाति है। राज्य का शायद ही कोई जिला या तहसील हो जहाँ बंजारा नाम से कोई न कोई स्थान, मन्दिर, स्मारक या अन्य कोई चीज न हो। यहाँ तक कि राज्य के बाहर भी ऐसा प्रचलित रहा है। जैसे हैदराबाद की सर्वाधिक पाश कालोनी बंजारा हिल्स।

बंजारा लोग लद्दू बैलों और छोटी बैलगाड़ियों में सामान लादकर दूरस्थ अंचलों में व्यापार करते थे। दूरस्थ अंचलों में नमक पहुँचाने के कारण इनकी बहुत माँग थी और इनकी प्रतीक्षा की जाती थी। आगे चलकर, जब वणिक जातियों ने छत्तीसगढ़ में पाँव पसारे, तब उन्होंने नमक को ही शोषण का अधिकार बनाया।

---

[259] ब्रज डिस्कवरी (http://hi.brajdiscovery.org/index.php?title=%E0%A4%B5%E0%A5%88%E0%A4%B7%E0%A5%8D%E0%A4%A3%E0%A4%B5_%E0%A4%B8%E0%A4%AE%E0%A5%8D%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%A6%E0%A4%BE%E0%A4%AF)

[260] http://en.wikipedia.org/wiki/Champaran_(Chhattisgarh)

बंजारा लोगों को बंजारी, मथुरा, मुकेरी, लभाना, नायक, नायकड़ा, धारिया और लामने भी कहा जाता है। नायक बंजारा की उपजाति भी है। यह नायक ब्राह्मण नायक से भिन्न है। बंजारा जाति के लोग छत्तीसगढ़ में महाराष्ट्र से आए। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बसंतराव नाईक और सुधाकरराव नाईक बंजारा जाति के ही थे।[261]

बंजारा शब्द की व्युतपत्ति प्राकृत और संस्कृत वन-चर (वन-वन घूमने वाले) से मानी जाती है, जिसका अर्थ व्यापार से है।[262] बंजारा मुस्लिमों में भी हैं और पाकिस्तान तक फैले हैं। इन्हें एतिहासिक रूप से **पृथ्वि की मूल घुमक्कड़ जातियों या समूह में** सम्मलित किया जाता है। कुछ विद्वान इन्हें अप्रत्याशित रूप से चारण या भाटों का विस्तार भी मानते हैं। इन्हें राजस्थान का निवासी माना जाता है। हालाँकि यह लोग मूल रूप से सिन्धु घाटी के निवासी थे, जो मुस्लिम धावों के उपारंत राजस्थान आए। वे यह मानते हैं कि, वे पृथ्विराज की ओर से लड़े भी थे। इन्हें कथित अग्निवंशी राजपूत कुल से भी जोड़ा जाता है। कुछ लोग इन्हें मिश्र से निष्काषित यहूदियों से उत्पन्न मानते हैं।

भारत में इनकी जनसंख्या 56 लाख तक और छत्तीसगढ़ में 67 हजार तक अनुमानित की गई है।[263]

यह लोग घुमक्कड़ व्यापारी होने के कारण भार ढ़ोने वाले पशु रखते हैं और इस कारण से पशु पालक भी हैं। दूरस्थ अंचलों में नमक पहुँचाना इनका प्रमुख कार्य रहा है। औपनिवेशिक काल में अंग्रेज सेना को भी यह लोग ही सामान पहुँचाते थे। सामान्य परिवहन इससे जुड़ा व्यवसाय था। अब यह लोग बसने लगे हैं और कृषि और मजदूरी का कार्य करते हैं। अब कहीं-कहीं कुछ बंजारा मूंज और पन्नी घास से झाड़ू बना कर बेचने का कार्य भी करते हैं। कभी-कभी लूट आदि भी करते थे। वे नट, जादूग़र, किस्सागो, औज़ार आदि बनाने वाले और भविष्य-वक्ता का भी कार्य करते हुए भी पाए जाते हैं।

यह लोग कोरिया जैसे दूरस्थ अंचलों में भी जाते थे। इन्हें वहाँ लवण, नमक व्यापार के कारण, कहा जाता था। वे जहाँ डेरा डालते थे, अब वह स्थान बंजारीड़ांड़ कहलाता है।[264]

बंजारों का शारीरिक गठन अच्छा होता है। इन्हें महत्वकांक्षी माना जाता है। लोगों से अलग-थलग रहना, अभी भी, इनकी स्वभावगत विशेषता है। इनके कई स्थानिय और प्रचलित नाम हैं, जो 53 तक हो सकते हैं। यह लोग लाम्बांड़ी भाषा या बोली बोलते हैं।

इनकी चार प्रमुख उपजातियाँ हैं- चरण, मथुरिया, लभाना और धारिया।पहले प्रथम तीन विभाजन ही थे।[265] इन उपजातियों के भी आगे और समूह विभाजन हैं। उच्च अजतियों के भी नामों को अपनाया गया है, विशेषकर ब्राह्मण नामों को। जिन बंजारों ने कृषि कर्म अपना लिया, उन्हें बंजारा कुर्मी कहा जाने लगा।

मुस्लिम बंजारा के दो विभाग हैं- तुरकिया और मुकेरी। यह लोग उड़ीसा से छत्तीसगढ़ आए।

अन्य समुदायों से अलग रहते हैं। अपने समूह (काँखा) को टांड़ा कहते हैं। प्रत्येक टांड़ा एक दलपति होता है और उसे नायक कहा जाता है। जहाँ निवास करने लगते हैं, उसे कुर्री कहते हैं। अपने साथ कुत्ते की एक खास नस्ल रखते हैं, जो शिकारी भी होते हैं। यह तीन नस्ल में पाए जाते हैं। इन कुत्तों से अत्यधिक प्रेम करते हैं। दुर्ग जिले में, बालौद के समीप, एक स्वामीभक्त कुत्ते के स्मरण में बनवाया गया कुकरा मन्दिर भी है। ऐसा एक मन्दिर मण्डला जिले में भी है।

बंजारे नृत्य और गायन के शौकीन और प्रवीण लोग हैं। दशहरा, दीपावली, होली आदि पर घर-घर जा

---

261 http://en.wikipedia.org/wiki/Banjara

262 वही

263http://www.joshuaproject.net/peopctry.php?rop3=111445&rog3=IN

264 डा.संजय अलंग-कोरिया रियासत का प्रशासनिक अध्ययन

265 (sir.), Alfred Comyn Lyall (1870). "Appendix A : Sketch of Banjáras of Berár". Gazetteer for the Haidarábád assigned districts commonly called Berár. Printed at the Education Society's Press, P. 195. (http://books.google.com/books?id=qA4EAAAAQAAJ&pg=PA195)

कर नाचते और इनाम पाते हैं। इनकी महिलाएँ अत्यधिक आकर्षक वस्त्र धारण करने हेतु जानी जाती हैं। इनके वस्त्र रंगीन और साज-सज्जा वाले होते हैं, जिस पर कढ़ाई और काँच, सीप, मोती आदि का काम किया गया होता है। वे आकर्षक और अधिक साज-सज्जा वाले आभूषण भी धारण करती हैं। बाँहों पर हस्तशिल्प से गोदना गुदवाती हैं। मोटी विशिष्ट चूड़ियाँ, पूरी बाँह में, धारण करती हैं। पश्चिम के लोग भी, इनके, परिधान की ओर आकृष्ट हुए हैं।

चित्र क्र.34,35,36,37 और 38 - बंजारा महिलाएँ, कढ़ाई, चोली और लहंगा(स्कर्ट)
स्रोत-thevoiceofbanjara.blogspot.com,www.flickr.com,www.farfesha.com आदि

छत्तीसगढ़ के अधिकाँश बंजारे हिन्दू हैं। कुछ मुस्लिम भी हैं। हिन्दू बंजारे हिन्दू अराध्यों को मानते हैं। कई हिन्दू टैबू (धारणाओं) का पालन करते हैं। इनकी मुख्य अराध्य देवी कालिका या भवानी है। वे शीतला देवी की मरी माता या आई के नाम से पूजा करते हैं। उन्हें बलि भी देते हैं। बंजारी देवी की स्थापना पहाड़ो और वनों के दुर्गम और कठिन स्थानों पर रक्षा की कामना के साथ करते हैं। बंजारी माता के मन्दिर पूरे छत्तीसगढ़ में हैं। बंजारी और मरी माता का मन्दिर रायपुर में भी है।

छत्तीसगढ़ के अधिकाँश बंजारे हिन्दू हैं। कुछ मुस्लिम भी हैं। हिन्दू बंजारे हिन्दू अराध्यों को मानते हैं। इनकी मुख्य अराध्य देवी कालिका या भवानी है। वे शीतला देवी की मरी माता या आई के नाम से पूजा करते हैं। उन्हें बलि भी देते हैं। बंजारी देवी की स्थापना पहाड़ो और वनों के दुर्गम और कठिन स्थानों और मार्गों पर, रक्षा की कामना के साथ, करते हैं। बंजारी माता के मन्दिर पूरे छत्तीसगढ़ में हैं। बंजारी और मरी माता का मन्दिर रायपुर में भी है। जादू-टोना और टोटकों में विश्वास करते हैं। बीमारियों का इलाज उससे ही करते हैं। अपने आप को नानक और सिक्ख धर्म से भी जोड़ते हैं।

बंजारा लोगों में विवाह वर्षा के समय भी होते हैं, जबकी उस समय हिन्दुओं की अन्य जातियों में विवाह नहीं होते हैं। केवल बंजारों में ही विवाह करते हैं। विधवा विवाह मान्य है, पर देवर और जेठ से ही। अन्य से करने पर जुर्माना किया जाता है। हालाँकि उसके उपराँत स्विकार लेते हैं।

बच्चे के जन्म पर छठी को शुद्धि करते हैं।

कुँवारे और चेचक रोग से मरने वाले शव को जलाते हैं। अन्य को गाड़ते हैं। शोक काल, अन्य जातियों से, कम- तीन दिन- है।

मुख्य भोजन रोटी है। गेहूँ और बाजरे आदि का दलिया भी खाते हैं। माँसाहार के प्रति अति आग्रही हैं। लगभग सभी तरह के माँस खाते हैं। बकरी (बकरा) के रक्त और बोटी से बनने वाला खाद्य- सलोई- बंजारे ही बनाते हैं।

साक्षरता अत्याल्प है। छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं (लगभग 32,000 बंजारा लोग)।

4. बढ़ईः-

बढ़ई जाति के लोग छत्तीसगढ़ के सभी जिलों में निवास करते हैं। इसका पारम्परिक व्यवसाय ही काष्ठ हस्तशिल्प है। सामान्यतः लकड़ी से फर्नीचर, कृषि उपकरण और सजावटी वस्तुएँ बनाते हैं। भारत में इनकी जनसंख्या का अनुमान साढ़े छप्पन लाख का है[266], छत्तीसगढ़ में भी कुछ हजार तक हो सकती हैं।

बढ़ई शब्द संस्कृत बर्धिका या मूल वर्ध से बना जिसका अर्थ काटने से है।[267] इनके लिए प्रयुक्त होने वाला शब्द सुतार, संस्कृत के सूत्रधार शब्द से बना। ब्राहमण पुराण में उन्हें विश्वकर्मा से उत्पन्न बताया गया। हिन्दू मैथालाजी में कारीगर जातियों को देव निर्माणकर्ता विश्वकर्मा से जोड़ा जाना स्वभाविक है। इसलिए वे विश्वकर्मा भी कहे जाने लगे। विश्वकर्मा को बढ़ई की एक उपजाति के रूप में भी सम्मलित किया गया है। कहा जाता है कि, वे ब्राह्मण सूत्रधार थे, जो अकाल आदि के कारन इस पेशे में आए। कहीं-कहीं सूत्र सब्द उस धागे से लिया गया बातया जाता है, जो मिस्त्री भवन निर्माण के समय सूत्र मिलाने को उपयोग करते हैं। इन्हें दवेज और कुन्देर भी कहा जाता है। अन्य जाति के जिन लोगों ने बढ़ई को पेशेगत रूप में अपनाया, पर वे मूल बढ़ई जाति के नहीं थे, उन्हें परदेशी संज्ञा से सम्बोधित किया गया। सामान्यतः काष्ठ शिल्पी बढ़ई तथा भवन निर्माण और मूर्ति कला में रत लोगों को सुतार कहा जाने लगा है।[268]

हस्तशिल्प या कारीगिरी के पाँच मूल व्यवसाय या कार्य माने गए हैं। बढ़ईगिरी एक है। अन्य चार हैं- सुनारी, ठठेरा, पत्थर शिल्प और लुहारी। यह ग्राम कारीगिरी की भी मूल श्रेणी में है। अतः मूल हस्तशिल्प है। किंवन्दंती में यह विश्वकर्मा द्वारा गुरू मंत्र प्राप्त माने गए। मानव विकास का उच्च और प्रारम्भिक मुख्य अविष्कार- पहिया- बढ़ईयों द्वारा बनाया गया माना जाता है।

इन्हें जंगिद ब्राह्मण कहा जाता है, जो कि विश्वकर्मा के उत्तराधिकारी थे। विश्वकर्मा को हिन्दू मुख्य वास्तुविद मानते हैं। महर्षि अंगिरा भी जंगिद ब्राह्मण थे।

आधुनिक औद्योगिक क्राँति और विकास के पूर्व, भारत में, जंगिद ब्राह्मण ही अभियंता या यंत्री और वास्तुविद होते थे। भवन, मन्दिर, रथ, युद्ध और कृषि उपकरण, सजावटी समान आदि के रेखाविन्यासक और निर्माता यह लोग होते थे। इसमें मूर्ति शिल्प भी सम्मलित था। जंगिद ब्राह्मण ही आगे चलकर बढ़ई, सुतार और विश्वकर्मा हुए। मन्दिर निर्माण में इनकी मुख्य भूमिका होती थी। तकनीकी, अभियाँत्रकी और हस्तशिल्प की प्रवीणता इनके पास रही। इनमें कुछ लोग जनीऊ भी धारण करते हैं।

छत्तीसगढ़ के बढ़ई हिन्दू हैं। यह लोग सभी हिन्दू देवी-देवताओं को मानते हैं। विश्वकर्मा इनके प्रमुख अराध्य हैं। सभी हिन्दू त्योहारों को मनते हैं। विश्वकर्मा पूजा और दशहरा प्रमुख त्योहार हैं। दशहरे को अपने उपकरणों की पूजा करते हैं। शाकाहारी भोजन ही करते हैं। शराब नहीं पीते।

बढ़ई जाति भी गरीबी में है। इनमें विवाह विच्छेद की दर, अन्य जातियों की अपेक्षा, अधिक रही है। इनके घरों में, सामान्यतः, बढ़ई उपकरण होते हैं।

5. ढीमरः-

ढीमर जाति के लोग छत्तीसगढ़ में निवास करते हैं। बस्तर सम्भाग में, इन्हें, जलारी या जालारनल कहा जाता है। यह लोग भोई, कहार, केहरा, धीवर, मल्हा, निषाद, कश्यप, बाथम, केवट, सोंधिया अदि भी

---

[266] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php?rop3=111468&rog3=IN

[267] http://www.maharashtra.gov.in/english/gazetteer/FINAL_GAZETTEE/people1.html

[268] Suresh Kumar Singh, B. K. Lavanta, Dipak Kumar Samanta, Sushil Kumar Mandal, N. N. Vyas- Rajasthan, Vol- II.,.(Anthropological Survey of India) P. 201

कहलाते हैं। एक स्रोत में इनकी जनसंख्या राष्ट्र में 16 लाख मान, छत्तीसगढ़ी बोलने वालों की संख्या सवा लाख मानी गई है।[269]

यह माना जाता है कि, यह लोग बिंझवार जनजाति से उत्पन्न हुए।[270] यह लोग पारमपरिक रूप से मछली पकड़ने, पालकी ढ़ोने, घरेलू नौकरी करने, जलीय फसलें (जैसे- सिंघाड़ा, कमलगट्टा आदि) ऊगाने, पानी भरने और नाव चलाने का कार्य करते रहे हैं। अब रेश्म उत्पादन, मजदूरी आदि की ओर भी आए हैं।

ढ़ीमर शब्द संस्कृत के धीवर शब्द से बना है, जिसका अर्थ मछुआरा है।[271] इनमें से सिंघाड़ा उगाने वाले सिंघाड़िया, नदी तीर पर रहने वाले नदहा और चावल विक्रय करने वाले धूरिया कहलाए। मुख्य कारय मछली पकड़ना ही है। शेष कार्य साथ-साथ करते हैं।

छत्तीसगढ़ में सामान्यतः दो उपजातियाँ हैं- बंसिया (मछली पकड़ने की बाँस की बंसी से) और बन्धईया (रस्सी बनाने से)। बस्तर में जलारी के रूप में चिन्हित हैं, ही।

यह कार्य कुशल लोग माने जाते हैं। ढ़ीमर महिलाएँ घरों में कार्य और दाई का कार्य भी करती हैं।

ढ़ीमर लोग विवाह सम्बन्धों के लिए कठोर हैं। सगोत्रीय और निकट समबन्धियों (यथा- ममेरे, चचेरे आदि) में विवाह वर्जित है। तलाक मान्य है, पर कम है। विधवा विवाह होने लगे हैं।

गरीबी के कारण शव गाड़ने की प्रथा प्रचलन में आई। यह ढ़ीमर जाति में भी है।

6. दर्जीः-

दर्जी जाति के लोग छत्तीसगढ़ के सभी जिलों में निवास करते हैं। इन्हें छीपी, छिपी, शिपी, मावी, नामदेव भी कहा जाता है।

कपड़ों पर छपाई और रंगाई करने वाले छीपा लोग अलग हैं। यह पुराने बरार क्षेत्र में अधिक हैं। अल्प संख्या में छीपा लोग छत्तीसगढ़ भी आए। दोनों जातियों के लिए हस्तशिल्प व्यवसाय है।

दर्जी लोग कपड़ा सिलाई के और छीपा लोग कपड़ा रंगाई के हस्तशिल्प व्यवसाय में हैं। कहीं-कहीं दर्जी लोग काष्ठ हस्तशिल्प का बढ़ई कार्य भी करते हैं।

यह लोग यह मानते हैं कि, इनकी उतपत्ति विश्वकर्मा से हुई। दर्जी मुस्लिम धर्म में भी हैं। यह लोग संगठित भी हुए। 1929 में राजकोट से यह प्रारम्भ हुआ। इनका संगठन श्री मच्छू काथिया सांई सुथार गन्याति है। अर्थात मच्छू नदी तट पार बसे (मच्छू काथिया) लोगों में से कपड़ा सिलने (सांई) और बढ़ई कार्य (सुथार) का व्यवसाय अपनाने वालों का संगठन। हालाँकि भारत में दर्जी शब्द का प्रचलन मुस्लिमों के आगमन के पश्चात ही आया।

प्रसिद्ध संत नामदेव दर्जी जाति के थे। अतः इस उपनाम को भी अपना लिया गया। इस जाति का अकर्षण नगरों के प्रति है। कहीं-कहीं यह व्यवसाय जनित संज्ञा अधिक है और जाति कम। दर्जी और छीपी जाति में धोबी जाति से सर्वाधिक लोग आए। पगड़ी बनाने वालों का दर्जा थोड़ा ऊँचा है। दर्जी लोग ऊँची ब्राह्मण जातियों की परम्पराओं को अपनाने की कोशिश करते हैं।

हिंदू धर्म का पालन करते हैं। हिन्दू अराधयों को मानते हैं। हिन्दू त्योहार मनाते हैं। जन्म और मृतक संस्कार भी हिन्दू हैं। मुस्लिम दर्जी मुस्लिम धर्म का पालन करते हैं।

7. धोबीः-

---

[269] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[270] http://www.maharashtra.gov.in/english/gazetteer/BHANDARA/people_castes.html

[271] http://www.india9.com/i9show/Dhimar-55893.htm

धोबी जाति के लोग छत्तीसगढ़ के सभी जिलों में निवास करते हैं। इस जाति के लोग दर्जी और छीपा जाति में भी गए। इन्हें रजक, बट्ठी और बरेठा भी कहा जाता है। यह लोग पारम्परिक रूप से कपड़े धोने और उसे स्त्री (प्रेस) करने कार्य करते हैं। धोबी शब्द संस्कृत धव और हिन्दी धोना से बना है।[272] एक स्रोत में भारत में इनकी जनसंख्या एक करोड़ से अधिक मान छत्तीसगढ़ में साढ़े तीन लाख से अधिक मानी गई है, जिसमें से लगभग सवा दो लाख छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं।[273]

मनु के अनुसार यह लोग प्रतिलोम विवाह अर्थात उच्च जाति की माता और निम्न जाति के पिता की संतान हैं। यह माना जाता है कि, इसमें नीचे के जाति क्रम के लोग आए।

धोबी जाति के कई उपसमूह हैं। वे या तो उस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहाँ से वे आए या उस जाति का जहाँ से वे इसमें सम्मलित हुए। कहीं-कहीं और कभी-कभी दर्जी और छीपा भी इससे जुड़ते हैं।

पहले धोबियों में बाल विवाह प्रचलित था, अब थोड़ी बड़ी उम्र में विवाह करने लगे हैं। विवाह स्थानिय हिन्दू रीति से करते हैं। विधवा विवाह है, पर अन्य जातियों की तरह देवर और जेठ से नहीं। इअसमें ब्राह्मण नहीं बुलाते हैं। विवाह विच्छेद मान्य तो है, पर कठिन परिस्थितियों में। उत्राधिकार सभी पुत्रों में समान है।

धोबी हिन्दू धर्म, उसके अराध्य, त्योहार आदि मानते हैं। अधिकाँशतः शैव हैं। देवी में भी अधिक आस्था है। संस्कार और पूजा में ब्राह्मण बुलाते हैं। माँस खाते हैं। मृतक को जलाते हैं।

हिन्दू विवाह संस्कार और समारोह में धोबी और नाई की उपस्थिति वाँछित होती है।

8. गड़रियाः-

गड़रिया जाति के लोग छत्तीसगढ़ में निवास करते हैं। इन्हें धनकर, कुरमार, हटगर, हटकर, हाटकार, गाड़री, धारिया, धोषी (गड़रिया), गारी, गायरी, पाल बघेल गड़रिया भी कहते हैं। पाल और बघेल गड़रिया हैं। यह बघेल राजपूत से पृथक हैं।

यह लोग पशुपालक हैं। भेड़, बकरी आदि पालते हैं। इनका पारम्परिक व्यवसाय हस्तशिल्प से भी सम्बन्धित है। यह लोग उक्त पालतू पशुओं के बालों से ऊन बना, उससे कम्बल बना विक्रय करते हैं। कृषि भी करते हैं।

गड़रिया जाति के लोग, भारत में, उत्तर और पश्चिमोत्तर से आए। यह शब्द संस्कृत के गांधार शब्द से बना। संस्कृत में यह शब्द गान्धार या कान्धार देश या क्षेत्र से बना, जहाँ से भेड़ें भारत में आईं या लाई गईं।

छत्तीसगढ़ में गड़रिया नर्मदा घाटी और सतपुड़ा पर्वत से होकर आए। यहाँ इनक प्रवेश चिल्फी घाटी से हुआ। छत्तीसगढ़ और महाकौशल क्षेत्र में कई संज्ञाएँ इनसे जुड़ी या बनीं। जैसे- गदरीखेड़ा और गाड़रवाड़ा (गड़रियाखेड़ा)।[274]

एक स्रोत में छत्तीसगढ़ में हिन्दू गड़रियों की जनसंख्या का अनुमान लगभग 68 हजार का है, जिसमें लगभग 42 हजार छत्तीसगढ़ी बोली भी बोलते है और साथ ही यह लोग भारत मे 58 लाख अनुमानित हैं।[275]

---

[272] http://www.indianetzone.com/31/dhobi_washerman_caste.htm

[273] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[274] R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The Tribe and Castes of the Central Province of India और http://en.wikipedia.org/wiki/Gadarwara

गड़रिया मिश्रित जाति मानी जाती है। वे स्वयं यह मानते हैं कि, उनके पूर्वज को महा देव ने बनाया। उसने ब्राह्मण, ढीमर और बरई स्त्रियों से विवाह किए। इनसे गड़रियों की तीन उपजातियाँ उत्पन्न हुईं- निखार, ढ़ेगर और बरमियान।

एक अन्य कथा में पूर्वज को बनिया बताया गया है, जिसे विष्णु ने ऊन उत्पादन का कार्य सौंपा और उसे भेड़ दे 'इलिहान', 'ईहान' उच्चारण का मन्त्र दिया। उक्त तीन उपजातियों में निखार (अर्थात शुद्ध) को ऊपर माना जाता है। ढ़ेगर, धाँगर का अपभ्रंश है। यह उपजाति मराठों के साथ छत्तीसगढ़ आई। छत्तीसगढ़ में बसने वाले गड़रिया छेरिया या जंगली कहलाए। उत्तर भारत से आने वाले गड़रिया लोग देशा और अवध से आने वाले पूर्विया कहलाए।

गड़रियों की निखार और ढ़ेंगार उपजाति के पुरूषों में आपसी खान-पान के सम्बन्ध हैं, पर उनकी महिलाओं में नहीं। कभी-कभी आपस में विवाह सम्बन्ध भी बनाते हैं, पर लड़की का पिता के घर पर भोजन करने का अधिकार समाप्त हो जाता है।

इनमें कई गोत्र हैं, जो पशुओं और वृक्षों के नाम पर हैं। जैसे- साँपा (साँप), मोरिया (मोर), नाहर (बाघ), फूलसुंघा (पुष्प), हिरणवार (हिरण) आदि। कुछ गोत्र अन्य जातियों से भी बने। जैसे- अहिरवार (अहीर), बम्हनिया (ब्राह्मण) आदि।

सामान्यतः इनकी अस्वच्छता, आलस और दुर्गन्ध को लेकर स्थानिय उक्तियाँ भी बनाई गईं।

गड़रियों में भी सगोत्रीय और चचेरे-ममेरे बच्चों के मध्य विवाह वर्जित है। पहले बाल विवाह था, अब कुछ बड़े होने पर विवाह करते हैं। वर पक्ष विवाह प्रस्ताव देता है। इसे सुपाड़ी की अदला-बदली से स्विकृत करते हैं। विधवा विवाह और विवाह विच्छेद को मान्यता है।

इस राज्य के गड़रिया लोग हिन्दू धर्म को मानते हैं। दिशि देवी इनकी अराध्य हैं, जो भेड़ों की रक्षा करती है।

माँसाहारी हैं, पर मुर्गी और सुअर के माँस से दूर रहने का प्रयास करते हैं। मदिरा भी पीते हैं।

इनकी जाति पंचायत है, जिसका मुखिया महतो कहलाता है। यह पद वंशानुगत है।

गड़रिया जाति क्रम में नीचे हैं और आलसी माने जाते हैं। शिक्षा अल्प है।

9. कोष्टा (देवाँगन):-

हस्तशिल्पी कोष्टा जाति के लोग छत्तीसगढ़ में निवास करते हैं। इसमें कोष्टा, कोष्टी, देवाँगन, माला पदमशाली, साली, सुतसाली, सलेवार, सालवी, देवांग, जन्द्रा, कोस्काटी, कोश्काटी (लिंगायत), गढ़वाल, गढ़ेवाल, गरेवार, गरावर, डुकर और गोल्हाटी सम्मलित हैं। सामान्यतः कोष्टा और देवाँगन नामों से जाने जाते हैं। एक स्रोत द्वारा भारत में इनकी जनससंख्या को लगभग 14 लाख अनुमानित कर छत्तीसगढ़ में ढ़ाई लाख का अनुमान कर ड़ेढ़ लाख को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला माना गया है।[276]

यह लोग बुनकरी हस्तशिल्प के पारम्परिक व्यवसाय में है और सामान्यतः रेशम और सूती वस्त्रों का उत्पादन करते हैं। इस जाति के डुकर कोल्हाटी कसरत और व्यायाम प्रदर्शन करते हैं।

बुनकरी के व्यवसाय में रायपुर सम्भाग के दुर्ग जिले की बाया महरा या कौशल वया जाति भी है, जो कि कोष्टा से पृथ्क जाति है।

कोष्टा नाम कोसा रेशम में व्यवहार करने के कारण पड़ा। यह रेशम अपने कुरमुरे टसर, सुन्दर और बहुअरंगी प्रिंट और उसमें लाए गए नवाचार और बदलावों के कारण प्रसिद्ध हुआ। छत्तीसगढ़ के कोसा रेशम को विश्व स्तर तक ले जाने में इस जाति का योग है। यह लोग इसमें नवाचार भी करते हैं। सूत की विभिन्न

---

[275] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php?rop3=112021&rog3=IN

[276] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

मोटाईयाँ, वस्त्र सुधार, नई डिजाईनें आदि सामने आईं। रामायण और महाभारत के चित्रों की क्रमबध्दता और रंगसंयोजन ने, इस प्रसिद्ध डिजाईन को, ऊँचाईयाँ दीं।

इस जाति का मानना है कि, उनकी उत्पति मार्कण्ड़ेय ऋषि से हुई। यह माना जाता है कि, उन्होंने ईश्वर की नग्नता को ढ़कने के लिए कमल पुष्प के तंतुओं से, सर्वप्रथम वस्त्र बुना था। इसके पुरस्कार स्वरूप उनका विवाह सूर्य कन्या से किया गया। उन्हें दहेज में भवानी दैत्य और बाघ मिले। अवज्ञा के कारण, उन्होंने, भवानी दैत्य का वध कर दिया और उसकी हड्ड़ियों से प्रथम लूम बनाया। बाघ आज्ञाकारी बना रहा। अतः यह कहा जाने लगा कि, कोष्टा को यदि वन में बाघ मिले तो वह मार्कण्ड़ेय ऋषि का नाम लेने पर छेड़छाड़ नहीं कर आगे बढ़ जाता है।

इस कथा में बाघ के जुड़ाव के कारण ही यह लोग शेर की सवारी करने वाली सिंहवाहिनी देवी की अराधना करते हैं। हालाँकि इनके बुनकरी चित्रों में शेर भी बाघ के रूप में ही दर्शाया गया है।

कोष्टा जाति में भी कई गोत्र हैं। लगभ 60। इनमें आपसी विवाह सम्बन्ध है। यह हैं- तरार, कुमज, बाराबुधिया, हड़ाहू, धकेता, सोनपरेता या कुकुरपरेता या परेता, भेलवा, लेंजवार, खटकी, लिमजा, बांगड़ा या बांगर, नेवरा, बांकुरा, कोसरिया या सोनकोसरिया, गरकट्टा, राजापूज्या, निखार, ज्ञानकोहरी, नन्दनवार या नन्हेवार, रेहकवार या रेड़कू, गोषा या गोखा, बुर्रा या गुर्रा, नारायणवंशी, नागवंशी या नागरवंशी, दुर्गवंशी, गुरुवंशी या रघुवंशी, पदुमवंशी, रुद्रवंशी, शुकरवंशी, सूर्यवंशी, देववंशी, वशिष्ठ, विश्वामित्र, शार्दुल या सांडिल, कश्यप, गर्ग, गौतम, देवराज, मेघराज, गजराज, धर्मराज, सोनभद्रा, सोरता, सिंघनी या सिंहनी, सिंह, सियार, सोनयानी या सोनवानी, हनुमानवंशी, कोदरिया, कुम्भज, कौशिक, वाचबंधु, अश्विनी कुमार, बोकरिया, बेसियार, बांधा या बाघा / बाधिन, ध्रुवे, कुंहार या कुंभज या कोहार, भुसा और यवार या पवार । इनमें लगभग 10 उपगोत्र भी हैं– बसेरा, कुकुर परेता, नककट्टा, बाघसवारी, नन्हेवार, कुल्हाड़ा, साहकार, सदाफल, बघेल और नागवंशी। देवांगन जाति के कुछ गोत्रों के समूह को देव गोत्र कहते हैं । इनमें आपसी विवाह सम्बन्ध नहीं होते हैं।यह हैं– बाराबुधिया या ज्ञानकोतरी या नेवरा, भेलवा या खटकी या बांगड़ा, नारायणवंशी या पदुमवंशी या राजापूज्या या बोकरिया, लेंजवार या धकेता या तरार या हड़ाहू, लिमजा या गरकट्टा या नककट्टा, बांकुरा या पवार या सोनवानी, कोसरिया या सोनकोसरिया या सोनभद्रा, सिंह या शार्दूल्य, सोरता या कोहार और परेता या सोनपरेता/ या कुकुरपरेता।[277]

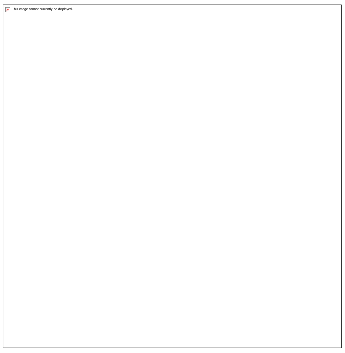

[277] http://en.wikipedia.org/wiki/Dewangan

चित्र क्र.-39,कोष्टा कोसा बुनकरी में चित्रित सिंहवाहिनी चि.क्र.-40,लूम
स्रोत- http://en.wikipedia.org/wiki/Dewangan

कोष्टा लोग हिन्दू धर्म का पालन करते हैं और इसी धर्म के अराध्यों की पूजा करते हैं। सिंहवाहिनी के रूप में दुर्गा के उपासक हैं। सभी हिन्दू त्योहारों को मनाते हैं।

इनके घरों में बुनकरी के सभी आवश्यक उपकरण होते हैं। लूम प्रमुख उपकरण है। ताना-बाना लगाने और रंग सन्योजन में प्रवीण हैं। नए प्रयोग भी किए हैं।

जन्म और मृतक संस्कार हिन्दुओं की तरह हैं।

इनमें, विशेष कर देवाँगनों में, शिक्षा का प्रचार हुआ है। विदेश व्यापार और शासकीय नौकरियों में भी सफलता मिली है। नवाचारों को भी प्रोत्साहित किया है।

10.लोहारः-

लोहार जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य में निवास करते हैं। इसमें लुहार ,गड़ोले ,लोहपीटा , लोहार ,गड़ौला विश्वकर्मा और हुंगा लोहार सम्मलित हैं। इसमें उल्लेखित विश्वकर्मा संज्ञा ब्राह्मण विश्वकर्मा से पृथक है। एक स्रोत द्वारा भारत में इनकी जनससंख्या को लगभग 87 लाख अनुमानित कर, ढ़ाई लाख को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला माना गया है।[278]

लोहार लोग हस्तशिल्प के परम्परागत व्यवसाय में हैं। जैसा कि बढ़ई पर चर्चा के दौरान उल्लेख आ चुका है कि, विशवकर्मा के हस्तशिल्प या कारीगिरी के पाँच मूल व्यवसाय या कार्य माने गए हैं। लोहारी उसमें एक है। अन्य चार हैं- सुनारी, ठठेरा, पत्थर पर कार्य और बढ़ईगिरी। यह ग्राम कारीगिरी की भी मूल श्रेणी में है। अतः मूल हस्तशिल्प है।

अब उस व्यक्ति को लोहार कहते हैं जो कि, लोहा या इस्पात का उपयोग करके विभिन्न वस्तुएँ बनाता है। भारत में लोहार एक प्रमुख व्यावसायिक जाति है। हथौड़ा, छेनी, भाथी (धौंकनी) आदि उसके औजार हैं। वह इन औजारों का प्रयोग करके फाटक, ग्रिल, रेलिंग, कृषि, बर्तन, हथियार आदि बनाता है।[279]

भारत में लोहार शब्द का प्रचलन मुस्लिमों के आने के उपराँत आया। यह उर्दू के लोहा शब्द से बना। यह जाति हिन्दू सहित सिक्ख और मुस्लिम धर्मों में भी है।

इन्हें मूलतः ईरान की जनजाति माना जाता है, जो ईरान के खैरमंशाह (करमन शार) से पाकिस्तान के खैबर-पख्तूनकहवा तक बसे थे। कभी लाहौर का नाम भी लोहारपुर था। पाकिस्तान के पंजाब में अभी एक नगर लोहार नाम से है। एच.ए.रोज और डेनजिल इबटसन लोहारों की व्युत्पति राजपूतों और जाटों से मानते हैं, जो कि तरखन (तुरकन या ईरानी जनजाति) थे और भारत आ गए थे। इन्हें सैसनाईड़-

[278] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[279] http://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B2%E0%A5%8B%E0%A4%B9%E0%A4%BE%E0%A4%B0

परसियन से व्युत्पन्न कहा जाता है, जिन्होंने कभी ईरान पर शासन किया था। जब यहाँ लोग भारत में स्थापित होने लगे तब ऐसे ब्राह्मण और क्षत्रिय के रूप में स्थापना की, जो लोहे के हथियार बनाते थे। भारत में लोहे हथियार बनाने वाले लोग पहले से इस प्रवर्ग में थे।[280]

लोहार एक योद्धा जाति थी, जिसे सभ्यताओं के प्रथम संस्थापकों में से एक माना जाता है। यहाँ मध्य एशिया की सिथनिक (ईरानी) जनजातियों में से एक थे। भारत में इन्हें विश्वकर्मा से जोड़ा गया। कश्मीर के पुंछ जिले के लोहारियन में इनकी सत्ता थी। यह पीर-पंजाल पर्वत ऋृखला में है। प्रसिद्ध रानी दिद्दा, जो केशन गुप्त को ब्याही गई थी, लोहार शासक सिम्हा की पुत्री थी। सिम्हा स्वयं काबुल के जाट वंशीय शासक लाली भीमा की पुत्री से विवाहित था।

ईरान से आने वाले लोहारों को तुर्की लोहार कहा गया। इनका लोहारी कार्य से कुछ भी लेना-देना नहीं था। यहाँ लोग बादशाह अकबर के दबाव के कारण यहाँ कार्य करने लगे। इन्होंने उत्तर भारत की प्रसिद्ध जातियों, यथा- खत्री, गुर्जर, जाट और राजपूतों, के उप और वंश नामों को रखने की कोशिश की।

सीथियन, परथियन, ग्रीक, बैक्टेरियन और मध्य स्शिया की हैक्थ्लिइज और टोचरियन या यूजी आदि जनजातियाँ जब भारत में आईं तो वे क्षत्रीय वर्ण में सम्मलित की गईं। धीरे-धीरे यहाँ लोग भारतीय आर्य शाखा में मिल गए। अतः यहाँ अम्भावना बनती है कि, खत्री, राजपूत, कम्बोज, जाट, गुर्जर आदि वर्ग उनके स्थानिय तत्वों के मिलन से बने।

भारत में लोहार विश्वकर्मा ब्राह्मण के रूप में सामने आए। इन्हें सीथियन (ईरानी) मूल का माना गया।

छत्तीसगढ़ राज्य में लोहार सभी जिलों में हैं। यहाँ लोग लोहे और इस्पात से कृषि उपकरण, बर्तन, हथियार, सजावटी वस्तुएँ आदि बानते हैं। छत्तीसगढ़ में लौह धातु अयस्क प्राचीन काल से मिलता रहा है और इस धातु के उपयोग के प्रमाण प्राचीन काल से ही मिलने लगते हैं। लोहार मेहनती और कार्य कुशल जाति मानी जाती है। इस लिए '.... एक हाथ लोहार का' जैसी उक्तियाँ प्रचलन में आईं। इन्होंने छत्तीसगढ़ी सभ्यता, संस्कृति और हस्तशिल्प विकास और उसकी स्थापना में योग दिया है। भारत में भी सुस्पष्ट ज्ञात इतिहास का प्राम्भ भी लोहे की ज़ानकारी के साथ ही प्रारम्भ होता है। दिल्ली का लौह स्तम्भ इतिहास में लोहे और कारीगरी का उच्च मापदण्ड है। नालन्दा विश्वविद्यालय की स्थापना इसको एक नया आयाम देती है।

यह लोग हिन्दू धर्म, हिन्दू देवी-देवता को मानते और हिन्दू त्योहारों को मानाते हैं। विश्वकर्मा की पूजा करते हैं। हिन्दू संस्कारों को अपनाते हैं। जन्म और मृत्यु संस्कार हिन्दुओं के अपनाते हैं।

11.सुनारः-

सुनार जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य में निवास करते हैं। इसमें सोनार, झाणी, झाड़ी, स्वर्णकार, अवधिया, औधी और सोनी सम्मलित हैं। इसमें बनिया और अन्य जातियों के सोना, चाँदी, आभूषण, रत्न आदि के व्यवसायी और व्यापारी तथा ज्वेलर आदि सम्मलित नहीं हैं। यह लोग छत्तीसगढ़ राज्य के सभी

---

[280] http://en.wikipedia.org/wiki/Lohar

जिलों में निवास करते हैं, विशेष कर नगरीय क्षेत्रों में।

सुनार जाति के लोग पारम्परिक रूप से हस्तशिल्प के व्यवसाय में हैं। यह लोग सामान्यतः सोने और चाँदी के आभूषण, सजावटी वस्तुएँ, घरेलू सामान आदि बनाते हैं। सुनार शब्द संस्कृत के सुवर्ण-कर (कार) शब्द से व्युत्पन्न हुआ है।

राबर्ट वाने रस्सेल्ल और रायबहादुर हीरालाल द्वारा, यह उल्लेख करते हुए, एक कथा बताई गई है कि, यह समान कथा खत्री और सुनार, दोनों जातियों में, प्रचलित है, पर यह तथ्य दोनों से अनभिज्ञ है कि, यह समान कथा दोनों जातियों में है। यह कथा है- यह लोग उन दो राजपूत भाईयों में से उस एक की व्युत्पत्ति हैं, जिसे सारस्वत ब्राह्मण ने बचाया। ज्ञातव्य हो कि, सारस्वत ब्राह्मण उत्तर-पश्चिम में सामन्यतः हैं। जैसे पंजाब, कश्मीर, सिन्ध आदि। आगे यह कहा गया कि, जब परशुराम क्षत्रीय वध को उदत्त थे, तब एक भाई से सुनार हुआ। खत्रियों में यह बात अपने हेतु कही गई।[281]

सुनार जाति की स्थिति , भारतीय जाति व्यवस्था में, कृषक जातियों से ऊपर है। इनमें कुछ अन्य प्रवर्ग भी हैं। जैसे- मेर क्षत्रीय सुनार (राजस्थान से प्रवजन), सूर्यवंशी राजा अमरीश से क्षत्रीय सुनार, वैश्य अयोध्यावासी या पुरवईया सुनार, कन्नौजिया सुनार, महावर या महुर सुनार, दुर्गापूजक सूर्यवंशी, खुदाबन्दी सिन्धी स्वर्णकार, ब्राह्मण गोत्र कश्यप, कौशल, भारद्वाज, शांड़िल्य, वत्स अपनाने वाले रस्तोगी स्वर्णकार।

सुनार जाति हस्तशिल्प के परम्परागत व्यवसाय में हैं। जैसा कि बढ़ई और लोहार पर चर्चा के दौरान उल्लेख आ चुका है कि, विशवकर्मा द्वारा हस्तशिल्प या कारीगिरी के पाँच मूल व्यवसाय या कार्य निर्धारित किए गए हैं। सुनारी उसमें से एक है। अन्य चार हैं- लोहारी, ठठेरा, पत्थर शिल्प और बढ़ईगिरी।

यह लोग हिन्दू धर्म, हिन्दू देवी-देवता को मानते और हिन्दू त्योहारों को मानाते हैं। विश्वकर्मा की पूजा करते हैं। हिन्दू संस्कारों को अपनाते हैं। जन्म और मृत्यु संस्कार हिन्दुओं के अपनाते हैं।

12. काछीः-

काछी जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य में निवास करते हैं। इसमें इसकी उपजातियाँ कुशवाहा, शाक्य, मौर्य, कोयरी, कोईरी, पनारा, मुराई और सोनकर सम्मलित हैं। साथ ही इसमें माली, सैनी और मरार प्रवर्ग भी सम्मलित है। ।एक स्रोत द्वारा भारत में इनकी जनसंख्या को लगभग सवा 53 लाख अनुमानित कर 18 हजार को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला माना गया है।[282]

काछी जातियाँ शाक (सब्ज़ी) का उत्पादन करती रही हैं, अब पुष्प उत्पादन भी करती हैं। शाक उत्पादन में इनकी रूचि अधिक है। माली लोग पुष्प उत्पादन करते रहे हैं। अब शाक भी उगाने लगे हैं। उद्यानकी या बाग़वानी वर्ग के सभी उत्पादों में इनकी अधिक रूचि रही है। कुछ लोग दुकानदारी, ईंट-भट्टे

[281] R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The Tribe and Castes of the Central Province of India

[282] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

आदि का कार्य भी करने लगे हैं।

यह लोग परिश्रमी और कार्यकुशल माने जाते हैं और शाँति के साथ अपने कार्य में लगे रहते हैं। राज्य का अधिकाँश शाक, फूल और फल उत्पादन और व्यवसाय इनके पास है।

अधिकाँश काछी छत्तीसगढ़ी बोली बोलते हैं। यह लोग हिन्दू धर्म, हिन्दू देवी-देवता को मानते और हिन्दू त्योहारों को मानाते हैं। शाकम्बरी देवी के रूप में दुर्गा देवी की उपासना करते हैं। वे यह मानते हैं कि, वह उनके उत्पादन और उसकी रक्षा हेतु रहती है। हिन्दू संस्कारों को अपनाते हैं। जन्म और मृत्यु संस्कार हिन्दुओं के अपनाते हैं। पहले बाल विवाह आम था। अब थोड़ी बड़ी उम्र में विवाह करने लगे हैं। विवाहित मृतक को गाड़ते हैं। कभी-कभी अविवाहित को भी, पर सदैव नहीं।

13. ठठेराः-

ठठेरा जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य में निवास करते हैं। ठठेरा में कसार, कसेरा, तमेरा, तम्बटकर, ओटारी, ताम्रकार, तमेर, घड़वा और झारिया सम्मलित हैं। विद्वान इनमें 44 के लगभग उपजातियाँ बताते हैं, जिसमें वर्मा और सिंह जैसे उपनामों सहित तथा राजपूतों जैसे बघेल, चौहान, परमार, गहलोत आदि उपनाम भी आ गए हैं।[283]

एक स्रोत द्वारा भारत में इनकी जनससंख्या को लगभग 29 लाख अनुमानित कर छत्तीसगढ़ में साढ़े पाँच हजार का अनुमान कर साढ़े तीन हजार को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला माना गया है।[284]

ठठेरा जाति के लोग पारम्परिक रूप से हस्तशिल्प के व्यवसाय में हैं। यह लोग ताँबे, काँसे, एल्युमीनियम आदि धातुओं या मिश्र धातुओं से बर्तन, घरेलू उपकरण, सजावटी समान आदि बनाते और विक्रय करते हैं। अब कृषि भी करने लगे हैं।

जैसा कि बढ़ई, सुनार और लोहार पर चर्चा के दौरान उल्लेख आ चुका है कि, विश्वकर्मा द्वारा हस्तशिल्प या कारीगिरी के पाँच मूल व्यवसाय या कार्य निर्धारित किए गए हैं। ठठेरा हस्तशिल्प उसमें से एक है। अन्य चार हैं- लोहारी, सुनारी, पत्थर शिल्प और बढ़ईगिरी।

ठठेरा लोग अपने को चन्द्रवंशी राजपूत मानते हैं। उनका मानना है कि, उनकी उत्पत्ति सहस्त्रबाहु से हुई, जो परशुराम द्वारा मारा गया था। इसी कारण से वे अपनी व्युत्पत्ति को हैहय राजपूतों से भी सम्बद्ध करते हैं।[285]

इनमें जाति पंचायत भी है, जिसमें सम्पति विवाद, विवाह-विच्छेद, धोखा, अविश्वास आदि के प्रकरण सुलझाए या निराकृत किए जाते हैं।

[283] http://en.wikipedia.org/wiki/Thathera

[284] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[285] K.S.Singh-People of India-Utter Pradesh,Vol.-XLII,Pt.-III,P.1536-1540 (Manohar publications)

यह लोग हिन्दू धर्म, हिन्दू देवी-देवता को मानते और हिन्दू त्योहारों को मानाते हैं। अधिंशतः हिन्दू वैष्णव पंथ को मानने वाले होते हैं और राधा-कृष्ण की उपासना करते हैं। हिन्दू संस्कारों को अपनाते हैं। जन्म और मृत्यु संस्कार हिन्दुओं के अपनाते हैं।

14. कुम्हारः-

कुम्हार जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य में निवास करते हैं। इसमें प्रजापति और कुंभार सम्मलित हैं। एक स्रोत द्वारा भारत में इनकी जनससंख्या को सवा करोड़ से अधिक अनुमानित कर ड़ेढ़ लाख को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला माना गया है।[286]

इनका पारम्परिक कार्य मृदा हस्तशिल्प से मिट्टी के बर्तन, उपयोगी घरेलू समान, साज-सज्जा की वस्तुएँ आदि बना कर विक्रय करने का है। अब कृषि कार्य भी करने लगे हैं।

यह लोग अपनी व्युत्पति सीधे ब्रह्मा या प्रजापति से मानते हैं और इसी कारण प्रजापति भी लिखते हैं। कहीं-कहीं वर्मा और कुमावत भी लिखते हैं। इनका दावा यह भी है कि, कुम्हार के चक्र के रूप में, उन्हों ने ही पहिए का अविष्कार किया था।[287]

कुम्हार अच्छे व्यक्ति माने जाते हैं, जो सरल, धार्मिक, ईमानदार और परिश्रमी होते हैं।

यह लोग हिन्दू धर्म, हिन्दू देवी-देवता को मानते और हिन्दू त्योहारों को मनाते हैं। शिव और धरती माता की उपासना करते हैं। हिन्दू संस्कारों और रीति-रिवाजों को अपनाते हैं। जन्म और मृत्यु संस्कार हिन्दुओं के अपनाते हैं।

15. कुरमीः-

कुरमी जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य में निवास करते हैं। कुरमी जाति में चन्द्राकर, पाटीदार, कुम्भी, गवैल, गमैल, सिरवी, कुरमार, कुनमी, कुर्मी, कुलमी, कुलम्बी, कुर्मवंशी और कुल्मी सम्मलित हैं। एक स्रोत द्वारा भारत में इनकी जनससंख्या को लगभग ड़ेढ़ करोड़ अनुमानित कर 13 हजार को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला माना गया है।[288]

प्राचीन काल से ही कुरमी प्रमुख कृषक जाति रही है। यह लोग कृषि और कृषि मजदूरी का कार्य

---

[286] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[287] http://www.joshuaproject.net/peopetry.php?rog3=In&rop3=112696

[288] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

करते हैं। इन्हें हिन्दू धर्म के क्षत्रीय वर्ण में माना जाता है। मनु के अनुसार यह वे क्षत्रिय हैं, जिन्होंने कृषि कार्य अपना लिया।[289] इन्हें कुनबी भी कहा जाता है, जिसका अर्थ कृषक है। कृषि कार्य करने के कारन इन्हें कृशि भूमि के पट्टे दिए गए, जिससे यह लोग पाटीदार, पाटिलदार, पाटिल और पटेल कहलाए।[290]

राज्य में अधिकांशतः चन्द्राकर, चन्द्रा, चन्द्रवशी, गमैल, कुनबी, कुर्मी, कुल्मी आदि के नामों से जाने जाते है। पटेल, पाटीदारा, पाटनवार, खड़वा, लेवा, रेड्डी, नायडू, वाक्कालिगार, कोलांबी, कोलवाड़ी, कापू, कामा आदि भी इन्हींकी उपजातियाँ हैं।

यह लोग अर्थरवंशी जैसवार, काढ़िया, कटियार, कन्नौजिया आदि में बटे हैं। अब यह लोग चन्द्राकर (चन्द्रवंशी), पटेल (पाटीदार), वर्मा, कटियार, गंगवार, पवार, पाटिअल, भोंसले, रेड्डी, गौड़ा, सिन्धिया (शिन्दे), मोहंता, नायडू, महतो, सचान, कन्नौजिया, राव, जिखर आदि सरनेम लिखते हैं।

यह माना जाता है कि, कुर्मी लोग आर्यों के भारत में आने के पूर्व से ही कृषि कार्य कर रहे हैं। हालाँकि वे अपने को सूर्यवंशी राम के सीधे वंशज कहते हैं, पर दोनो तथ्य विपरीत हैं, क्योंकि राम एक आर्य प्रतीक हैं। वे एक अन्य आर्य प्रतीक, भागवत में वर्णित राजा पृथु से भी अपने को जोड़ते हैं, जिसे पृथ्वी को सर्वप्रथम जोतने वाला बताया गया है। कर्नल डाल्टन उन्हें प्रारम्भिक आर्यों का वंशज मानते हैं। प्रारम्भिक हो या बाद का, डाल्टन का मत उन्हें आर्य ही मानता है।

कुर्मी शब्द कर्म शब्द से बना, जिससे पहले कर्मी बना और फिर कुर्मी। कर्म शब्द संस्कृत का है, जिसका अर्थ है करना।

1894 में लखनऊ में सरदार कुर्मी सभा का गठन किया गया और 1910 अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा का। संत तुकाराम, प्रतिभा पाटिल, बल्लभ भाई पटेल, सन्दीप पाटिल, किरन मोरे, एस.के.वानखेड़े, स्मिता पाटिल, चन्दू लाल चन्द्राकर, शरद पवार आदि इसी जाति में आते हैं।

छत्तीसगढ़ के कुर्मी छत्तीसगढ़ी बोली बोलते हैं। इनमें शिक्षा का उचित प्रचार है। यह परिश्रमी जाति है। यह लोग अपनी मुखरता और उग्रता हेतु भी जाने जाते हैं। इन्हें बलशाली और सशक्त हाथ वाला माना जाता है। इन्हें लोगों को अपने अधीन नियुक्त करना पसन्द आता है। यह लोग लम्बे, मुखर और स्वतंत्र स्वभाव वाले होते हैं। यह लोग राज्य और सम्भाग में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से अन्य पिछड़ी जातियों से अधिक सक्षम हैं और एक बड़े दबाव समूह का कार्य भी करते हैं। कुर्मी महिलाओं की ऊँचाई कम होती है।

यह लोग हिन्दू धर्म, हिन्दू देवी-देवता को मानते और हिन्दू त्योहारों को मनाते हैं। हिन्दू संस्कारों और रीति-रिवाजों को अपनाते हैं। जन्म और मृत्यु संस्कार हिन्दुओं के अपनाते हैं।

16. कलारः-

कलार जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य में निवास करते हैं। इसमें जायसवाल, कलाल, डड़सेना

---

289 अध्याय-X,श्लोक-90,95,106

290 http://en.wikipedia.org/wiki/kurmi

सम्मलित हैं। एक स्रोत द्वारा भारत में इनकी जनससंख्या को साढ़े 36 लाख अनुमानित कर 5 हजार को छत्तीसगढ़ी बोलने वाला माना गया है।[291]

कलार लोग पारम्परिक रूप से शराब निर्माण और उसके विक्रय के व्यवसाय में रहे हैं। अब कृषि और व्यापार करने लगे हैं।

छत्तीसगढ़ में औपनिवेशिक काल में नमक पर, जब कर भार अधिक था, तब यह लोग नमक बाहर से मँगा जनजातियों को ऊँचे मूल्य पर बेचते थे। वे उन्हें शराब दे कर अन्न लेते थे। छत्तीसगढ़ में कई जनजातियाँ भी शराब बनाती रही हैं, जो उनके सभी आयोजनों और संस्कारों में उपयोग होती रही है। कुछ कलार महाजनी भी करते थे। इबटसन इनके कुख्यात व्यापारी होने का इशारा करता है।[292]

कलार शब्द संस्कृत के कल्यपाल से बना है, जिसका अर्थ मदिरा बनाने वाला होता है। कल्यपाल का मतलब हुआ आसवन की गई सामग्री का अधिपति, जिसमें शराब और औषधि आदि सभी प्रकार आसवन सम्मलित हैं। हालाँकि बाद में यह शराब तक ही सीमित रह गया। कलाल शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के कल्य या कल्प से मानी जाती है जिसका अर्थ होता है इच्छापूर्ति करना। व्यवहार में लाने योग्य, समर्थ आदि। व्यावहारिक तौर पर इसमें राशन सामग्री का भाव भी आता है। आप्टे के संस्कृत शब्दकोश में कल्पपालः का अर्थ शराब विक्रेता बताया गया है। इसी तरह कल्य शब्द का अर्थ भी रुचिकर, मंगलमय आदि है। इसमें भी भोज्य सामग्री का भाव है। कल्य से ही बना है कलेवा जो हिन्दी में खूब प्रचलित है और सुबह के नाश्ते या ब्रेकफास्ट के अर्थ में इस्तेमाल होता है। कल्या का मतलब मादक शराब होता है। मदिरा के कई उपासकों का कलेवा कलाली पर ही होता है। कल्यपाल या कल्पपाल एक पदनाम भी रहा जिस पर तैनात व्यक्ति के जिम्मे सेना की रसद से जुड़ी हुई तमाम जिम्मेदारियां थीं। कल्यपाल यानी जो खाद्य आपूर्ति का काम करे।[293]

चित्र क्रमांक-41, कलारों द्वारा किए जाने वाला आसवन

स्रोत- http://shabdavali.blogspot.com/2009/02/blog-post_27.html

---

291 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

292 R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The Tribe and Castes of the Central Province of India (http://www.archive.org/strem/tribescastesof03russ/tribescastesofce03russ_djvu.txt)

293 http://shabdavali.blogspot.com/2009/02/blog-post_27.html

इनमें कई उपविभाग हैं, जो सामान्यतः क्षेत्र के आधार पर बने हैं। जैसे- अवध और कन्नौज से आने वाले जैसवार और कन्नौजिया, मालवा से आने वाले मालवी, दक्षिण गुजरात से आने वाले ड़हार, जबलपुर से आने वाले डेहरिया। इनमें से राय उपजाति के लोग अपने को ऊँचा और सभ्रांत मानते हैं। शिवहरे जाति की संज्ञा सोम-हर या सोम से बनी। यह भी माना जाता है कि शिव पूजक होने से शिवहरे शब्द बना। शिवहरे लोग अपने को बनिया जाति की उपजाति अग्रवाल से सम्बन्धित मानते हैं और यहाँ कहते हैं कि, वे एक ही पूर्वज ही दो संतानों- शेरू और अगरू,- से उत्पन्न हुए। कुछ का मानना है कि, कलार वैश्यों और बनियाओं की विभिन्न उपजातियों से उत्पन्न हुए। कुछ कलारों ने जैन धर्म भी अपनाया।[294] देश के अलग अलग इलाकों में इनके कई नाम भी प्रचलित हैं मसलन कलार, कलवार, दहरिया, जायसवाल, कनौजिया, आहलूवालिया, शिवहरे आदि। पंजाब के आहलूवालिया पंजाब की लड़ाका जाति रही है। यह भी कलार जाति में माने जाते हैं। कलाल समुदाय में जायसवाल वर्ग काफी सम्पन्न और शिक्षित भी रहा है।[295]

छत्तीसगढ़ राज्य में कलारों की एक उपजाति ड़ड़सेना है। यह नाम ड़ंड़ा या छड़ी लेकर चलने के कारण पड़ा। इसकी यह कथा कही जाती है कि, बालोद के राजा के पुत्र का मित्र एक कलार युवक था। उसकी बहन के प्यार में राजपुत्र पड़ा। कलार युवक ने राज दरबार में उपस्थित होकर यह कहा कि, एक कुत्ता मेरे दरवाजे पर बार-बार आता और घुसता है, तो अब मैं क्या करू? राजा ने कहा- मार दो। तब इस युवक ने पूछा कि, क्या मुझे इसकी सजा मिलेगी? राजा ने कहा- नहीं। आगामी दिवस जब राजपुत्र उसके घर उसकी बहन से मिलने घुसने लगा तो, उसने उसे मार डाला, जबकि वह उसका मित्र भी था। अब राजपूतों ने रानी के नेतृत्व में इन लोगों पार हमला कर दिया। राजा तटस्थ बना रहा। राजपूत हार गए। राजा ने मध्यस्थता कर कलारों को बचा तो लिया, पर कलारों ने बालोद सदा के लिए छोड़ दिया और वहाँ का पानी पीना बन्द कर दिया। यह कलार लोग ड़ंड़े से लड़ने के कारण ड़ड़सेना कहलाए।[296]

कलार जाति ऊँची कृषि जातियों से नीचे रही है। ब्राह्मण उनके संस्कारों में सम्मलित होते हैं, पर सामान्यतः खान-पान से दूर रहते थे। यह लोग मदिरापान भी करते हैं।

कलार लोग हिन्दू रीति से विवाह करते हैं, इनमें वास्तविक विवाह के पूर्व कुएँ से विवाह की रस्म किए जाने का प्रचलन रहा है।[297] यह लोग हिन्दू धर्म, हिन्दू देवी-देवता को मानते और हिन्दू त्योहारों को मनाते हैं। हिन्दू संस्कारों और रीति-रिवाजों को अपनाते हैं। जन्म और मृत्यु संस्कार हिन्दुओं के अपनाते हैं।

17. कोलताः-

कोलता जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य में उड़ीसा राज्य के सम्बलपुर जिले से लगे जिलों यथा रायगढ़ आदि में निवास करते हैं। इसमें कलोता, कलोटा और कोल्टा सम्मलित हैं। यह लोग राज्य में कृषि

---

[294] R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The Tribe and Castes of the Central Province of India (http://www.archive.org/strem/tribescastesof03russ/tribescastesofce03russ_djvu.txt)

[295] http://shabdavali.blogspot.com/2009/02/blog-post_27.html

[296] R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The Tribe and Castes of the Central Province of India (http://www.archive.org/strem/tribescastesof03russ/tribescastesofce03russ_djvu.txt)

[297] R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The Tribe and Castes of the Central Province of India (http://www.archive.org/strem/tribescastesof03russ/tribescastesofce03russ_djvu.txt)

कार्यों में रत रहे हैं।

छत्तीसगढ़ में कोलता लोग उड़ीसा राज्य से आए। इनकी भाषा उड़िया है और अब छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं। यह लोग प्रचीन और मध्य काल में विस्तारित दक्षिण कोसल राज्य के निवासी रहे हैं। यह माना जाता है कि, यह लोग उड़ीसा के बुद्ध राज से आए। वहाँ यह लोग भी दीवान थे। वहाँ से आने के उपराँत यह लोग राज्य के उत्तर-पश्चिम के जिलों में बसे। यह जिले सम्बलपुर के आस-पास हैं।

छत्तीसगढ क़ोलता लोगों को बाबा बिशाशहे कुल कोलता समाज के नाम से भी जाना जाता है। भारत में यह लोग 6 लाख अनुमानित हैं। राज्य में इनकी जनसंख्या का अनुमान डेढ़ से पौने दो लाख का है, जिसमें से 70-75 हजार छत्तीसगढ़ी भी बोल लेते हैं।[298] यहाँ यह लोग अधिकाँशत: रायगढ़ ,जशपुर, बरमकेला-सरिया , सरायपाली ,बसना एवं पिथौरा में बसे हैं। इसके अतिरिक्त यह लोग महासमुंद, रायपुर, भिलाई, बिलासपुर एवं कोरबा आदि नगरों में नौकरी और शिक्षा आदि के कारण बसे हैं। इनका समाजिक रहन सहन, सांस्कृतिक एवं भाषाई विशेषताएं संबलपुर अंचल से मिलती जुलती हैं। पहले सम्बलपुर भी कोसल और छत्तीसगढ़ का ही भाग था।[299]

कोलता जाति की उत्पत्ति के विषय में यह कहा जाता है कि, यह लोग कुलादारी पर्वत्त के समीप रहते थे और कुलादरी से ही कोलता संज्ञा की व्युत्पत्ति हुई। कोलता का अर्थ कोलादरी या कुल्लू से उत्पन्न है। बाद में यह लोग प्रवजन कर दक्षिन कोसल में आए। यह लोग मानते हैं कि, जाब रम बनवास काल में सम्बलपुर के वनों में थे, तब उन्हें तीन भाई मिले। उन्होंने उनसे पानी माँगा। पहला भाई ताँबे के पात्र में पानी आया। दूसरा डोरी की सहायता से कुँए से पानी निकाल पर्ण दोने में लाया। तीसरा खोखले कद्दू में लाया। तीनों क्रमशः शुद्ध, दुमाल (डोरी-माल) और कोलता (कु-रीता) कहलाए। एक अन्य कथा में यह कहा गया कि यह लोग अयोध्या से बुद्ध आए। वे जनक द्वारा सीता के साथ अयोध्या भेजे गए, जहाँ वे पानी उठाने/भरने का काम करते थे। यह भी कहा जाता है कि, वे जनक की जूठन से बने। वे बनवास के दौरान राम, लक्ष्मण और सीता के साथ आए।[300]

कुछ विद्वान कृषक जाति चासा से कोलता जाति की व्युत्पत्ति मानते हैं। उनका मत है कि, यह लोग वह चासा हैं जो कि, कुलथा (Dolichos uniflorus) बोते थे।

कोलता लोगों में कई गोत्र हैं। यथा- दीप (दीपक), बच्चा (बछड़ा), हस्ति (हाथी), भारद्वाज (नीलकंठ) आदि। बच्चा गोत्र के लोग किसी भी बछड़े को सबसे पहले नहीं जोतते हैं। इन लोगों में 120 के करीब सरनेम प्रचलित हैं। यथा- राउत, साहू, प्रधान, नाईक, माझी, कुलता, कुमारी, गुप्ता, बिशाल, बेहरा, बारिक, बदेहई आदि।

बुद्ध के राजा ने अपनी पुत्री के विवाह में एक दुमाल और चार कोलता परिवार पंतगढ़ के राजा को दिए। इन लोगों ने पटना रियासत के कृषि विकास में योग दिया। कुछ कोलता परिवार पटनागढ़ से बरगढ़-गैसमा प्रवर्जित हुए। इन्होंने सरसरा में रामचंड़ी देवी का मन्दिर बनाया। यह इनकी प्रधान अराध्य

298 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

299 http://viviksha.blogspot.com/feeds/posts/default?orderby=updated

300 R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The Tribe and Castes of the Central Province of India,P.537-542

या इष्ट देवी बनीं। कोलतओं के मुख्य उपवर्ग- भाई और प्रधान- इसके पुजारी हुए। इन्होंने बरगढ़ स्थापित किया, जो कोसल की भी एक प्रशासनिक इकाई अर्थात एक गढ़ हुआ। अर्थात छत्तीसगढ़ संज्ञा का एक गढ़। यह लोग महानदी बेसिन की जीरा, अंग और तेल नदी के क्षेत्रों में बसे।[301]

पटनागढ़ के राजा राय सिंहदेव के काल में कोलता साहू परिवार का गौंटिया रहा। उसके दो पुत्र कुवेर साहू और अमर साहू तथा एक पुत्री थी। यह कन्या सुन्दर थी। पटनागढ़ का एक राज पुरूष उस पर आसक्त हो गया। अब उसकी कुदृष्टि उस पर थी। अतः इस परिवार ने पटनागढ़ छोड़ दिया। इन्होंने अंग नदी पार की और प्रण किया कि, अब उनके वंशज अंग नदी के उस पार ही नहीं जाएँगें। अब वे उत्तर की ओर बढ़ कर बरपाली के उपराँत जीरा नदी को पार कर गए। तब सम्बलपुर में अजीत सिंह (1725-1766) शासक था। वह कमजोर शासक रहा है। उस पर दीवान का अधिपत्य था। इसी समय यह कोलता लोग जीरा नदी के उत्तरी तट पार बसे। रात में इस वृद्द गौंटिया को ने स्वप्न में एक वृद्धा को देखा, जो यह कह रही थी कि अब और आगे मत जाओं। यह स्थान गैसमा कहलाया। गैसमा का अर्थ गाय-सीमा है। अर्थात जहाँ तक गाय चले। गैसमा में इन्होंने क्रिश विकास के कई कार्य किए। उस समय वहाँ स्थापित ब्रिटिश पालिटिकल एजेंट काबडेन रामसे ने भी कोलता लोगों की कृशि योग्यता की प्रशंसा की। राजा उदय प्रताप देव (1853-1881) कृषि विकास हेतु कोलताओं को कालाहाँड़ी ले गए। उनकी पत्नि आशा कुमारी महाराज नारायण सिंह की इकलौती कन्या थी। 1882 में कालाहाँड़ी का कुन्द विद्रोह कोलता लोगों द्वारा ही किया गया।[302]

कोलता लोग कृषि कार्य तो करते ही हैं, परंतु इनका योग कृषि विकास और इस हेतु आधुनिक तकनीकियाँ अपनाने में है। इन्होंने जल और सिंचाई प्रबन्धन को भी विकसित किया। कृषि को उन्नत बनाया। याह लोग सामाजिक विकास में भी रूचि रखते हैं। छत्तीसगढ़ राज्य में यह लोग शिक्षा विकास, स्त्री शिक्षा विकास, ग्राम विकास, ग्राम सद्भावना, ग्राम प्रबन्धन आदि में सहयोग के लिए चिन्हित हुए। यह लोग इन सभी कार्यों में पहल भी करने के साथ अभूतपूर्व योगदान भी करते हैं। धार्मिक और साँस्कृतिक आयोजनों को बढ़ावा देते हैं। सामूहिक उत्सवों का आयोजन करते हैं। सामाजिक, साँस्कृतिक उत्थान और शिक्षा विकास की ओर विशेष आग्रही हैं।

छत्तीसगढ़ के कई ग्रामों में स्त्री शिक्षा और रथ यात्रा का प्रारम्भ इन्हीं लोगों द्वारा किया गया। वैष्णव और शैव पंथों को पास लाने का प्रयास किया। हरि-हर विचार को प्रोत्साहित किया। गन्धारादी में इस तरह का मन्दिर भी स्थापित किया।

कोलता हिन्दू धर्म का पालन करते हैं। हिन्दू अराध्यों की उपासना करते हैं। रामचण्ड़ी इनकी इष्ट हैं। पुरी के जगन्नथ के उपासक हैं। शिव की भी पूजा करते हैं। हिन्दू संस्कारों और रीति-रिवाजों को मानते हैं। धार्मिक आयोजन आयोजित करते हैं और उसमें बढ़-चढ़ कर भाग लेते हैं। जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कार हिन्दु रीति से करते हैं।

जगती क्षेत्र में सभ्यता के विकास हेतु जाने जाते हैं। यह लोग सुसंस्कृत माने जाते हैं, जो प्रबन्धन और विकास को अपनाते और प्रोत्साहित करते हैं।

18. नाईः-

नाई जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य में निवास करते हैं। नाई में सेन, सविता, उसरेटे, श्रीवास

---

301 http://en.wikipedia.org/wiki/Kuilta

302 http://en.wikipedia.org/wiki/Kuilta

सम्मलित हैं। इसमें इनकी म्हाली, नाव्ही और उसरेटे उपजातियाँ भी सम्मलित हैं। इन्हें नऊआ और नाऊ ठाकुर भी कहा जाता है। कहीं-कहीं हज्ज़ाम भी बोलते हैं।

यह लोग छत्तीसगढ़ के सभी जिलों के अधिकाँश ग्रामों में हैं। इस राज्य में इनकी जनसंख्या सवा से ड़ेढ़ लाख तक होने का अनुमान है, जिसमें से आधे से अधिक छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं और भारत में इनकी जनसंख्या 1 करोड़ 5 लाख से अधिक अनुमानित है।[303]

नाई जाति के पारम्परिक कार्य में प्रमुख बाल काटना है। इसके अतिरिक्त शरीर सेवा यथा- मालिश करना, नाखून काटना, थकान उतारना, बदन दबाना, दर्द ठीक करना आदि कार्य भी यह लोग करते हैं। अब इन कार्यों में अन्य उच्च जातियों के लोग भी आए हैं और ब्युटी पार्लर या क्लिनिक, मसाज पार्लर, हैल्थ क्लब या क्लिनिक, स्पा, सैलून आदि कई नामों से यह कार्य सैलिब्रिटि रूप ले चुका है। पर यह लोग नाई के अन्य पारम्परिक कार्य नहीं करते। जैसे- नाई की उपस्थिति विवाह संस्कारों में वांछित होती है। पारम्परिक आमंत्रण और न्योते नाई हे देते थे। पारम्परिक विवाह प्रस्ताव और सम्बन्ध इन्हीं के द्वारा कराए जाते थे। शुभ समाचार भी नाई ही ले कराए जाते थे। नाई लोग अब कृषि भी करने लगे हैं।[304]

नाई अपनी उत्पति शिव द्वारा बताते हैं, जब उन्होंने पार्वत्ती के नाखून काटने हेतु इन्हें बनाया।[305]

नाई लोग अपने को क्षत्रीय मानते हैं। इनमें तीन विभाजन हैं- गोले, बैहमार्री और बारी। आगे इसमें और उपविभाजन हैं।[306]

इनमें भी जाति पंचायत है, पर निर्वाचित। यह परम्परा भंग, अवैध सम्बन्ध आदि के मामले सुलझाती है।

नाई लोग हिन्दू धर्म का पालन करते हैं। इनमें शैव और वैष्णव, दोनों पंथ, को मानने वाले हैं। मुस्लिम धर्म अपनाने वाले हज्ज़ाम कहलाते हैं, जो कि छत्तीसगढ़ में लगभग नहीं हैं।

19. पनकाः-

पनका जाति, जिसे पनिका भी कहा जाता है, छत्तीसगढ़ के रायपुर और बिलासपुर सम्भाग में मैकाल पर्वत्त श्रेणी और मध्य प्रदेश के शहड़ोल जिले से लगे भागों में रहते हैं। शहड़ोल ही इनका मुख्य आवास है। पूरे भारत में मात्र यह क्षेत्र ही इनका आवास है।

छत्तीसगढ़ में इनकी जनसंख्या लगभग साढ़े आठ लाख अनुमानित है, जिसमें से चार लाख के लगभग छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं और भारत में इनकी जनसंख्या लगभग 10 लाख ही अनुमानित है।[307] अर्थात यह लोग अधिकाँशतः इस राज्य में ही हैं।

---

303 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php?rog3=IN&peo3=113203

304(Edited by) A. Hasan and J. C. Das-People of India -Uttar Pradesh, Vol.-XLII, P. 1067-1069

305 R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The Tribe and Castes of the Central Province of India, P.331-354

306 http://en.wikipedia.org/wiki/Nai_(caste)

307 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

पनिका लोग ईमानदार माने जाते हैं। सामान्यतः गोंड़, बैगा, पारधी आदि जनजातियों के साथ रहते हैं। मध्य प्रदेश के बुन्देल और बघेल खण्ड़ों में पनिका भी जनजाति ही है।

यह लोग ग्राम कोटवारी या चौकीदारी करने के कारण कोटवार भी कहे जाते रहे हैं। यह लोग हस्तशिल्प से रंगीन बुनकरी के लिए भी जाने जाते हैं। इसके अतिरिक्त यह लोग मजदूरी भी करते हैं।

चित्र क्र.-42, पनका बुनकर   स्रोत- http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

पनका लोगों की व्युत्पति अभी तक अनवेशित नहीं है। रस्सेल्ल ने इन्हें द्रविण मूल का माना था, जिनकी व्युत्पति छोटा (चुटिया) नागपुर की पान जनजाति से हुई। पान से पहले गाँड़ा लोग बने फिर यह लोग।[308]

छत्तीसगढ़ में अधिकाँश पनका लोगों ने कबीर पंथ को अपनाया हुआ है। इनका दूसरा समूह शाक्त पंथ को मानता है। कबीर पंथ मानने वाले पनका, राज्य में, अधिक हैं। वे कहते हैं:-

पानी से पनका भए, बुन्दन राचे शरीर

आगे-आगे पनका बहे, पाछे दास कबीर

कबीर पंथ मानने वाले पनका अपने को शुद्ध मानते हैं और माँस और मदिरा से परहेज करते हैं। इनका शिक्षा के प्रति रूझान भी है। अब यह लोग सरकारी नौकरियों में सामान्य तौर पर आ रहे हैं। शाक्त पनका इसके विपरीयत हैं। वे बुनकरी करते हैं और अपनी रंगीन बुनकरी की पृथ्क पहचान बानाने में सफल रहे हैं।

इनके भी कई गोत्र हैं, जो पशुओं और वृक्षों के नाम पर हैं। यह लोग अपनी जाति के अन्दर ही विवाह करते हैं। लड़कियों का विवाह जल्दी करते हैं।

यह लोग हिन्दू धर्म का पालन करते हैं। शाक्त पनिका में यह भावना अधिक प्रबल है। कबीर पंथी कबीर के अनुयायी हैं। वे छोटे मनकों की माला पहनते हैं। कबीर भजनों को गाते हैं। मूर्ति और जाति प्रथा के विरोधी हैं। गाँव में कबीर-चौरा नामक चबूतरा बनाते हैं। इनका प्रधान महन्त कहलाता है, जिसका एक दीवान होता है। माघ, फाल्गुन और कार्तिक पूर्णिमा को विशेष पूजा करते हैं। हिन्दू धर्म का ही पालन करते हैं। सभी पनका हिन्दू त्योहारों, रीति-रिवाजो, संस्कारों आदि का पालन करते हैं। सामान्यतः सभी पनका

308 R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The Tribe and Castes of the Central Province of India, P.324

शाकाहारी हैं। माँस-मदिरा सेवन पर जाति वाह्य किया जाता है। सामान्यतः श्वेत वस्त्र ही पहनते हैं।

स्त्री के बदचलन होने पर ही तलाक दिया जाता है, वह भी उसे एक बार सचेत करने के उपराँत। पुरूष को सामाजिक भोज देना पड़ता है, जिसे मस्ती-जीती का भात कहते हैं। शव का सिर उत्तर दिशा में रख कर जलाते हैं।

20. तेलीः-

तेली जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य के सभी जिलों में हैं। इसमें ठाठ, साहू और राठौर सम्मलित हैं। यह साहू कोलता या कुलता साहू से और यह राठौर राजपूत राठौर से पृथक है। सामान्यतः यह लोग राठौर और साहू सरनेम लिखते हैं। यह जाति एक दबाव समूह के रूप में भी सामने आई है।

यह एक कर्म आधारित व्यवसायी जाति है। जिन तेलियों ने मुस्लिम धर्म अपनाया था, वे रोशनदार, मलिक या मुस्लिम तेली कहलाए। छत्तीसगढ़ में हिन्दू तेली ही हैं। यह लोग तेल पेरने, निकालने और विक्रय का कार्य करते हैं। सामान्यतः खाद्य तेल। कोल्हू और बैल इनका पारम्परिक उपकरण रहा है। तेली शब्द तेली से ही बना है।

यह लोग अपने को साहू (वैश्य) कहते हैं और सरनेम के रूप में सा, साव, साहू, बकाने, पुरूस्ती, ड़ेहरा, नाथिले, गुलहाने, जेस्ती, गुप्ता, प्रधान, सिरभटे, मिसुरकार, साकारकार, वाटगह्टे, मण्ड़ल, साहा, बंजारी, गोरी, दास, साधु, छोटवे, कार्दिले, देहार्दे, शिन्दे, कारपे, बेले, तेली, लंजवारे, असमवार, चौधरी आदि लगाते हैं।

भारत में इनकी जनसंख्या का अनुमान 1 करोड़ 65 लाख का है, जिसमें से लगभग 24 लाख छत्तीसगढ़ में माने जाते हैं और उसमें से लगभग 13 लाख तेली छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं।[309]

तेली लोगों की कई उपजातियाँ हैं। जैसे- राठौर, सावजी, तुरमाल, एकबैली, व्दौबैली, तिलवाना आदि।[310] पश्चिम भारत में चौहान तेली भी हैं। उपनिवेश काल में तेल का व्यपार लाभप्रद होने पर कुछ कृषक जातियाँ इसमें सम्मलित हुई। चौहान एक ऐसी ही उपजाति हो सकती है।

छत्तीसगढ़ में तेली हिन्दू हैं। कुछ ने इसका सतनाम पंथ भी अपनाया है।

21. रजवारः-

रजवार जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य के सरगुजा सम्भाग में निवास करते हैं। अन्य भागों में नगण्य प्राय हैं। इनका व्यवसाय कृषि मजदूरी और कृषि है।[311]

इनकी व्युत्पत्ति के विषय विभिन्न मत हैं। प्रथम- भुईंया जाति से व्युत्पति का। द्वितीय- डाल्टन का द्रविण का (चिलो नृत्य के कारण)। तृतीय- कुर्मी पुरूष और कोल महिला के मेल से व्युत्पति का। इसी कारण

---

[309] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php?rop3=113757&rog3=IN

[310] (Edited by) A. Hasan and J. C. Das-People of India -Uttar Pradesh, Vol.-XLII

[311] डा.संजय अलंग-कोरिया रियासत का प्रशासनिक अध्ययन

से कुछ जातियाँ इनसे पानी नहीं पीतीं थीं। चतुर्थ- एक ऋषि की दो संतानों में से एक रजवार और एक मुसहर होने का।[312]

भारत में इनकी जनसंख्या 543,000 अनुमानित की गई है, जिसमें से मात्र 2,500 लोग ही छत्तीसगढ़ हेतु अनुमानित किए गए हैं, जिनमें से 2,200 छत्तीसगढ़ी की उपबोली सरगुजिहा भी बोलते हैं।[313] यह लोग छोटा (चुटिया) नागपुर से छत्तीसगढ़ क्षेत्र में आए।

हिदू धर्म का पालन करते हैं। हिन्दू अराधयों को मानते हैं। हिन्दू त्योहार मनाते हैं। जन्म, विवाह और मृतक संस्कार भी हिन्दू हैं। इनकी स्त्रियाँ मृदा भित्ति चित्रकारी हेतु जानी जाती हैं।

(पाँच). सामान्य जातियाँ:-

विगत पृष्ठों में हमने छत्तीसगढ़ में निवासरत अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों पर चर्चा की। विभिन्न वर्ग की जातियों पर चर्चा करने के उपराँत अब सामान्य वर्ग की जातियों पर चर्चा शेष रह जाती है, जिस पर आगामी पृष्ठों पर चर्चा की जा रही है।

सामन्य वर्ग की जातियों में वह सभी जातियाँ सम्मलित हैं, जो कि अनुसूचित जनजाति, अनुसूचित जाति और अन्य पिछड़ा वर्ग में वर्गीकृत्त नहीं हैं। ऐसी जातियों का पृथक-पृथक उल्लेख कहीं-कहीं अवश्य है, पर यह वर्गीकृत्त और सूचीबद्ध नहीं हैं। अतः इनकी संख्या भी स्थापित नहीं की गई है। अतः इस वर्ग की जातियों का चिन्हाँकन और वर्णन सामान्य और सहज सुलभ सूचनाओं के आधार पर ही किया जाना होगा।

सामान्य वर्ग की इन जातियों को अब, अगड़ी जातियाँ (Forward caste या class) कहा जाने लगा है। यह वह जातियाँ हैं, जिन्हें भारत शासन और राज्य सरकारों द्वारा कोई आरक्षण नहीं दिया गया है। इन जातियों की सूची, संख्या और जनसंख्या स्पष्ट रूप से घोषित नहीं है। 2011 की जाति आधारित जनगणना के आँकड़े आने के उपराँत स्थिति स्पष्ट होने की आशा है। कतिपय सर्वेक्षणों के आधार पर इनकी जनसंख्या कुल जनसंख्या का लगभग 36-39% तक अनुमानित है। इसका अधिक विस्तार किया जाए तो इसमें अन्य धर्मों के लोग भी आ जाएगें, जो कि आरक्षण हेतु पात्र नहीं माने गए हैं।

राष्ट्रीय सर्वेक्षण सूचकांक के सर्वेक्षण में इन जातियों को भारत में लगभग 36% और मध्य प्रदेश में लगभग 21% पाया गया था। तब छत्तीसगढ़ भी मध्य प्रदेश का भाग था। एक अनुमान के अनुसार अधिकाँश वैश्य या बनिया जातियाँ, अग्रवालों के सभी समूह, इसी के समांतर अन्य व्यवसायी जातियाँ, केरल के अंबलावंशी, दक्षिण भारत के आर्य व्यास या चिट्टी या शेट्टी, सभी ब्राह्मण जातिय़ाँ, कई जाट जातियाँ, कर्नाटक कुर्क की खोड़वा जाति, सभी लबाना जातियाँ, सभी कायस्थ जातियाँ, कई महाजन जातियाँ, कई महिषस्य जातियाँ, महाराष्ट्र की मराठा जाति, दक्षिण की नायर और बुंट जातियाँ, सभी राजपूत और क्षत्रीय जातियाँ, उड़ीसा की पटनायक जाति, कर्नाटक की लिंगायत या वीराशैव जाति, पंजाब के सभी खत्री समूह, सभी अरोड़ा समूह, सभी सिन्धी आदि को सामान्यतः इस सामान्य वर्ग में

---

[312] R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The Tribe and Castes of the Central Province of India, P.575-576

[313] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php?rop3=113422&rog3=IN

चिन्हित किया जा सकता है।

कुछ जातियाँ ऐसी भी हैं जो भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रवर्गों में हैं। जैसे- तमिलनाडू में चट्टियार या चेट्टी अन्य पिछड़ा वर्ग में, विश्वकर्मा कई राज्यों में अन्य पिछड़ा वर्ग में, बिहार में कई वैश्य और बनिया जातियाँ अन्य पिछड़ा वर्ग में, बोयार केन्द्र सरकार के अन्य पिछड़ा वर्ग में, धाँगर महाराष्ट्र, गुर्जर पाँच राज्यों में, काँपू की कई उपजातियाँ आन्ध्र प्रदेश और तमिलनाडू में, कानूनीग़ार तमिलनाडू में, कुरमी पाँच राज्यों में, कुम्हार कई राज्यों में, नायडू और उसकी उपजातियाँ, वेल्या आन्ध्र प्रदेश में, कम्मा आन्ध्र और तमिलनाडू में, रेड्डी रेडीयार के रूप में कुछ राज्यों में।

कुछ अन्य धर्मावलम्बी भी सामान्य वर्ग में आते हैं। जैसे- सिन्धु नदी के पश्चिम से आने वाले और बसने वाले मुस्लिम समूह और जातियाँ, दक्षिण के कई इसाई समूह और जातियाँ, लगभग सभी जैन, पारसी, यहूदी, अल्प संख्या में बौद्ध आदि।

उक्त वर्णन के आधार पर आगामी वर्णन के लिए कुछ आधार मिलता है। छत्तीसगढ़ राज्य में अनारक्षित सामान्य या अगड़ी जातियों के रूप में चिन्हित होने वाली जातियाँ हैं- अपनी उपजातियों के साथ वैश्य वर्ण की बनिया जातियाँ (कुछ को छोड़कर। जैसे कलार) सभी विभाजनों और उपविभाजनों के साथ सभी ब्राह्मण जातियाँ, कुछ राजपूत और क्षत्रिय जातियों को छोड़ कर अधिकाँश राजपूत और क्षत्रिय जातियाँ, सभी पंजाबी जातियाँ (जैसे-पंजाबी ब्राहमण, खत्री, अरोड़ा, अधिकाँश सिक्ख आदि)(कई राज्यों में सिक्खों की कुछ जातियाँ अन्य प्रवर्गों में भी हैं।), सभी जैन जातियाँ (हालाँकि अब जैन धर्म एक अलग अल्पसंख्यक धर्म के रूप में मान्य किया गया है।), सभी कायस्थ जातियाँ, मराठा, सिन्धी जातियाँ आदि।

हालाँकि इस कथित सामान्य वर्ग में भी गरीबी और पिछड़ापन है। ग्रामीण क्षेत्रों में इन अगड़ी जातियों में मात्र 6.4% लोग ही ऐसे थे, जिनकी आय ₹ 925/- प्रतिमाह थी। जबकी 30% ग्रामीण इस प्रवर्ग में हैं। इस प्रवर्ग के 30% लोगों की आय ₹ 525/- प्रति माह से काम थी। मात्र 5.6% लोग ही ऐसे थे जिनकी मासिक आय ₹ 1,925/- से अधिक थी। केवल 8% स्नातक और 30% साक्षर पाए गए थे।

युनाइटेड़ नेशन 1 $ अमेरिकी डालर प्रतिदिन से कम आय को गरीबी मानता है। भारत में इसे परिवर्त्तित कर 0.25 अमेरिकी डालर किया गया है। इस आधार पार छत्तीसगढ़ ग्रामीण क्षेत्रों में 26% लोग गरीब माने गए हैं। छत्तीसगढ़ सरकार के पृथक-पृथक विभाग में यह आँकड़ा पृथक-पृथक है। अतह इसे भी राष्ट्रीय सर्वेक्षण सूचकांक पार ही आधारित किया जा रहा है। यदि 1 अमेरिकी डालर को ही आधार माने तो 65% लोग गरीब की श्रेणी में आ जाऐंगें। इस उल्लेखित सर्वेक्षण में कई अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियाँ आगे थीं। यूथ फार इक्वल्टी जैसे कई संगठन आरक्षण और खुली प्रतियोगिता के मुद्दे पर ऐसे आँकड़े रखते आए हैं, जो निरूत्तरता में ही तब्दील हुए हैं।

छत्तीसगढ़ की सामान्य जातियों पर चर्चा निम्नाँकित है।:-

1. बनियाः-

बनिया जाति वैश्य वर्ण में हैं। अब वैश्य और बनिया लगभग समान अर्थो में उपयोग होने लगा है। वैश्य वर्ण की बनिया जाति के लोग छत्तीसगढ़ के समस्त जिलों में निवास करते हैं। भारत में इनकी जनसंख्या ढ़ाई करोड़ से ऊपार मानी जाती है, जिसमें से से एक लाख से ऊपर लोग छत्तीसगढ़ में अनुमानित हैं, जिनमें से लगभग 54 हजार छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं।[314]

बनिया का सामान्य अर्थ व्यापार करने वाली जातियों से लगाया जाता है। यह शब्द संस्कृत के वाणिज्य से बना है। छत्तीसगढ़ में बनिया जाति के अंतर्गत कई वैश्य जातियाँ सम्मलित हैं। वह हैं- अग्रवाल,

[314] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

अग्रहरि, अजोध्यावासी, अस्थि, दोसार, गहोई, गोलापर्व, कसारवानी, कसाऊधन, खण्डेलवाल, लाड़, लिंगायत, महेश्वरी, नेमा, ओसवाल, परवार, श्रीमाली, उमरे आदि।[315] यहाँ पर उन्हीं बनिया लोगों की उन्हीं उपजातियों की चर्चा की जा रही है, जो छत्तीसगढ़ राज्य में रहती हैं।

छत्तीसगढ़ में बनिया जाति में ***अग्रवाल*** सर्वप्रमुख हैं। राष्ट्र में इनकी जनसंख्या का अनुमान 45 लाख से अधिक का है। छत्तीसगढ़ में इनकी जनसंख्या लगभग 15 हजार अनुमानित है, जिसमें से लगभग सभी हिन्दी भाषी हैं और साथ ही उसके आधे छत्तीसगढ़ी का द्वितियक बोली की तरह व्यवहार करते हैं।[316] ***बनियों की अग्रवाल उपजाति, छत्तीसगढ़ राज्य का, सर्वाधिक सम्पन्न और सशक्त जाति समूह है। इसे राज्य का सबसे सशक्त दबाव समूह भी माना जाता है। यह लोग राज्य के सबसे सफल और राजनीतिक-आर्थिक प्रभुत्व वाले लोग हैं।*** राष्ट्र में भी इनकी स्थिति यह ही है।[317] छत्तीसगढ़ नवीन राज्य बनने के उपराँत यह लोग राष्ट्र के अन्य भागों से इस राज्य की ओर बड़ी संख्या में प्रवर्जित हो रहे हैं।

अग्रवाल जाति का विकास अग्रेय गणराज्य से हुआ है। इस गणराज्य में सिकंदर की सेनाओं का डटकर मुकाबला किया। जब उन्हें लगा कि वे युद्ध में जीत हासिल नहीं कर पायेंगे तब उन्होंने स्वयं अपनी नगरी को जला लिया।[318] हरियाणा के हिसार जिले का अग्रोहा कस्बा इसका मुख्य स्थान माना जाता है, जिससे कि अग्रवाल शब्द बना। इसका अर्थ है- अग्रोहा के लोग।

अग्रवाल जाति का उदय हिन्दू वैष्णव पंथ के अनुयायी सूर्यवंशी क्षत्रीय शासक अग्रसेन से मानी गई है। पहले इनका क्षेत्र कुरू-पाँचाल राज्य का भाग था। यह कहा जाता है कि, अग्रसेन प्रतापनगर के शासक बल्लभ के पुत्र थे। उसके 17 या 18 पुत्र नाग राजा वासुकि की कन्याओं से विवाहित हुए। इसी कारण से अब हिन्दू और जैन अग्रवाल साँप या नाग साँप को नहीं मारते और कई लोग अपने द्वारा पर साँप भी चित्रित कराते हैं। नाग और ग्वाल (गोली) कन्याएँ ही पारम्परिक रूप से सर्व सुन्दर मानी गई हैं और इसी कारण से सभी किंवन्दती विवाह इनसे ही बताए जाते रहे हैं। हिल्टन नागों को बारबेरियन, यूची या कुषाण मानता है। इसी से राजपूत, टाक, हैहय आदि की व्युतपति भी मानी जाती है। कहीं-कहीं अग्रसेन को अग्रोहा के साथ आगरा का शासक भी माना गया है। अब यह कहा जाने लगा है कि, लक्ष्मी द्वारा अग्रसेन को क्षत्रीय वर्ण छोड़ने और वैश्य वर्ण अपनाने का आदेश दिया था। तब वह अग्रोहा में बसा। एक अन्य प्रसंग में यह कहा जाता है कि अगर ऋषि की नाग कन्या से विवाह करने पर 18 पुत्र हुए। इसी से अग्रवालों के 18 गोत्र बने। कहीं-कहीं साढ़े सत्रह भी कहा जाता है। सन्दर्भ यह दिया जाता है कि, अग्रसेन ने 18 यज्ञ किए। अंतिम यज्ञ को बलि देने से इंकार कर अधूरा छोड़ दिया। उसके उत्तराधिकारी विभू हुआ।[319]

अग्रोहा में ही वहाँ बसने वाले को एक ईंट और एक रूपया देने तथा व्यापार हानि पर एक ईंट और पाँच रूपिया देने की जातिय सहकारी प्रथा की नींव पड़ी। यह लोग पहले दिल्ली, हिसार, ग्वालियर और राजस्थान में फैले, फिर पूरे भारत और अब विश्व के कई प्रमुख शहरों में। 1354 में फिरोज शाह तुगलक ने अग्रोहा में नया नगर हिसार-ए-फिरोज़ा (फिरोज का किला) बसाना चाहा। यही बाद में हिसार कहलाया, जो अग्रवालों का मूल शहर माना जाता है। यह लोग राजस्थान के मारवाड़ और शेखावती क्षेत्र में भी बसे और मारवाड़ी बनिया कहलाए।

यह माना जाता है कि, संतान हीनता के कारण अग्रसेन ने समस्त नगरवासियों को संतान मान

---

[315] Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India,Vol.-II,P.97-110

[316] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[317] Suresh Kumar Singh, B. V. Bhanu-People of India(Popular Prakashan,Mumbai), Anthropological Survey of India (Kolkata),P.46,(ISBN 8179911004. OCLC 58037479)

[318] http://www.bhartiyapaksha.com/?p=4915

[319] http://en.wikipedia.org/wiki/Agarwal

लिया था और वे सभी अग्रवाल कहलाए।, इसे इस उपजाति में कई जातियों या समुदायों के सम्मलित होने के संकेत के रूप में लिया जाता है। स्पष्ट है कि, यह एक मिश्रित जाति है। गहोई बनियों की कथा भी ऐसा संकेत करती है। सम्भवतः इसी कारण से अग्रवाल बनियों में कई तरह के नयन-नक्श और आकार-प्रकार के मनुष्य समुदाय विकसित हुए। जैसे- इसमें नाटे, गोल मूँह और चपटी नाक वाले लोग भी हैं और तीखी नाक, चौड़े माथे और लम्बे ऊँचे लोग भी।

छत्तीसगढ़ में अग्रवाल सहित सभी बनिया जातियों में दो प्रमुख विभाजन हैं- बीसा और दसा अर्थात बीस और दस। बीसा दसा से ऊँचे माने जाते हैं। दसा को विधवा पुर्नविवाह या नाग पत्नी की दासीयों/नौकरानियों अर्थात गैर अग्रवाल स्त्रियों से उत्पन्न माना जाता है। इन्हीं उपसमूहों के मध्य ही विवाह सम्बन्ध होते हैं। छत्तीसगढ़ में एक नया और अतिरिक्त विभाजन पाँचा का भी है। इसका अर्थ पाँच है। अग्रवाल सहित बनियों में 20 सूत्रीय आचार सहिंता प्रचलित है। इसके सभी बिन्दुओं को मानने वाले बीसा, आधे मानने वाले दसा और चौथाई मानने वाले पाँचा विभाजन में आते हैं। इसके अतिरिक्त अग्रवालों के 18 (या साढ़े सत्रह) गोत्र हैं- एरण, बंसल, बिन्दल, धुम्या, धरण, गर्ग, गोयल, गोयनका, गंगल या गोल, जिन्दल, कंसल, कुच्छल, मुद्गल, मित्तल, नंगल, सिंघल, तायल और तिंगल।[320]

छत्तीसगढ़ क्षेत्र में प्रथम बन्दोबस्त 1860-70 के समय से ही अग्रवाल लोगों की बड़ी सम्पतियाँ प्रविष्ट हुईं। अब उसमें और इज़ाफा हुआ है। यह माना जाता है कि, भारत में भू बन्दोबस्त लागू करने वाले और अकबर के नौ रत्नों में से एक राजा टोड़रमल भी अग्रवाल ही थे।

यह लोग हिन्दू धर्म के वैष्णव पंथ के अनुयायी हैं। हिन्दू अराध्यों की उपासना करते हैं। हिन्दू रीति-रिवाजो को मांते और हिन्दू त्योहारों को मानाते हैं। दीपावली को वैश्य वर्ण का ही त्योहार माना जाता था। यह अब भी, इनका, प्रमुख त्योहार है। अब अग्रसेन जयंती को अपनी उपस्थिति दर्शाने का सशक्त माध्यम मान अधिक दिखावे के साथ मनाने लगें हैं। यह लोग सामान्यतः माँस और मदिरा से दूर रहने की कोशिश करते हैं।

बनियों की ***अग्रहरी*** उपजाति भी छत्तीसगढ़ राज्य में है। यह लोग मुख्यतः रायपुर, बिलासपुर और कोरिया जिलों में हैं। भारत में इनकी जनसंख्या साढ़े तीन लाख के लगभग और छत्तीसगढ़ में ढ़ाई हजार के लगभग मानी गई है, जिसमें से लगभग हजार लोग छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं।[321] यह लोग अधिकाँशतः गुप्ता सरनेम उपयोग करते हैं और बनिया में कश्यप (या कुचेचल) गोत्र में माने जाते हैं। इन्हें अग्रवाल का भाग भी मान लिया जाता है।[322]

यह लोग अपने को अग्रसेन से ही जोड़ते हैं। क्रुक का मानना है कि, यह लोग अंशतः वैश्य से और अंशतः ब्राह्मण से जुड़े हैं। नैसफील्ड का मानना है कि, यह लोग अग्रवालों से खान-पान सम्बन्धी तुच्छ लड़ाई पर अलग हुए। प्रारम्भ में अपनी स्त्रियों को दुकानों से पृथ्क नहीं रखने के कारण अलग नज़रों से देखे गए।[323]

यह लोग भी हिन्दू हैं और उनकी सभी परम्पराओं को मानते हैं। कहीं-कहीं इनमें से कुछ नानक पंथ को भी मानते हैं। कुछ राज्यों में कुछ सिक्ख भी हुए।

अजोध्यावासी बनिया अयोध्या क्षेत्र के निवास से जोड़े जाते हैं, जो कि इस उपवर्ग के नाम का आधार बना। अयोध्या अवध क्षेत्र का पुराना नाम माना जाता है। अपराध करने वाली एक जनजाति का नाम भी अयुध्या रहा है, यह नाम भी अयोध्या से निकला। अजोध्यावासी कोरिया जिले में हैं। छत्तीसगढ़ में इनकी संख्या नाममात्र को है। भारत में भी इनकी जनसंख्या 95 हजार ही अनुमानित की गई है।[324] यह लोग हिन्दू हैं। कुछ जैन भी हैं। हिन्दू रीति-रिवाजों का पालन करते हैं। तलाक मान्य है, पर तलाक की ओर

---

320 http://en.wikipedia.org/wiki/Agarwal

321 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

322 http://en.wikipedia.org/wiki/Agrahari

323 (Edited by) B. R Rizvi & J C Das-People of India-Uttar Pradesh, Vol.- XLII, Part-One, P.285

324 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

झुकाव कम है। बदचलनी पर स्त्री को समाज बाह्य करने की परम्परा रही है। सगोत्रीय और चचेरे-ममेरे भाई-बहनों में विवाह वर्जित है। जनेऊ संस्कार को गुरमुख कहते हैं। शव को जलाते हैं। देवी पूजक हैं। अन्य बनिया लोग दीपावली को मुख्य त्योहार मानते हैं, पर यह लोग दशहरे को। तब बलि और माँस खाने की परम्परा भी बनी। विद्वान अयुध्या जनजाति की उत्पति इसी बनिया वर्ग से मानते हैं। यह जनजाति हिंसा रहित नकली आभूषण, नकली सिक्के और रूपए आदि बनाने, आर्थिक अपराध करने और खाली घरों में चोरी करने आदि में लिप्त जनजाति रही है। दोनों का देवी भक्त होना और समान रीति-रिवाज मानना समानता के संकेत के रूप में लिया गया है।[325]

अस्थि बनिया भी, छत्तीसगढ़ में, अत्यल्प हैं। वे अपना मूल मध्य प्रदेश के टीकमगढ़ को मानते हैं। यह बनिया जाति में ऊँचे स्तर पर नहीं माने जाते। यह माना जाता है कि, एक अहीर बनिया बना था और यह लोग उसी की व्युत्पति हैं। अधिकाँशतः हिन्दू हैं, कुछ जैन हैं। पहले शव गाड़ने के उपराँत जलाते थे, अब केवल जलाते हैं। तब कहा जाता था- अर्द्ध जले, अर्द्ध गरे; जिनके नाम अस्थि पड़े।[326]

चरंगरी या ***समैया*** बनिया जैनों का एक छोटा समूह है। यह छत्तीसगढ़ में अत्याल्प हैं। यह लोग तारण स्वामी के अनुयाई हैं, जिन्होंने जैन तीर्थांकरों की पूजा किए जाने का विरोध किया था। इनका मुख्य पवित्र स्थान ग्वालियर में मल्हारगढ़ है। फाल्गुन में यहाँ उत्सव मनाते हैं। अब सामान्य जैन मन्दिरों में भी जाने लगे हैं। इनकी व्युत्पति परवार बनिया जाति से हुई। यह लोग भी बीसा और दसा में बँटे हैं।[327]

धुसार या ***भार्गव धुसार*** बनियों की व्युत्पति विवादास्पद है। वे बनियों की उपजाति माने जाते हैं, पर व्युत्पति ब्राह्मण से मानते हैं। वे अपना नाम धूसी या धोसी पहाड़ी से लेते हैं, जो नरनौल (अलवर, राजस्था) के पास है। भार्गव संज्ञा तो भृगु ऋषि से ली गई है। मनु भृगु को अपना पुत्र बता कर वंश परम्परा का प्रारम्भ करते हैं। हालाँकि यह बात, इन लोगों ने, हाल में ही अपनी व्युत्पति हेतु जोड़ी है। कहीं-कहीं मध्य काल में दिल्ली के शासक हेमू से भी जोड़ा जाता है। धुसार ब्राह्मण भी होते हैं, पर इनके उनसे विवाह सम्बन्ध नहीं हैं। यह माना जाता है कि, सम्बहवतः यह लोग वे ब्राहमण हो सकते हैं, जो बनिया बने। पंजाब में यह लोग कहीं-कहीं ब्राह्मण हैं, तो कहीं बनिया। हिन्दुओं के विपरीत इन लोगों में सुबह का प्रथम भोजन या कलेवा पूजा पूर्व लेने की परम्परा रही है, जो अब छूट सी रही है। माँस, मदिरा से दूर रहते हैं। कहीं-कहीं यह लोग गायन हेतु भी जाने जाते हैं। पुराने मध्य प्राँत (और बरार) का भार्गव बैंक इसी उपजाति के लोगों का था।[328] भारत में इनकी जनसंख्या सवा दो लाख से कुछ अधिक अनुमानित है, जिसमें से कुछ सौ लोग ही छत्तीसगढ़ में रहते हैं और उसमें से लगभग सौ लोग छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं।[329]

दुसार या ***दूसरा*** बनिया का आशय द्वितीय से है। यह दूसरा संज्ञा विधवा को द्वितीय (या पुर्नविवाह) की सहज अनुमति देने के कारण आई। इनकी व्युत्पति ऊमार बनियों से मानी जाती है। हालाँकि यह लोग उनसे नीचे माने जाते हैं। इनका मूल स्थान गंगा-यमुना दोआब और अवध माना जाता है। वहाँ से यहाँ आने के उपराँत इनके तीन और समूह बने- दोआबिया, इलाहाबादिया और अवधिया, तथा इन्हीं में आपसी विवाह भी होने लगे। इनके विभाजन गंगापारी (अवध का), सगराहा (सागर का), मकराहा (मक्के का व्यापारी) और तमखुहा (तम्बाखू का व्यापारी) में है। यह लोग अपने आप को कश्यप गोत्र का मानते हैं।

---

325 Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

326 वही

327 Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

328 Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

329 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

वैष्णव पंथ के हिन्दू हैं। सनाढ्य ब्राह्मण इनके पुजारी हैं। अन्य ब्राह्मण इन्हें नीचा मानते हैं। यह लोग अधिकाँशतः व्यापारी हैं। सामान्यतः सोना, चाँदी, अनाज, तम्बाखू और मनिहारी का व्यापार करते हैं। इनमें वर मूल्य देने की प्रथा है।[330] छत्तीसगढ़ में अत्याल्प ही हैं।

गहोई बनिया भी छत्तीसगढ़ में अत्यन्त अल्प हैं। भारत में इनकी जनसंख्या तीन-सवा तीन लाख के मध्य अनुमानित की गई है। छत्तीसगढ़ में कुछ सौ ही है, जिसमें से सौ के लगभग छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं।[331] इनका मूल स्थान बुन्देलखंड़ का खड़्गपुर है। यह अपनी व्युत्पति की यह कथा कहते हैं- एक शाला में एक शिक्षक था। शाला में बीया पाँण्ड़े ब्राह्मण आया। उसने बूकम्प की भविष्यवाणी कर सभी विद्यार्थिओं को बाहर आने को कहा। मात्र 12 आए। शेष दब मरे। शिक्षक ने इन 12 को ले एक जाति बनाई, जो गहोई कहलाई। इसका अर्थ है कि, वह अंश जो शेष रहा। इस शाला शिक्षक को वे अपना प्रवर्त्तक मानते हैं। विवाह आदि आयोजनों पर उसका चित्र दीवारों पर बना मक्खन और पुष्प द्वारा उसकी पूजा करते हैं। अतः अग्रवालों की तरह यह भी एक मिश्रित जाति है, जिसमें कई जातियाँ सम्मलित हैं। इनके 12 विभाजन या गोत्र हैं, जो टोटेम आधारित हैं। यथा- मोर, सुहनिया (सुन्दर), नगरिया (नगाड़ा), पहाड़िया (पर्वत), मतेली (ग्राम प्रमुख), पिपरवनिया (पीपल), ददारिया (गायक) आदि। सगोत्रीय विवाह नहीं है। विवाह में पुराने नागपुर राज्य के सिक्कों का उपयोग अवश्य करते हैं। वैष्णव पंथी हिन्दू हैं। इनके पुरोहित भार्गव हैं। वे अपने प्रवर्तक शिक्षक को भी भार्गव मानते हैं। दीपावली पर अपने व्यपार, बही-खाते और कलम-दावात की पूजा करते हैं। कथित लोक व्यवहार में इनके अत्यधिक चालाक और लालची होने को, रस्सेल्ल प्रचलित कहावतों द्वारा इंगित करता है। है। वह तो यह भी इंगित करता है कि, पिता से भी चालाकी नहीं चूकते।[332]

गोलापूरब या ***गोलहरे*** बनिया छत्तीसगढ़ में अत्याल्प हैं। इनकी व्युत्पत्ति भी बुन्देलखण्ड़ से हुई। इनमें अधिकाँश दिगम्बर जैन हैं। कुछ लोग ही हिन्दू हैं। कहीं-कहीं इनके विवाह सम्बन्ध परवार बनियों से भी होते हैं, जो कि दिगम्बर जैन हैं। यह लोग नेमा बनियों से भी सम्बन्ध रखते हैं। यह माना जाता है कि इनकी व्युत्पति पुरबिया बैस राजपूत की अहीर रखैल की संतान से हुई। गोलक का अर्थ अवैध से और पूरब का अर्थ पूरबिया से। सम्भवतः इसी नाम से इस कथा को आधार मिला। कहीं-कहीं इन्हें गोलहरे भी कहा जाता है।[333]

कसारवानी बनियों के नाम की व्युत्पति काँसा (Bell metal) शब्द से हुई। इनकी व्युत्पति भी ठठेरों (कसार और तमेर) से हुई, जो धातु हस्तशिल्पी हैं। भारत में इनकी जनसंख्या पौने चार लाख से अधिक अनुमानित की गई है। छत्तीसगढ़ में भी यह पर्याप्त संख्या में हैं।[334] छत्तीसगढ़ में यह उपजाति मिर्जापुर से आई। यह लोग रायपुर सम्भाग में ही हैं। पूर्व काल में छत्तीसगढ़ या रतनपुर राज्य का बेल मैटल का आकर्षक कार्य या उद्योग ही इन्हें यहाँ लाने का कारण बना। बर्त्तन बेचना इनका मुख्य व्यवसाय रहा है। हालाँकि अब यह लोग अन्य व्यवसायों में चले गए हैं। यह लोग कसोधन बनियों की तरह पूरबिया और पछइहा (पश्चिमी) में बँटे हैं। यह लोग बनिया आचार सहिंता को मानने को उत्सुक नहीं रहते हैं। माँसाहारी हैं, पर मदिरा से दूर रहने की कोशिश करते हैं। विधवा और तलाशुदा का पुर्नविवाह मान्य करते हैं। दो परिवारों में विवाह सम्बन्ध कन्याओं के अदान-प्रदान से भी करते हैं। जनेऊ को अनिवार्यता के रूप में नहीं लेते। इनके पुरोहित सरवरिया ब्राह्मण हैं। अग्रवाल, ऊमरी, गहोई तो इनसे भोजन ले लेते हैं, पर कई

---

[330] Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

[331] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[332] Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

[333] वही

[334] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

ब्राह्मण और राजपूत नहीं। इनमें जाति पंचायत है, जिसका प्रमुख चौधरी कहलाता है। सामान्यतः इसी पंचायत में विवाह सम्भन्ध निर्धारित होते हैं, जहाँ नाई अनिवार्यतः उपस्थित रखा जाता है। यह कहा जाता है कि, कसारवानी वह, जो हिसाब रखे अर्थात बनिया।[335]

कसौन्धन या ***कसोंधन*** बनिया छत्तीसगढ़ में निवास करते हैं। राज्य में इनकी जनसंख्या पर्याप्त है। भारत में यह साढ़े चार लाख से अधिक अनुमानित किए गए हैं।[336] इस उपजाति के संज्ञा शब्द की व्युत्पति काँसा (Bell metal) और धन शब्द से हुई। यह लोग भी राज्य के काँसे के कार्य के कारण आए। यह भी कसारवानियों की तरह बर्त्तन का ही व्यपार करते थे। इनकी व्युत्पति भी धातु हस्तशिल्प जाति ठठेरा से हुई। सम्भवतः यह लोग कसारवानीयों से ही अलग होकर अस्तित्व में आए। दोनों लोग पूरबिया और पछइहा (पश्चिमी) में विभाजित हैं। ***छत्तीसगढ़ में कबीर के पट शिष्य धर्मदास थे, जिन्होंने कबीर पंथ की स्थापना की, वह कसौन्धन बनिया ही थे। छत्तीसगढ़ में कबीरपंथ के महंत और कवर्धा के उच्च पुजारी बनियों की इसी उपजाति के रहे।*** इसी कारण से यहाँ कसौन्धन बनिया कबीर पंथी हो गए। शेष हिन्दू ही रहे।[337]

खण्ड़ेलवाल बनिया उपजाति सम्पन्न और उच्च मानी जाती है। यह लोग छत्तीसगढ़ में निवासरत हैं। भारत में इनकी जनसंख्या एक लाख दस हजार ही मानी गई है।[338] खण्ड़ेलवाल संज्ञा से उत्तर प्रदेश में ब्राहमणों की भी एक उपजाति है। खण्डेलवाल बनियों की संज्ञा राजपूताना के जयपुर क्षेत्र के शेखावटी संघ के मुख्यालय खंड़ेला से बनी। यह लोग हिन्दू धर्म के वैष्णव पंथ को या जैन धर्म को मानने वाले हैं।[339]

लाड़ बनियों की जनसंख्या छत्तीसगढ़ में अत्याल्प है। यह लोग गुजरात से आए। गुजरात का पुराना नाम लाट प्रदेश था और इसीसे इनकी संज्ञा बनी। भारत में इनकी जनसंख्या ड़ेढ़ लाख से कुछ अधिक ही अनुमानित है, जिसमें से कुछ सौ ही छत्तीसगढ़ में अनुमानित हैं, जिसमे से भी 30-40 लोग ही छत्तीसगढ़ी भी बोल लेते हैं।[340] हालाँकि इनकी मुख्य भाषा गुजराती ही है। इनमें भी बीसा और दसा समूह हैं। इनके पुरोहित खण्ड़ेलवाल ब्राह्मण हैं। लाड़ महिलाएँ, विशेषकर बड़ौदा क्षेत्र से आने वाली, अपने वस्त्र विन्यास और सुरूचि के लिए जानी जाती हैं। ***यह लोग हिन्दू धर्म के वैष्णव पंथ के वल्लभाचार्य मत (पुष्टि मार्ग) को मानते हैं और कृष्ण पूजक हैं। बल्लभाचार्य का जन्म छत्तीसगढ़ के चम्पारण में हुआ था***, जहाँ गुजरात के लाट बनिया लोगों ने मन्दिर भी बनवा लिया है।[341] वे लोग बड़ी संख्या में गुजरात से भी तीर्थ यात्रा हेतु आते हैं। इनकी कुलदेवी असनी की आशापूरी हैं। रस्सेल्ल इन्हें यौन इच्छओं की ओर झुकाव रखने वाला भी मानता है।[342]

---

[335] Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

[336] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[337] Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

[338] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[339] Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

[340] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[341] http://www.chhattisgarh.com/raipur/travels/raipurtravels.htm#CHAMPARANYA

[342] Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

लिंगायत बनिया भी छत्तीसगढ़ में अत्याल्प हैं। यह लोग हिन्दू धर्म के शैव पंथ के लिंगायत (वीरशैव) मत के अनुयायी हैं। भारत में इनकी जनसंखया 56 हजार ही अनुमानित है।[343] छत्तीसगढ़ में इनकी उपस्थिति रायगढ़ और जशपुर में ही दिखाई गई है।[344] यह लोग अन्य बनियों के साथ भोजन और विवाह का व्यवहार नहीं रखते हैं। इनके पाँच उपविभाजन हैं- पंचम, दिक्षावंत, चिलीवंत, ताकलकर और खाण्ड़े। इनमें पंचम या पंचम सालिस महत्वपूर्ण हैं, यह वे ब्राह्मण हैं, जिन्होंने लिंगायत मत अपनाया। अष्टवर्न का पालन करते हैं। दिक्षावंत का सम्बन्ध दिक्षा (दीक्षित ब्राह्म्णों की तरह) से है, यह लोग पंचम लोगों से ही आए। ताकलकर संज्ञा तकाली वन से बनी। खाण्ड़े कनारा से हैं। चिलीवंत लोगों के भोजन को कोई गैर-लिंगायत देख ले तो त्याज्य हो जाता है। पर लिंगायत गोत्र निम्न जातियों की तर हैं। यथा- काओड़े (कौआ), तेली, धुर्वी (बौना), उनदकर (आग लगाऊ), गुड़करी (गुड़), धामनकर (धान गाँव) आदि। इनके जातीय नियम पुरातन और कड़े हैं। विधवा विवाह अमन्य है, परा पति और पिता की जाति में ही। तलाक मान्य है। शिवरात्री इनका मुख्य त्योहार है। सदा शिव लिंग भी धारण किए रहते हैं, जो मरने पर भी उनके साथ जाता है। शव को इस लिंग के साथ बैठा कर जलाते हैं, पर दुःख में सिर नहीं मुड़ाते। इसके गुमने पर खान-पान प्रतिबन्धित रहता है, जब तक कि दूसरा बनवा कर धारण न कर लिया जाए। यह लोग ब्राह्मण पुजारियों की सेवा नहीं लेते हैं और कर्मकांड़ स्वयं करते हैं, जो कि पंचम लोगों में से जंगम लोग कराते हैं। अधिकाँशतः लोग तेलगू भाषी हैं।[345]

महेश्वरी बनिया भी छत्तीसगढ़ में कम हैं। यह नाम इन्दौर के समीप नर्मदा तट पर स्थित महेश्वर से लिया गया है। हालाँकि इनमें से कुछ अपना मूल स्थान बीकानेर को मानते हैं। वे यह मानते हैं कि, इनका पूर्वज एक राजा था, जो अपने 72 अनुयाईयों के साथ पाषाण का हो गया था। उनकी पत्नियों को सती हेतु उदत्त देख शिव ने पुनः प्राण ड़ाल दिए। तब उन्होंने अस्त्र-शस्त्र छोड़ व्यपार अपना लिया। इस कथा के आधार पर इनके 72 गोत्र बने। यह लोग महेश्वरी में महेश शब्द को शिव से जोड़ते हैं। गुजरात में सभी गैर-जैन बैनियाओं को महेश्वरी कहा जाता है। यह लोग शिव से उत्पति अवश्य जोड़ते हैं, पर हिन्दू धर्म के वैष्णव पंथ को मानते हैं। कुछ जैन भी हैं। बनियों की यह उपजाति भी सम्पन्न और राजनीतैक-आर्थिक रूप से प्रभावशाली है। यह लोग सुरूचि सम्पन्न और बुद्धिमान माने जाते हैं।[346] कोरिया जिले में कोरिया कालरी की कोयला खदान लेने वाले नागपुर की फर्म बंशीलाल अबीरचन्द इसी उपजाति के थे।[347] इसी फर्म के कस्तूर चन्द ड़ागे (काम्पटी) बड़े बैंकर थे। भारत में इनकी जनसंख्या को लगभग 5 लाख अनुमानित किया गया है, जिसमें से छत्तीसगढ़ हजार-बारह सौ का ही अनुमान है, जिसमें से तीन-चार सौ को छत्तीसगढ़ी बोली भी आती है।[348]

नेमा बनिया भी छत्तीसगढ़ में कम हैं। कुछ नेमा कोरिया जिले में हैं।[349] यह लोग मध्य प्रदेश के नरसिंहपुर जिले से छत्तीसगढ़ आए और उत्तर छत्तीसगढ़ के जिलों में बसे। भारत में इनकी जनसंख्या

---

343 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

344 वही

345 Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

346 Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

347 डा.संजय अलंग-कोरिया रियासत का प्रशासनिक अध्ययन

348 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

349 डा.संजय अलंग-कोरिया रियासत का प्रशासनिक अध्ययन

110,000 अनुमानित है, जिसमें से कुछ सौ ही छत्तीसगढ़ में हैं और उनमे से लगभग 30-40 ही छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं।[350] इनकी व्युत्पति भी बुन्देलखण्ड में हुई मानी जाती है। यह लोग हिन्दू हैं। कुछ जैन भी हैं। कुछ लोग नेमा संज्ञा को निमाड़ से भी जोड़ते हैं। हालाँकि इस संज्ञा की व्युत्पति अधिक स्पष्ट नहीं है। एक कथा य्ह भी कही जाती है कि, परशुराम द्वारा पृथ्वी की क्षत्रीयविहीनता की क्रिया के समय 14 क्षत्रीय विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने हेतु आश्रम में थे और बच गए। इन्होंने वैश्य वर्ण अपनाया और नेमा इनसे हुए। इन्हीं से नेमाओं के 14 गोत्र बने, जो उनके पुरोहितों के नाम पर ही थे। इनमें भी बीसा, दसा और पाँचा विभाजन हैं। इनमें 52 और उप विभाजन हैं। सामान्यतः विधवा विवाह नहीं है। यह लोग तीक्ष्ण या तेज व्यापारी माने जाते हैं। रस्सेल यह कहावत का उल्लेखित करता है कि, जहाँ एक नेमा व्यापारी हो या एक भेड़ चरे वहाँ क्या बचेगा?[351]

ओसवाल बनिया छत्तीसगढ़ राज्य में हैं। भारत में इनकी जनसंख्या 8 लाख से कुछ कम अनुमानित है, जिसमें से 7 से 10 हजार छत्तीसगढ़ में होंगें और उसमें से ढ़ाई हजार लोग छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं।[352] बनिया जाति में अग्रवालों के उपराँत यह लोग ही महत्वपूर्ण माने जाते हैं। यह संज्ञा मारवाड़ के ओसिया या ओस नगर से ली गई। वे कहते हैं कि, यहाँ के राजा को पुत्र प्राप्ति एक जैन मुनि के आशिर्वाद से हुई। लोगों ने राजा के जैन हो जाने के भय से, उसे बाहर कर दिया। नगर देवी ओसा ने संत रतन सूरी को एक आश्चर्य द्वारा यह करने की प्रेरणा दी कि, एक रूई की कोनी को संत की पीठ में साँप में बदल दिया, जिसने राजपुत्र जयचन्द को डस लिया। तब वह सहपत्नी शयनरत था। जब दाह होने लगा तो तसंत ने रोक, युगल को यथावत शयन करते रहने को कहा। मध्य रात्री में सर्प ने विष चूस लिया। अब राजा दरबार और जनता सहित जैन हो गया। यह गोत्र ***श्रीमाल*** या ***श्रीमाली*** कहलाया, जिसका अर्थ है- पवित्रतम। श्रीमाली बनिया भी छत्तीसगढ़ में हैं। इनकी जनसंख्या भारत में 437,000 अनुमानित की गई है, जिसमें से लगभग 800-1,000 राज्य में होंगें और उनमें से लगभग 200 छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं।[353] यह नाम मारवाड़ के नगर श्रीमाल से आया, जो अब भीममाल कहलाता है। यह लोग स्वयं लक्ष्मी द्वारा अपने आप को बनाया जाना मानते हैं, जो कि उनके हार के 90 हजार फूलों से बने। श्रीमाली ब्राह्मण ही इनके पुरोहित हैं। बीसा और दसा के अतिरिक्त लड़वा विभाजन को मानते हैं, जो लाट (गुजरात) नाम से लिया गया। कहीं-कही श्रीमाली बनिया और ओसवाल श्रीमाल को अलग-अलग बनिया जाति समूह भी माना जाता है। हालाँकि अब यह लोग पृथक चिन्हित होते हैं, पर इन पर अलग से चर्चा नहीं की जा रही है। नगर के अन्य राजपूत ओसवाल हुए। ब्राह्मणों ने संत से पूछा कि, जब सब जैन हो गए हैं, तब हम कहाँ जाएँ? तब संत ने उन्हें इन परिवारों का पुरोहित बने रहने को कहा। यह ब्राह्मण भोजक (भोजन करने वाले) कहलाए। इस प्रकार ओसवाल बनियों के पुरोहित मारवाड़ी ब्राहम्न हुए। एक अन्य कथा यह कही जाती है कि, श्रीमाली के राजा ने गैरकरोड़पतियों को राज्य निकाला दे दिया। यह लोग मण्डोवाड़ में बसे और ओसा (अर्थात सीमा) कहलाए। अब इन लोगों ने रतन सूरी के सानिध्य में जैन धर्म अपनाया और ओसवाल कहलाए। इसमें श्रीमाली बनियों सहित भट्टी, चौहान, गौड़, गहलोत, यादव और अन्य राजपूत भी सम्मलित थे। कर्नल टाड़ ने ओसवालों की व्युत्पति राजपूतों से मानी है, जिसमें अधिकाँश पवार, सोलंकी औएअ भट्टी हैं। यह लोग जैन है। कुछ हिन्दू वैश्नव हैं। दोनों में विवाह मान्य हैं। वे अन्य जैनों में विवाह करते हैं। इनमें भी बीसा, दसा और पाँचा विभाजन हैं। 84 गोत्र हैं। यथा- लोहरा, नुनिया (नमक बानाने वाला), सेठ (बैंकर), दफ्तरी (दफ्तर में काम करने वाला), वैद्य (चिकत्सक), भंड़ारी (रसोईया या हाऊस होल्ड प्रभारी), कुकरा (कुत्ता) आदि। हिन्दू रीति-रिवाज मानते हैं। शव जलाते हैं। आगामी दिवस पार्श्वनाथ मन्दिर जाते हैं। मृत्यु उपराँत

---

[350] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[351] Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

[352] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[353] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

आवास और व्यक्ति के अपवित्र हो जाने को नहीं मानते। सामान्यतः भोज उपराँत मृत्क को भुला देते हैं। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ मुख्य अराध्य हैं। यह लोग कई रियासतों और राज्यों में दीवान आदि भी हुए।[354]

परवार बनिया भी छत्तीसगढ़ में अत्याल्प संख्या में हैं। इनकी व्युत्पति और नाम पर अभी स्पष्तता नहीं है। हालाँकि नाम के आधार पर, इन्हें, राजपुताना से जोड़ा गया है। इनकी महिलाओं द्वारा सिर पर पहने जाने वाले आभूषण और चारू पात्र के उपयोग के आधार पर और उनके गीतों के आधार पर भी इसी ओर संकेत लिए गए हैं। यह लोग ***पोरवाल*** बनिया लोगों की तरह भी माने जाते हैं[355], जिनकी जनसंख्या, भारत में, 577,000 अनुमानित की गई है, जिसमें से दोनों प्रकारों को मिला कर 1,500 से अधिक लोग इस राज्य में होंगें और उनमें से 600 से अधिक लोग छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं। इस राज्य में समैया और चन्नगरी अन्य जैन समूह हैं। यह लोग जैनों की पवित्र पुस्तकों को पूजते हैं। इनके विभाजन- अठसके और चौसके- में हैं। एक अन्य समूह बिनाईका का है, जो सामान्यतः पुर्नविवाहित विधवाएँ हैं। 12 गोत्र हैं। सभी गोत्रों में 12 मूल (उपजातियाँ) भी हैं। सगोत्रीय विवाह नहीं है। हिन्दू रीति-रिवाजों और दिगम्बर जैन व्यवहारों का पालन करते हैं। शव जलाते हैं। जाति पंचायत है।[356]

बनिया जाति में- बैस, बाराहसेनी, बरनवार, विजयवर्गीय, चेट्टी, गन्ध बनिक, गूजर, जैसवाल या कलार, कसार, खत्री, खेदयता, कोरमी, लोड़ासा, महाजन, माहुर, मारवाड़ी, मोध, नागर, रस्तोगी, रऊनेर, सरोगी, सुवर्ण वनिक, त्रिवर्णिक वैश्य, उमरे, उम्माद, उनडू आदि कई- अन्य बनिया भी हैं। इसमें से भी कई छत्तीसगढ़ राज्य में अत्याल्प या नगण्य मात्रा में होंगे। जैसवाल या कलार पर अन्य पिछड़ा वर्ग की जातियों के तहत चर्चा की जा चुकी है।

2. ब्राह्मणः-

ब्राह्मण जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य के सभी जिलों में निवास करते हैं। भारत में इनकी जनसंख्या साढ़े पाँच करोड़ अनुमानित है। छत्तीसगढ़ में भी इनकी जनसंख्या ढ़ाई-तीन लाख से अधिक होने का अनुमान है, जिसमें से लगभग दो लाख छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं।[357] हिन्दू धर्म की वर्ण और जाति व्यवस्था में ब्राह्मण जाति सर्वोच्चय स्थान पर है। इस जाति का प्रमुख कार्य शिक्षा, शोध, पुरोहिती, कर्मकाण्ड आदि है। नौकरी और कृषि भी करते हैं। अब कभी-कभी व्यवासय भी करने लगे हैं। इन्हें विप्र (विद्वान) भी कहा जाता है। पाली अभिलेखों में बाभन संज्ञा का उपयोग हुआ है।

हिन्दू परम्पराओं, रीति-रिवाजों, स्थापनाओं, शिक्षाओं, पुस्तकों आदि सभी की स्थापना इसी जाति के द्वारा की गई है। स्पष्ट है कि, पूरे हिन्दू धर्म की समस्त मान्यताएँ, रीतियाँ और स्थापनाएँ इसी जाति द्वारा प्रवर्तित, संचालित और स्थापित की गई हैं। अतः इन्होंने यह भी स्थापित किया कि, वे ही ज्ञान

---

354 Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

355 Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

356 Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India

357 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

का स्रोत हैं।

वेदों में भी ब्राह्मणों का स्पष्ट उल्लेख है। यस्क मुनि की निरुक्त के अनुसार - *ब्रह्म जानाति ब्राह्मण:* अर्थात ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म (अंतिम सत्य, ईश्वर या परम ज्ञान) को जानता है। अतः ब्राह्मण का अर्थ है - "ईश्वर ज्ञाता"| अब इन्हें पारम्परिक पुजारी और कर्मकाण्ड़ी के अर्थ में अधिक लिया जाता है। किन्तु आजकल बहुत सारे ब्राह्मण जाति के पारम्परिक व्यवसाय से इतर कार्य भी करते हैं। अब यहाँ धारणा भी आने लगी है कि, उनकी धार्मिक परंपराएं उनके जीवन से कम होती जा रही हैं| यद्यपि भारतीय जनसंख्या में ब्राह्मणों का प्रतिशत कम है, तथापि धर्म, संस्कृति, कला, शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान तथा उद्यम के क्षेत्र में इनका योगदान अपरिमित है।[358] यह लोग सभ्य, शिष्ट और विद्वान माने जाते रहे हैं।

प्रारम्भिक सभी आख्यानों में यह माना गया कि, स्थापित पूर्वज पूत्रों में क्षत्रीय और ब्राह्मण दोनों पुत्र थे। भागवत पुराण में ऐसे कई उदाहरण हैं। बाद में यह स्पष्टतः पृथक जाति स्थापित हुई, जिसमें धीरे-धीरे अन्य जाति और जनजाति समूहों के विद्वान, पुजारी सम्मलित हुए। अन्य जातियों और जनजातियों के अराध्यों और धर्म स्थलों को भी हिन्दू धर्म में सम्मलित मान लिया गया।

इनमें केन्द्रीय नेतृत्व और सर्वमान्य संगठन का अभाव रहा है। ब्राह्मणों प्रमुख दो विभाजन हैं- पंच गौड़ और पंच द्रविड़।[359]

कर्णाटकाश्च तैलंगा द्राविड़ा महाराष्ट्रकाः,
गुर्जराश्चेति पञ्चैव द्राविड़ा विन्ध्यदक्षिणे ||
सारस्वताः कान्यकुब्जा गौड़ा उत्कलमैथिलाः,
पन्चगौड़ा इति ख्याता विन्ध्स्योत्तरवासि ||[360]
(कल्हण-राजतरंगणी,कश्मीर,11 वीं शताब्दी)

उक्त श्लोक स्पष्ट करता है कि, पंचगौड़ अर्थात उत्तर भारत के सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, उत्कल और मैथली तथा पंच द्रविड़ अर्थात दक्षिण भारत के कन्नड़ (कर्नाटक), तेलगू (आँध्र), द्रविड़ (तमिल और केरल या मलयाली), महाराष्ट्र और गुजरात ब्राह्मण। यहाँ स्पष्टतः नर्मदा के उत्तर और दक्षिण का पारम्परिक विभाजन है। इनमें से सभी कुछ न कुछ मात्रा में छत्तीसगढ़ में निवासरत हैं।

पंच गौड़ में सारस्वत मुख्यतः पंजाब और उसके आसपास रहते आए हैं। यह खत्रियों के पुरोहित हैं। अब इनमें से कुछ छत्तीसगढ़ में भी हैं। इनमें मुख्य पंजाबी ब्राह्मण हैं। कश्मीरी पँड़ित भी सारस्वत हैं। सारस्वत नाम सरस्वति नदी तट पर निवास के कारण पड़ा। भारत में इनकी जनसंख्या पाँच लाख अनुमानित है। जिसमें से कुछ सौ ही छत्तीसगढ़ में है। गौड़ दिल्ली के आसपास रहते आए हैं। गौड़ नाम

---

[358]http://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AC%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%B9%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A4%A3

[359] द्रोणी लाल शर्मा-ब्राह्मणोत्पति मार्तण्ड़,पृ.41-42

[360] कल्हण (कश्मीर,11 वीं शताब्दी)-राजतरंगणी और Jogendra Nath Bhattacharya- Hindu Castes and Sects में भी उधृत

बंगाल के पुराने नाम गौड़ (लखनौती) से बना। कनिंघम इसे उत्तर प्रदेश के गोंड़ा (जिला) से जोड़ता है।भारत में इनकी जनसंख्या सात लाख अनुमानित की गई है। इनमें कान्यकुब्ज या कन्नौजिया संज्ञा कन्नौज नगर (कानपुर के समीप गंगा तट पर बसा नगर) से बनी। उत्तर प्रदेश में इन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह छत्तीसगढ़ में भी हैं और रायपुर सम्भाग में इनका संकेन्द्रण है। इनमें भी चार उपविभाजन हैं- कनौजिया, जिझौतिया, सरवरिया और सनाढ़य। भारत में कन्नौजिए पौने सात लाख, जिझौतिए मात्र 15 हजार, सरवरिए सवा चार लाख और सनाढ़य पाँच लाख अनुमानित किए गए हैं। मैथली बिहार में गंगा के उत्तर में स्थित मिथिला (तिरहुत) के हैं, जिससे ही उन्हें यहाँ संज्ञा मिली। यह छत्तीसगढ़ में कम हैं। भारत में मात्र आठ हजार अनुमानित हैं। उड़ीसा के उड़िया भाषी ब्राह्मण उत्कल कहे जाते हैं। यह छत्तीसगढ़ में भी हैं। इनकी जनसंख्या भारत में 113,000 अनुमानित है।[361]

द्रविड़ ब्राह्मणों में महाराष्ट्रिय महाराष्ट्र से हैं। इनके प्रमुख तीन विभाजन हैं- देशस्थ अर्थात गृह देश (पुणे) के, कोंकणस्थ अर्थात कोंकड़ क्षेत्र के और करहरा स्थान के, जो कि सतारा जिले में है। भारत में महाराष्ट्रियन ब्राह्मण पौने दो लाख अनुमानित किए गए हैं। तैलन्ग तेलगू आँध्र प्रदेश के हैं। द्रविड़ तमिलनाड़ू और केरल प्राँत से हैं। कन्नड़ कर्नाटक से हैं। गुजराती गुजरात प्राँत से हैं। इनके दो विभाजन है- खेड़ा (खेड़ा जिला, गुजरात) और नगर। पंच द्रविड़ समूह के ब्राह्मणों की जनसंख्या अपेक्षाकृत कम है।[362]

ब्राह्मण जाति के उपरोक्त मुख्य विभाजन के अतिरिक्त क्षेत्र, प्राँत, भाषा, बोली, जीवन शैली, व्यवसाय, कार्य आदि सभी आधारों पर विभाजन, उपविभाजन, पुनःविभाजन आदि-आदि के द्वारा इतने समूह और उपसमूह बनाया गए हैं कि, उनका गिना जाना भी कठिन है। यह विभाजन एक-दूसरे में विवाह नहीं करते हैं। यहाँ तक कि, यदि भाषा भी अलग हो तब भी। जैसे बंगाली ब्राह्मण का कन्नड़ ब्राह्मण से विवाह नहीं होता है। ज़रा इन विभाजनों या विभिन्न नामों में से कुछ पर दृष्टि तो ड़ालिए- अचरज, आचार्य, अंवदा, अन्वला, औधिच, बगदा, बंगाली, भट्ट, भोजक, भूमिहार, चतुर्वेदी, चितपावन, छत्तीसगढ़ी, दइमा, दकौत, दक्षिणी, देशस्तुआ, देवरूख, धिमान, द्रविड़, गौड़ सारस्वत, गौर या गौड़, गुर्जर गौर, गुजराती, हल्बानी, हरियाणा, जिझौतिया, जोशी, ज्योति, कन्नौजिया, कन्नड़ा, करबाड़ू, करहदा, कश्मीरी पंड़ित, खण्ड़ेलवाल, मट्टा, मरट्ठा, मैथली, माल्वी, मराठी, मस्तान, मेवाड़ा, मोध, मुस्लिम, नागर, ओझा, पालीवाल, पारिख, पुरोहित, पुष्करणा, राधी, ऋषिसुर, सकलव्दीपी, सनाढ़य, संकलीवाल, सारस्वत, सरयूपारीय, सिक्ख, सिखवाल, श्रीगुड़, श्रीमाल, तमिल, त्रिवेदी मेवाड़ा, उत्कल, वैदिक, वरेन्द्र, व्यास आदि-आदि।[363]

छत्तीसगढ़ी ब्राह्मण[364] के रूप में यहाँ रहने वाले ब्राह्मण चिन्हित किए जाते हैं। इनमें दो प्रमुख हैं- कन्नौजिया और सरयूपारीय। अवध, उत्तर प्रदेश या उत्तर भारत के कन्नौजिया ब्राह्मण छत्तीसगढ़ के इसी संज्ञा के लोगों से सामान्यतः रोटी-बेटी का या अन्य व्यवहार नहीं रखते हैं। छत्तीसगढ़ के कन्नौजिया ब्राह्मण मूल कान्यकुब्ज का एक उपविभाजन या उपजाति के रूप में माने और पृथ्क चिन्हित किए जाते हैं।

छत्तीसगढ़ी ब्राह्मणों के तीन उपविभाजन हैं- पौथिया या पंक्तिपावन अर्थात एक पंक्ति में बैठने वाले, जातिया या जातिकुल या गंगाबारी और तुतिया या तुतीकुल।

छत्तीसगढ़ी ब्राह्मण में पंक्तिपावन के तीन कुल- गर्ग, गौतम और शांड़िल्य- हैं। इसमें भी तेरह उपविभाजन हैं। गर्ह ऋषि यजुर्वेद के पठन-पाठन हेतु जाने जाते हैं। शेष दो ने उसमें सामवेद भी जोड़ा। गंगापारी के उपविभाजन हैं- कृष्णात्रेय, कश्यप और भारद्वाज। तुतिया के उपविभाजन हैं- पराशर, वशिष्ठ, उपमन्यु, संकृति, अगस्त्य, कौशिक आदि।

---

361 http://en.wikipedia.org/wiki/Brahmin और http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

362 http://en.wikipedia.org/wiki/Brahmin और http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

363 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

364 Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India,Vol.-II,P.237-250

छत्तीसगढ़ी ब्राह्मणों में दस शाखाएँ प्रचलित मानी गई हैं। यह हैं- शुक्ला, मिश्रा, ओझा, दीक्षित, द्विवेदी या दुबे, पाठक, त्रिपाठी या तिवारी, पाँड़े, चतुर्वेदी या चौबे और उपाध्याय।

हालाँकि अहिताग्नि यमुना प्रसाद राम त्रिपाठी चतुर्मास चतुर्मासे द्वारा लिखित वंशावली में 261 गोत्रों का उल्लेख है, पर छत्तीसगढ़ में 26 गोत्र प्रचलित हैं। प्रथम तीन- गर्ग, गौतम और शांड़िल्य- का उल्लेख पूर्व में भी आ चुका है। तदुपरांत 10 गोत्र हैं- कौंड़िल्य, वशिष्ठ, उदबाहु, उपमन्यु, मऊना, करण, वरतात, भृगु, अगस्त्य और कौमस्य। इसके उपराँत 13 गोत्र हैं- पराशर, गालव, कश्यप, कौशिक, भार्गव, सवर्ग, अत्रि, कात्यायन, अंगीरा, वत्स, संकृत्य, जमदागिनी और पुनहा।

कान्यकुब्ज या कन्नौजिया की संज्ञा कन्नौज से बनी तो सरयुपारीय की सरयु नदी से। यह कहा जाता है कि, राम जब ब्रम्ह हत्या (रावण वध) उपराँत अयोध्या वापस आए तब उन्होंने प्रायश्चित हेतु ब्रम्हभोज दिया। कन्यकुब्जों ने इस आमंत्रण को अस्विकार कर दिया और सरयुपारियों ने स्विकार कर लिया।

छत्तीसगढ़ में छत्तीसगढ़ी ब्राह्मणों के अतिरिक्त पंजाबी सारस्वत ब्राह्मण, उत्कल ब्राह्मण, बंगाली ब्राह्मण, मराठा ब्राह्मण, महा ब्राह्मण (पतित और मृतक संस्कार के उपहर और भोज लेने वाले) आदि भी निवास करते हैं।

ब्राह्मणों की स्थिति वेदों के अनुसार भी निर्धारित होती है। छत्तीसगढ़ में ऋगवेदी और यजुर्वेदी ब्राह्मण ही हैं। इनमें आंतरिक विवाह ही मान्य है, जिसका विस्तार आंतरिक शाखा विभाजन तक हो सकता है। छत्तीसगढ़ के स्थानिय यजुर्वेदियों तीन प्रमुख मान्य शाखाएँ हैं- कण्व, अपस्तंभा और मध्यांनदिन। यह शुक्ल (श्वेत यजुर्वेद) से निकले माने जाते हैं। ऋगवेदी पाठ के दौरान सिर आगे-पीछे और यजुर्वेदी हाथ और शरीर अगल-बगल हिलाते हैं। मध्यानदिन मध्यान के पूर्व भोजन नहीं करते। सामान्यतः राज्य के मराठा ब्राह्मण ऋगवेदी और छत्तीसगढ़िया ब्राह्मण यजुर्वेदी हैं।

यह स्थापित किया गया है कि, पूर्वज ब्रह्मा, जिसे ब्राह्मण अपना पूर्वज स्थापित करते हैं, के सात पुत्र थे- भृगु, अंगीरसा, मारिची, अत्रि, पुलह, पुलस्त और वशिष्ठ। इसमें भी मुख्य पूर्वज प्रथम छः- भृगु, अंगरीसा, मारिची और अत्रि- ही कहे जाते हैं, क्योंकि पुलह ने मात्र दानवों को और पुलस्त ने मात्र राक्षसों को जन्म दिया और वशिष्ठ की मृत्यु हो गई तथा वह मारीचि के वंश में ही पैदा हुए। एक अन्य कथा में ब्राह्मण पूर्वज सप्त ऋषि (Great bear तारा समूह) कहे गए हैं। यह थे- जमदाग्नि, भारद्वाज, गौतम, कश्यप, वशिष्ठ, अगस्त्य, अत्रि और विश्वामित्र। यह भी आठ कहे जाते है। एक अत्रि से हैं। कहा जाता है कि, बाद के यह ऋषि मूल चार से हैं और अत्रि दोनों प्रसंगों में हैं। दोनो सूचियों को मिलाने पर 11 ऋषि बनते हैं और सभी ब्राह्मण उन्हीं से अपने आप को जोड़ते हैं। मूल चार ही हैं। कुछ बाद में भी जुड़े। जैसे- गर्ग, शांड़ील्य, कौशिक, वत्स और भार्गव। यह पूर्व उल्लेखित 11 के अतिरिक्त हैं।

इनमें भी कुछ नाम टोटम प्रधान हैं। जैसे- ***भारद्वाज अर्थात गाने वाला भारद्वाज पक्षी (Lark)(सामान्यतः नीलकंठ)***, कश्यप अर्थात कच्छप (कछुआ), कौशिक अर्थात कुश (घाँस), अगस्त्य अर्थात अगस्ति पुष्प आदि।

छत्तीसगढ़ में सरनेम के जातीय नाम भी विभिन्न आधारों पर हैं। यथा- पाण्ड़े (बुद्धिमान), दुबे (दो वेदों का ज्ञाता), तिवारी (तीन वेदों का ज्ञाता), चौबे (चार वेदों का ज्ञाता), शुक्ल (श्वेत या शुद्ध), उपाध्याय (शिक्षक), अग्निहोत्री (अग्नि-होत्र), दीक्षित (दीक्षा देने वाला) आदि।

इनमें समान पारिवारिक नाम वालों और समान गोत्र में विवाह वर्जित है। माता, नाना, पिता आदि के गोत्र अर्थात सपिण्ड़ियों में भी विवाह नहीं होते हैं। दो परिवारों में कन्याओं की अदला-बदली नहीं होती है। एक व्यक्ति से दो बहनों का विवाह वर्जित है, जब तक कि एक मृत न हो। वधू का उम्र और लम्बाई में छोटा होना भी देखा जाता है। बड़ी बहन के कुँवारी रहते छोटी का विवाह नहीं किया जाता। ऊँचे ब्राह्मण नीचे ब्राह्मण से कन्या ले लेते है, पर देते नहीं। बहु-विवाह सामान्यतः नहीं है। तलाक को मान्यता नहीं है। परितक्यता जाति बाह्य हो जाती है, हालाँकि यह अब उतना कठोर नहीं रहा और उसमें कमी भी आई है।

विधवा विवाह वर्जित है, हालाँकि यह भी अब होने लगा है। विधवा पुर्नविवाह भी नहीं है। विवाह हेतु कुँआरी होना प्रमुख शर्त है। यह कहा जाता है कि, छत्तीसगढ़िया ब्राह्मण विवाह सम्बन्ध करते समय यह पूछते हैं कि आप शिखा गाँठ दाएँ बाँधते हैं या बाएँ और चरण धोते समय पहले कौन सा चरण धोते हैं।[365]

अब विधवा सर मुण्ड़न नहीं होता, पर अभी भी मराठा और खण्ड़ेलवाल ब्राह्मण इसका आग्रह करते हैं।

छत्तीसगढ़ी ब्राह्मणों में माँस-मदिरा का सेवन नहीं करने की परम्परा रही है। हालाँकि उत्कल, बंगाली, मैथली, कश्मीरी आदि ब्राह्मणों में माँसाहार सामान्य है और उनके पारम्परिक आयोजनों में भी यह आहार सम्मलित है।

ब्राह्मण हिन्दू धर्म का पालन करते है। अधिकाँशतः वैष्णव पंथ को मानते हैं। कुछ शैव और शाक्त पंथ को भी मानते हैं। प्रतिदिन पूजा करते हैं। जनेऊ धारण करते हैं।

अब इनकी जाति पंचायत ढ़ीली-ढ़ाली व्यवस्था ही रह गई है।

यह लोग प्रशासनिक, राजनीतिक, कला, शिक्षा, शोध, विज्ञान, तकनीकी आदि सभी क्षेत्रों में सर्वोच्च स्तर तक रहे हैं। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री भी इसी जाति के थे।

अब कुछ अन्य सामान्य तथ्य भी- ब्राह्मणों के कथित मूल और क्षेत्रीय विभाजनों में, अहीवसी कृषि कार्य करते हैं। जिझौतिया कन्नौजिया उपजाति का ही एक विभाजन है, जो कि बुन्देलखण्ड से हैं और बुन्देलखंड़ के ही पुराने नाम जिझौतिया से यह नाम लिया गया है। कन्नौजिया या कन्यकुब्ज संज्ञा कन्नौज से ली गई है। यहाँ कभी हर्ष बर्धन शासक था और व्हेन साँग ने भी यहाँ का भ्रमण किया था। उत्तर में यह लोग ही ब्राह्मण जाति के प्रमुख भाग हैं। इनके चार उपविभाजन है- कन्नौजिया, जिझौतिया, सरवरिया और सनाढ्य। सनाढ्य गंगा-यमुना दोआबे से हैं। सरवरिया कन्नौजियों से ऊपर हैं। खण्ड़ेलवाल ब्राह्मण सामान्यतः गुजराती हैं। इनकी संज्ञा खेड़ा नगर से बनी। नागपुर के भोंसले जब छत्तीसगढ़ आए तब उनके साथ महाराष्ट्र के माराठी ब्राह्मण इस क्षेत्र में बसे। इनके तीन उप विभाजन है- देशस्थ, कोंकणस्थ और करहाड़ा। मैथली पंचगौड़ में एक हैं। यह माँसाहारी हैं। मालवीय मालवा के हैं। नागर गुजराती ब्राह्मणों की एक शाखा है। नरामदेव लोग निमाड़ के हैं। उत्कल उड़ीसा से हैं। इनके दो विभाजन हैं- दक्षिणात्य और जचपुरिया। सम्बलपुर में बसने वाले झारिया या जंगली कहलाए।

3. कायस्थः-

कायस्थ जाति के लोग छत्तीसगढ़ राज्य के सभी जिलों के नगरों में निवास करते हैं। इनकी जनसंख्या भारत में 70 लाख और छत्तीसगढ़ में 40 हजार अनुमानित की गई है, जिसमें से लगभग 30 हजार लोग छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं।[366] कायस्थ का अर्थ लिखने वाला या लिपिक से है। यह लोग, सामान्यतः, नौकरी करते हैं और प्रशासक माने जाते हैं। उच्च अगड़ी जातियों में गिने जाते हैं।[367]

यह माना जाता है कि, ब्रह्मा के विभिन्न अंगों से 16 पुत्र हुए। सत्रहवाँ पुत्र मस्तिष्क और आत्मा से हुआ। यह चित्र गुप्त थे। इसी कारण से कायस्थों के वर्ण विभेद पर अस्पष्टता रही। उन्हें प्रथम तीन वर्ण में से

---

[365] Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India,Vol.-II,P.237-250

[366] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[367] कायस्थ रिसर्च विंग

किस वर्ण में रखा जाय यह पूर्णतः सुनिश्चित नहीं हो सका।

संस्कृत शब्द कोश में लिपिक होने से, इन्हें, का-यता या का-यस्थ कहा गया।[368] ब्रह्मा की काया से उत्पन्न होने के मिथक के कारण भी यह संज्ञा मानी गई। सामान्यतः यह माना जाता है कि, यह लोग ब्राह्मणों के लिपिक थे। इस कारण से ब्राह्मण वर्ण में होने का आधार पुष्ट हुआ। प्रशासकिय कार्य करने के कारण क्षत्रिय वर्ण में होने का आधार बना। अस्पष्टता के कारण वैश्य वर्ण में इंगित किए जाने का आधार बना। ब्राह्मण और क्षत्रिय होने हेतु यह भी कहा जाता है कि, चित्रगुप्त के दो विवाह हुए। पत्नी सूर्यदक्षिणा/नंदनी ब्राह्मण कन्या थी, इनसे चार पुत्र- भानू, विभानू, विश्वभानू और वीर्यभानू- हुए तथा पत्नी एरावती/शोभावति क्षत्रिय कन्या थी, इनसे आठ पुत्र- चारु, चितचारु, मतिभान, सुचारु, चारुण, हिमवान, चित्र, और अतिन्द्रिय- हुए। यह मुख्य रूप से उत्तर भारत (आर्यवर्त क्षेत्र) भर में फैले हुए हैं और सामान्यतः ऊपरी गंगा क्षेत्र में ब्राह्मण और बाकी में क्षत्रिय माने जाते हैं।[369]

यह कहा जाता है कि, जब यम को कार्य हेतु अभिलेख सन्धारण में कठिनाई हुई तो उन्होंने समस्या से ब्रह्मा को अवगत कराया। यम सन्हिता के अनुसार, ब्रह्मा ध्यान मग्न हुए और चित्रगुप्त को उत्पन्न किया। उनकी काया से उत्पन्न होने कारण कायस्थ संज्ञा दी और उनके शरीर में रहने रहते हुए भी अदृश्य रहने के कारण चित्रगुप्त।

कहा जाता है कि, सूर्य पुत्र मनु ने पुत्री सुदक्षिणा या नंदनी का और धर्म शर्मा ने पुत्री इरावती या शोभावती का विवाह चित्र गुप्त से किया। इनके 12 पुत्रों का उल्लेख ऊपर के पैराओं में आ गया है। इनसे कायस्थों के 12 गोत्र बने। यह हैं- माथुर, गौर, निगम, आस्थाना, कुलश्रेष्ठ, सूर्यध्वज, बाल्मिक, भटनागर, श्रीवास्तव, अम्बष्ट, सक्सेना और करण।[370] यह गोत्र कई कुलों या अल्ल में विभाजित हैं। यह भी कहा गया कि यह सभी नाग कन्याओं से विवाहोपरांत उत्पन्न हुए। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि, लगभग सभी मिथकों में नाग और गोली या ग्वाल कन्याओं को ही अतिसुन्दर माना गया है और उनसे विवाह बाताए गए हैं। नाग वंश की कन्याएँ आज भी सुन्दर मानी जाती है।

ब्राह्मणों का लिपिक होने के कारण ब्राह्मण होने का दावा तो है ही, साथ ही यह भी कहा जाता है कि, चित्र गुप्त पुत्र चित्ररथ चित्रकूट का क्षत्रिय राजा हुआ और इससे क्षत्रिय होने का दावा लिया गया। राजाओं के आदेश और अभिलेख लेखन का कार्य भी कायस्थ लोगों से ही कराया जाता रहा है।

वंशानुगत रूप से कायस्थों को तीन प्रकार से चिन्हित किया जाता रहा है। अब चार प्रकार हैं- एक- चित्रगुप्त या चित्रगुप्तवंशी या ब्रह्म कायस्थ या कायस्थ ब्राह्मण, दो- चन्द्रसेनी या प्रभु या क्षत्रीय (हैहय) कायस्थ, तीन- मिश्रित कायस्थ- इसमें कुछ अपने को क्षत्रिय मानते हैं और कुछ अन्य वर्ण का तथा चार- वे कायस्थ जो मूल कायस्थ वंशों से नहीं हैं और उनके व्यवसाय को अपनाने के कारण इस जाति में आए।

कायस्थों के उक्त 12 गोत्रों का सन्क्षिप्त सारणीकरण निम्नाँकित है, जिसमें प्रथम 8 इरावती/शोभावती के और अंत में शेष 4 सुदक्षिणा/नन्दिनी के पुत्र हैं। हालाँकि सम्भवतः सभी कायस्थ

---

[368] Hindunet.org पर संस्कृत शब्द कोश

[369] http://www.archive.org/stream/ethnographicalno00chanrich/ethnographicalno00chanrich_djvu.txt और http://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%AF%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%A5_%E0%A4%AC%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%B9%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A4%A3

[370] Robert Vane Russell and Raibhadur Hira Lal-The Tribes and Castes of the Central Provines of India,Vol.-III,P.404-422

कश्यप गोत्र के माने जाते हैं।

सारणी, कायस्थ गोत्रों का सन्क्षिप्त विवरण स्रोत- http://en.wikipedia.org/wiki/Kayastha

क्रमाँक	पुत्र/गोत्र	गुरू	राशि नाम	नाग पत्नि	अराध्य	कथित प्रदत्त क्षेत्र	उपविभाग	कुल या अल्ल संख्या	मान्यताएँ और अन्य तथ्य
1	चारू/माथुर	मथुरे	धुरन्धर	पंगजकशी	दुर्गा(मथुरेशवरी)	महानदी-कृष्णा दोआबा (उड़ीसा)	1.मथारा के, 2.पांचाल (पंचोली या पांचाली) की गढ़वाल हिल के नगर मथारा के और 3.गुजराती कच्छी माथुर	84	1.अयोध्या में रघुवंश के पहले शासन की मान्यता, 2.कुछ विद्वान दक्षिण के पाण्डय राज्य का शासक मानते हैं, जिसके कूटनीतिज्ञ रोमन आगस्टक तक गए।
2	सुचारू/ गौर	वशिष्ठ	धर्मदत्त	मधिया (नागराज वासु की पुत्री)	शाकम्बरी देवी	गौड़ (बंगाल)	1.खरे,2.दूसरे, 3.बंगाली,4.देहल्वी ,5.बदायुँनी	32	
3	चित्रकेश/ भटनागर	भट्ट		भद्रकलनी	जयंती देवी	भट्ट नदी और देश तथा मालवा		84	1.चित्रकूट और चित्तौड़ बसाने की मान्यता
4	मतिमान/ सक्सेना			कोकलेश	शाकम्बरी	शक (काबुल, कन्धार, युरेशिया)	खरे और दूसरे	106	सखा (मित्र) होने के कारण सक्सेना कहलाए
5	हिमवान/ अम्बष्ट	श्रंधार		भुजंगकशी	अम्बा	गिरनार और काठियावाड़	हिमवान के पाँच पुत्रों(जो गन्धर्व कन्याओं से ब्याहे) केआधार पर विभाजन- नागसेन, ज्ञानसेन, गयादत्त रत्नमूल और देवधर	क्रमश: 24 +35+85 +25+21 =190	1.प्रदत्त क्षेत्र का नाम अम्बा-स्था हुआ और उससे अम्बष्ट 2.सिकन्दर और चन्द्रगुप्ट से पराजित हो पंजाब में जा बसने की मान्यता
6	चित्रचारू/ निगम	सुमंत		अशगन्धमति	दुर्गा	महाकौशल और निगम(सरयु तट)		43	
7	अरूण				लक्ष्मी और	करण(कर्नाटक)	गया(बिहार) में	360	

	चारू/ करण				वैष्णव		बसने वाले ग्यावाल और मिथिला में बसने वाले मैथिल (यह लोग बौद्ध हुए)		
8	जितेन्द्र या अतियेन्द्रीय/ कुलश्रेष्ठ	शांड़िल्य		मंजूभाषिणी	लक्ष्मी	कनौज			यह पुत्र अर्वाधिक धार्मिक माना गया और धर्मात्मा तथा पंड़ित कहा गया
9	*श्रीभानु/ श्रीवास्तव*	*धर्मव्दाज*		*पदमनी*		*श्रीवास,श्रीनगर(कश्मीर,कन्धार)*	*श्रीभानु के पुत्र देवदत (कश्मीर) औअर घंश्याम(सिन्धु तट) के वशज श्रीवास्तव और द्वितीय पत्नी खेरी से खरे।इसके भी दोपुत्र-धंवंतरी और सर्वज्ञ।यह दूसरे श्रीवास्तव कहलाए*	*65*	
10	*वैभानु/ सूर्यध्वज*	*श्याम सुन्दर*		*मालती*		*कश्मीर का उत्तर*			*सूर्यपुत्री माँ होने से सूर्य ध्वज लिया और उसी से नाम*
11	*विश्वभानु/ वाल्मिकी*	*दीनदयाल*		*बिम्बवती*	*शाकम्बरी/ वल्लभ पंथ*	*वाल्मिकी क्षेत्र(चित्रकूट-नर्मदा)*	*पुत्र चन्द्रकाँत गुजरात बसे।इअसके वंशज बल्लभी कहलाए।अन्य पुत्र उत्तर में बसे।*		*तपस्या के दौरान वाल्मिकी से ढ़के*
12	*वीर्यभानु/ अस्थाना*	*माधव राव*		*सिहदेवनी*		*अधिष्ठान*		*5*	*1.रामनगर-वाराणासी राजा द्वारा 8 रत्न देने के कारण आष्ठाना या 2.कोई स्थान नहीं होने के कारण अ-स्थान से*

कायस्थों भी सगोत्रीय और एक कुल या अल्ल में विवाह नहीं करते है। विवाह जाति के अन्दर और सामान्यतः अपनी उपजाति में ही करते हैं।

भाईदूज (दीपावली उपराँत) को कलम, दवात और तलवार के साथ चित्रगुप्त की पूजा करते हैं, जो कि ब्रह्मा द्वारा उनके सृजन का दिवस माना जाता है। यह भी माना जाता है कि, चित्रगुप्त के सृजन के

कारण इसी दिन यम को थोड़ा अवकाश मिल पाया और वह अपनी बहन यमुना से मिलने जा पाया और इसी कारण से भाईदूज मनाने का प्रचलन हुआ। चित्रगुप्त के रूप में पूर्वज पूजा करने वाली यह हिंदूओं की इकलौती अगड़ी जाति मानी जाती है।[371]

यह लोग हिन्दू धर्म मानते हैं और हिन्दू अराध्यों की पूजा करते हैं। हिन्दू रीति-रिवाजों और परम्पराओं को मानते हैं।

सामान्य हिन्दू शाकाहार आग्रह के विपरीत माँसाहारी हैं। सभी हिन्दुओं की तरह गाय माँस नहीं खाते हैं। माँसाहार का कारण यह दिया जाता है कि, कायस्थ लोग किसी भी शासक और प्रशासक वर्ग या संवर्ग को अतिशीघ्र और सर्वप्रथम अपना लेते हैं और उनसे तत्काल घुलमिल जाते हैं। इसी कारण से यह लोग मध्य काल के माँसाहारी मुस्लिम शासकों से भी शीघ्र और सबसे पहले घुलमिल गए और उनसे अपनी प्रगाढ़ता प्रदर्शित करने को उन्हीं के जैसा खान-पान प्रारम्भ कर दिया। इन्हें व्यापक और अच्छी भोजन रूचि हेतु भी जाना जाता है।

यह लोग किसी भी जाति या समूह की तुलना में लोगों से, विशेष कर उच्च वर्ग के लोगों से, सरलता से घुलमिल जाते हैं। यह उक्त तथ्य से भी स्पष्ट है। शासक और प्रशासक वर्ग से सप्रयास ऐसा करते हैं। हालाँकि यह माना जाता है कि, इनकी यह भावना उच्च वर्ग के दूसरों के प्रति ही है, आपस में स्वयं कायस्थों के मध्य ऐसा व्यवहार नहीं है।[372] यह लोग रियासतों, राज्यों आदि में दीवान, प्रशासक, अधिकारी और लिपिक रहे हैं। मौर्य काल में भी यह लोग प्रशासनिक व्यवस्था में थे।

यह लोग नगरों में ही रहते हैं और उसी संस्कृति और सभ्यता के पोषक हैं। शिक्षा की ओर अत्यधिक झुकाव है। परिवर्तनों को सहज अपना आगे बढ़ते हैं। कई लेखक और विद्वान इन्हें अर्द्ध सैनिक जाति कहना पसन्द करते हैं।

कायस्थ जाति की अपनी लिपी है, जिसे कैथी कहते हैं। यह देवनागरी से मिलती जुलती है। पूर्व में इस लिपी को कायथी, कायती और कायस्थी भी कहा जाता था।[373]

मध्य काल में, मुस्लिम शासकों के समय, कायस्थ अन्य जातियों या समुदायों की तुलना में अधिक तीव्रता से आगे बढ़े। मध्यकालीन शासकों ने अन्य जातियों के लोगों को रोज़गार देना तक कम या बन्द कर दिया था। कायस्थों ने परम्परा अनुसार उनसे शीघ्र अच्छे सम्बन्ध बना लिए। आतुरता यहाँ तक थी कि, कई ने मुस्लिम धर्म भी अपना लिया और इस्लामी जाति प्रथा या वर्ग विभाजन में अशरफ और शेख का ऊँचा स्थान भी प्राप्त किया।[374] वे शाकाहारी से माँसाहारी हो गए। इन्होंने फारसी, अरबी और ऊर्दू भी शीघ्र सीखी। तब से ही अधिकाँश पटवारी और भू अभिलेख का कार्य करने वाले सरकारी कर्मचारी कायस्थ ही होने लगे, जो कि भारत की स्वतंत्रता उपराँत भी लम्बे समय तक ज़ारी रहा। वे भू अभिलेख के एक पद कानूनगो (अब आर.आई.) को भी सरनेम की तरह इस्तेमाल में लाने लगे। ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन काल भी ऐसा किया और जल्द उनकी नौकरीयों में भी आए और सिविल सेवा अधिकारी, कर अधिकारी, अन्य उच्च और कनिष्ठ शासकीय अधिकारी, शिक्षक, विधि सहायक और वेत्ता, लिपिक आदि

---

[371] http://en.wikipedia.org/wiki/Kayastha

[372] http://en.wikipedia.org/wiki/Kayastha

[373] http://en.wikipedia.org/wiki/Kayastha

[374] Dileep Karanth- Caste in Medieval India: The Beginnings of a Reexamination (http://www.svabhinava.org/HinduCivilization/DileepKaranth/CasteMedievalIndia-frame.php), Imtiaz Ahmad- Caste and Social Stratification among the Muslims और M.K.A. Siddiqui- Caste among the Muslims of Calcutta

हुए। भारतियों को जहाँ तक ऊँचे सरकारी पद मिल सकते थे, इन्हें मिले और यह बात स्वतंत्रता उपराँत तक लागू रही।[375]

कायस्थ उच्च प्रशासनिक सफल जाति रही। वे उच्चतम प्रशासनिक और सैन्य पदों पर रहे। इस जाति के लोग राजनीतिक उच्चतम पदों (भारत के प्रथम राष्ट्रपति और एक प्रधानमंत्री) पर भी पहुँचे। उक्त के अतिरिक्त राजनय, शिक्षा, साहित्य (प्रेमचन्द), विज्ञान, तकनीकी, कला, फिल्म (अमिताभ), संगीत, इतिहासकार, स्वतंत्रता सेनानी (सुभाष च. बोस), पत्रकार आदि सभी विषयों और क्षेत्रों में भी उच्चतम पद या स्थान पाए। आधुनिक काल के कई पंथ भी इनके द्वारा प्रारम्भ हुए। यथा- स्वामी प्रभुपाद का हरे कृष्ण इस्कान, महर्षि महेश योगी का आध्यात्मवाद (ज्ञातव्य हो कि वे योग्य होने के बावजूद मात्र गैर ब्राह्मण होने के कारण शंकराचार्य नहीं चुने गए।), श्री अरबिन्दो का आंतरिक योग, परमहंस योगानन्द का क्रियायोग और सर्वाधिक स्थापित विवेकानन्द का वेदांत।

यह लोग अपनी चतुराई के साथ सहज प्रतिव्युत्पन्नमति और हास्य क्षमता (Sense of humour and wit) हेतु भी जाने जाते हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार में लालाजी के चुटकुले प्रसिद्ध रहे हैं। यह संज्ञा भी कायस्थों हेतु सामान्य बोलचाल में उपयोग होती है।[376]

4. मराठा या मराठीः-

नागपुर के भोंसले मराठा लोगों का शासन जब छत्तीसगढ़ क्षेत्र में आया, तब उसके उपराँत मराठा या महाराष्ट्र आए मराठी भाषी लोग इस क्षेत्र में बसे। यहाँ पर और छत्तीसगढ़ के सन्दर्भ में मराठा या मराठी भाषी लोगों का आशय उन लोगों से है, जो महाराष्ट्र से आकर छत्तीसगढ़ में बसे और जिनकी मातृभाषा मराठी थी या है।

मराठा या मराठी लोग छत्तीसगढ़ में भोंसलों के सैनिक, जमीन्दार, सरदार, सरपोतदार और इनके आश्रितों आदि के रूप में आए। यहाँ आने वाले लोगों को अधिकाँशतः योद्धा और साथ में कृषि कार्य में रत लोगों का समूह माना जा सकता है।

मूल मराठा और मराठा कुनबी लोग अपने आप को क्षत्रिय मानते हैं। मराठा या मराठी लोगों में 96 उपविभाजन हैं। यह 96 नाम, सामान्यतः, विवादित हे रहे, इसलिए कई बार समूहों ने अपने मराठा दलपति का नाम ही अपना लिया।

मराठा या मराठी शब्द की व्युत्पत्ति का एक सिद्धांत यह दिया जाता है कि, दक्कन के कुछ भाग के लोग राष्ट्रिक कहे जाते थे। यह उल्लेख अशोक स्तम्भों में भी आया है। इस राष्ट्रिक शब्द से संस्कृत में महा-राष्ट्र (बड़ा या महान राष्ट्रिक या देश) शब्द बना। भाषिक रूप से संस्कृत के इस महाराष्ट्र शब्द से जैन मराठी साहित्य में प्राकृत भाषा का शब्द मरहठा बना और उसी से मराठा या मराठी शब्द विकसित हुआ। एक अन्य सिद्धांत में मराठा और राष्ट्री शब्द को रट्टा शब्द से सम्बद्ध किया जाता है, जो कि राष्ट्रकूट (वंश) शब्द से बना। वर्तमान मराठी भाषा भी प्राकृत की महा-राष्ट्री से उत्पन्न हुई।[377]

मराठा या मराठी लोग दक्कन के सैनिक इलाकेदार के रूप में कई रियासतों में कार्यरत रहे। मध्य काल के प्रारम्भ में इनके राज्य भी बने। यथा- सातवाहन, राष्ट्रकूट आदि। इसके लगभग चार शातब्दी पश्चात शिवाजी ने इनके राज्य की स्थापना का प्रयास किया। वह भोंसले मराठा थे। अब पेशवा काल में मराठों का एक सुस्थापित राज्य सामने आया था। अपने चरम काल में मराठे कमजोर हो गए मुगलों पर

---

[375] उक्त सहित मुल्कराज आनन्द

[376] http://en.wikipedia.org/wiki/Kayastha

[377] http://en.wikipedia.org/wiki/Maratha

अधिपत्य पाने में सफल रहे थे। यह उत्थान 1761 के पानीपात युद्ध के साथ समाप्त हो गया। ब्रिटिश शासन में वे इनकी सेना में भर्ती हुए। इसका परिणाम मराठा लाइत इंफेंट्री थी, जिसके पूर्व वे बाम्बे सिपाही में जंगी पल्टन थे।[378]

छत्तीसगढ़ में सामूहिक रूप से मराठी भाषी लोगों को मराठा की संज्ञा दी जाती है। इसमें कई जातियाँ भी सम्मलित हो सकती हैं। इस भाषा का प्रभाव छत्तीसगढ़ी बोली और बस्तर की जनजातीय बोलियों पर भी पड़ा। इनमें कुछ इलाकेदार भी रहे। छत्तीसगढ़ में इनकी जनसंख्या अल्प ही है।

यह लोग हिन्दू धर्म मानते हैं। हिन्दू अराध्यों की पूजा करते हैं। हिन्दू रीति-रिवाजों और परम्पराओं को मानते हैं।

5. पंजाबीः-

छत्तीसगढ़ राज्य में पंजाबी मातृभाषा बोलने वाले लोगों का समूह निवास करता है। यह वे लोग हैं, जिनकी मातृभाषा पंजाबी रही या है। इनका मूल वृहद पंजाब या उसका विस्तारित क्षेत्र रहा है। पंजाब का यह विस्तारित क्षेत्र विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं का केन्द्र रहा है। सिन्धू घाटी सभ्यता उसका अग्रणी उदाहरण है। पंजाबी एक सांस्कृतिक पहचान है। इसमें वह लोग हैं, जिनकी मूल प्रथम या मातृ भाषा भारोपीय (Indo-European) परिवार की पंजाबी भाषा रही है।[379] हालाँकि राज्य के कुछ पंजाबी लोग इस भाषिक पहचान से थोड़ा दूर भी हुए हैं, परंतु वे पंजाबी साँस्कृतिक परम्परा की पहचान लगातार बनाए रखते हैं।[380]

छत्तीसगढ़ के पंजाबी लोग अधिकाँशतः विस्तारित और अविभाजित भारत एवं उसमें भी अधिकाँशतः अविभाजित पंजाब राज्य और कुछ उत्तर-पश्चिम सीमा प्राँत तथा सिन्ध प्राँत से राष्ट्र विभाजन के उपराँत आए। भारत विभाजन के समय पंजाब प्राँत को दो राष्ट्रों में बाँट दिया गया। इसकी राजधानी लाहौर पाकिस्तान में चली गई।

भारत में अधिकाँश पंजाबी पंजाब, हरियाणा, हिमांचल प्रदेश, दिल्ली और चण्डीगढ़ में निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जम्मू-कश्मीर, राजस्थान, उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश में भी पर्याप्त अधिक हैं।[381] छत्तीसगढ़ में भी इनकी जनसंख्या सभी जिलों में है।

2001 की जनगणना के अनुसार भारत में पंजाबी भाषी 29,102,477 लोग थे।[382] यह, विश्व में, जनसंख्या की दृष्टि से ग्यारहवें क्रम भाषा थी। पाकिस्तान में भारत से ढ़ाई गुने से अधिक लोग पंजाबी बोलते हैं और यह वहाँ का सबसे बड़ा भाषा समूह है।[383] युनाईटेड किंगड़म में यह द्वितीय क्रम में[384] और कनाड़ा में चतुर्थ क्रम में[385] वहाँ का सबसे बड़ा भाषा समूह है। पंजाबियों की उल्लेखनीय संख्या अमेरिका, केन्या, तंजानिया, फारस की खाड़ी में स्थित सभी देशों, हाँगकाँग, मलेशिया, सिंगापुर,

---

378 James Grant Duff - A History of the Mahrattas, 3 vols. London, Longmans, Rees, Orme, Brown, and Green (1826)(ISBN 81-7020-956-0)

379 http://www.krysstal.com/langfams_indoeuro.html

380 http://en.wikipedia.org/wiki/Punjabi_people

381 वही

382 भारत की जनगणना'2001

383 Statpak.gov.pk **(पाकिस्तान में 44.15% लोग पंजाबी भाषी हैं)**

384 Punjabi Community(The United Kingdom Parliament)

385 Indian Abroad-The Times of India(Punjabi is 4th most spoken language in Canada)

आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में है। यह लोग विश्व के सभी हिस्सों में भी फैले हैं और लगभग 12 करोड़ (120 मिलियन) हैं।[386]

पंजाब अर्थात पाँच-आब (पानी, जल या नदी) है। आब अरबी-फारसी शब्द है, जिसका अर्थ है- पानी। स्पष्ट है कि, यह क्षेत्र संस्कृतियों के मिलन का क्षेत्र बना। 3,300 ईसा पूर्व ही सिन्धू घाटी सभ्यता का विकास भी इसी क्षेत्र में हुआ। आर्य सहित परशियन, सीथियन, ग्रीक, मध्य-एशिया की कई जातियाँ और नस्लें, अरब, अफगान, ब्रिटिश आदि यहाँ आक्राँता और शासक हुए। भारतीय-आर्य (Indo-Aryans), जिनसे की सम्पूर्ण भारत और पाकिस्तान का वर्तमान संस्कृति और विकास परिदृश्य बना, इस क्षेत्र में यहाँ ही ईसा पूर्व 2000 और 1250 के मध्य आए और यहाँ से ही उपमहाद्वीप के सभी क्षेत्रों में गए, जिसमें छत्तीसगढ़ भी सम्मलित है। इन्हीं की भाषा दक्षिण एशिया की भाषा हुई। आर्य वैदिक हिन्दू संस्कृति का विकास यहीं हुआ। यहाँ बौद्ध धर्म भी फैला। आठवीं शताब्दी में मुस्लिम आए। पन्द्रहवीं शताब्दी में यहीं सिक्ख धर्म भी स्थापित हुआ।[387]

1947 में स्वतंत्रता के साथ विभाजन भी साथ आया। भारत के दो प्रमुख राज्य- पंजाब और बंगाल- भी बाँट दिए गए। इस ग्रह के सबसे बड़े मानव पलायन को अनिवार्य बना दिया गया। इसका प्रधान प्रभाव पंजाब राज्य सहित अविभाजित भारत के उत्तर और उत्तर-पश्चिम में स्थित प्राँतों के लोगों पर व्यापक रूप से पड़ा, जिसमें सर्वाधिक पंजाबी ही प्रभावित हुए। सिन्धी भाषी और बांग्ला भाषी भी व्यापक प्रभाव के दायरे में थे। विश्व के इस सर्वाधिक बड़े पलायन में नवनिर्मित पाकिस्तान से हिन्दू और सिक्ख अब नवनिर्मित भारत में आए और इधर से कुछ मुस्लिम उधर गए।[388] ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने अपने स्वार्थवश स्वतंत्रता को विभाजन में बदल मानव इतिहास की सबसे त्रासद और भयावह घटना में बदल दिया।[389] छत्तीसगढ़ आने वाले अधिकाँश पंजाबी भाषी लोग इसी घटना का परिणाम थे।

अधिकाँश पंजाबी भले ही भारत विभाजन के पश्चात छत्तीसगढ़ आए, पर उनका स्पष्ट प्रभाव और उपस्थिति यहाँ पहले से थी। वे छत्तीसगढ़ के रतनपुर के शासकों के राजगुरू रहे और आगे चल कर राजनाँदगाँव रियासत के शासक हुए। सक्ति रियासत में भी वे शासक रहे और तदुपराँत वहीं दीवान हो अधिकारी वर्ग में रहे। रायगढ़ रियासत में भी वे अधिकारी वर्ग में सम्मलित हुए। वे सामान्य राजकर्मचारी भी हुए, जैसे कोरिया रियासत में राजा के ड्राइवर फकीरा सिंह।

अठारहवीं शताब्दी के अवसान काल में सोहागपुर पंजाब से शाल (दुशाले) के घुमंतु व्यापारी बैरागी प्रहलाद दास रतनपुर रूक गए। तब रतनपुर में नागपुर के भोंसले मराठा बिम्बाजी का राज था। प्रहलाद दास को यहाँ बहुत व्यावसायिक लाभ हुआ। तब बैरागी अविवाहित ही रहते थे। प्रहलाद दास का शिष्य (चेला) महंत हरि दास सम्पति का उत्तराधिकारी हुआ। बिम्बाजी की कई रानियों मे से सात या आठ रानियों ने महंत हरि दास से दीक्षा ले ली। अब महंत राजगुरू कहलाने लगे और उन्हें रतनपुर राज्य के प्रत्येक ग्राम से दो रूपये भेंट बसूली (गुरू दक्षिणा) का अधिकार दिया गया। इस धन से महाजनी (चल/अचल सम्पति बन्धक/गिरवी रख धन ब्याज पर उधार देना) का कार्य भी प्रारम्भ कर दिया गया। यह व्यवसाय भी बहुत लाभप्रद रहा। इस प्रकार वे विपुल धन के स्वामी हो गए।[390] छत्तीसगढ़ क्षेत्र के

---

[386] http://en.wikipedia.org/wiki/Punjabi_people

[387] Sir Denzil Ibbetson- Punjab Castes: Race, Castes and Tribes of the People of Punjab (Cosmo Publications) (ISBN 81-7020-458-5)

[388] South Asia-British India Partition

[389] डा.संजय अलंग-भारत विभाजन की पृष्ठभूमि का अध्ययन

[390] धानू लाल श्रीवास्तव-अष्ट-राज्य-अम्भोज,पृ.45 और छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन

पाड़ादाह जमीन्दार ने, हरिदास के पास जमिन्दारी गिरवी रख कर, धन उधार लिया और ऋण पटाने में असमर्थ रहा। अतः जमीन्दारी हरिदास के पास आ गई।[391] हरिदास की मृत्यु उपराँत उनके शिष्य (चेले) महंत रामदास पाड़ादाह जमिन्दारी के उत्तराधिकारी हुए। तब (राज)नाँदगाँव में जमीन्दार इस्लाम धर्मावलम्बी थे। (राज)नाँदगाँव जमीन्दारी भी, उक्त प्रकार से ही, रामदास के पास आ गई। इस प्रकार छत्तीसगढ़ में पंजाबी लोग रियासत की सत्ता के स्वामी हुए और शासक वर्ग में आ गए। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक राजनाँदगाँव की रियासत पंजाबी बैरागियों द्वारा शासित होती रही।

पंजाबी लोग राजनाँदगाँव के पूर्व सक्ति रियासत के भी स्वामी रह चुके थे और अंतिम शासक वंश के साथ वे दीवान रहे। अर्थात शासक के उपराँत अधिकारी वर्ग में रहे। सक्ति में अंतिम शासक गोंड़ वंश के पूर्व दीवान निर्मल सिंह के पूर्वज पुरूषों का शासन था। यह वंश पंजाब से यहाँ आया था। इस वंश को दीवान उपाधि सम्बलपुर राजा द्वारा दी गई थी। इस तरह राजनाँदगाँव के पूर्व सक्ति में भी पंजाबी शासक रहे।

रायगढ़ रियासत के अधिकारी वर्ग में भी पंजाबियों का उल्लेख आता है। यह उल्लेख जुझार सिंह के ज्येष्ठ पुत्र देव नाथ सिंह के शासन काल से आ जाता है। 1833 में बरगढ़ के शासक अजीत सिंह नें अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के प्रति विद्रोह किया। देव नाथ सिंह ने उसे, अंग्रेजों के लिए पराजित किया। अतः अंग्रेजों ने उसे बरगढ़ की जमीन्दारी भी, 1833 में, दे दी। देवनाथ सिंह ने 1857 की क्रांति के समय भी अंग्रेजों की सहायता की। उसने क्रांतिकारी और विद्रोही सम्बलपुर के सुरेन्द्र साय और उदयपुर के शिवराज सिंह को साथियों सहित पकड़ कर अंग्रेजों के हवाले कर दिया। होशियारपुर, पंजाब से आकर एक सिक्ख- वीर सिंह- रियासत में बसे थे। उसके वंशजों ने बरगढ़ को हराने में सहायता की। इसीका एक वंशज शमशेर सिंह हुआ। वह नेटनागढ़ ग्राम का माफीदार और अन्य दो ग्रामों का मालगुज़ार था।[392] देवनाथ सिंह 1862 में स्वर्गवासी हुए।

इस तरह छत्तीसगढ़ में पंजाबी लोग अधिकारी और शासक वर्ग में आए।

पंजाबी लोग ही भारतीय मूल आर्य वैदिक सनातन संस्कृति के पारम्भिक और मूल अध्येता और संस्थापक थे। इनकी संस्कृति विश्व की प्राचीनतम और समृद्धतम संस्कृति मानी गई।

छत्तीसगढ़ राज्य में आने और बसने वाले प्रमुख पंजाबी जातियाँ या समूह, जिनकी जनसंख्या, राज्य में पर्याप्त है, हैं-

(i) पंजाबी ब्राह्मण,

(ii) पन्जाबी क्षत्रीय- (क) पंजाबी खत्री और (ख) पंजाबी अरोड़ा तथा

(iii) पंजाबी जट्ट सिक्ख

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पंजाबी भाषी जाति समूह भी आए, पर छोटे पैमाने पर। उपरोक्त तीन प्रमुख समूहों के उल्लेख के पूर्व उनका भी उल्लेख उचित होगा।

एक- भाटिया:-

---

[391] धानू लाल श्रीवास्तव-अष्ट-राज्य-अम्भोज,पृ.45 और छत्तीसगढ़ दिग्दर्शन

[392] धानूलाल श्रीवास्तव-अष्ट-राज्य-अम्भोज,पृ.118-119

इन्हें भाटी और भट्टी राजपूतों से सम्बद्ध किया जाता है। यह गुर्जर क्षत्रीय[393] हैं, क्योंकि इनका मूल गुज्जर है। इनमें कच्छी, वेहा, हाली, कंथि, नवगम, पचिसगाम और पंजाबी विभाजन है। पंजाब में मेर और सिक्ख राजपूत के रूप में जाने जाते हैं।[394]

दो- सूदः-

अपने को अग्निकुल राजपूत मानते हैं। सूद का अर्थ गाड़ीवान और नानबाई से लगाया जाता है। क्षत्रीय से व्यापारी बने। सूद लेने के कारण मुस्लिमों शासकों ने पृथ्क नाम दिया। 1839 के अहमद शाह आब्दली के आक्रमण उपराँत उत्तरी पहाड़ों पर चले गए। अब अपने को अख्यान के राजा सुदास से जोड़ते हैं। इनके उचंड़िया या पहाड़ी और नेवंड़िया या मैदानी विभाजन हैं। इनमें 52 कुल या अल्ल या सरनेम हैं।[395]

तीन-तरखन (बढई):-

तरखन सामान्यतः बढ़ई माने जाते हैं। यह शब्द तोखा शब्द से बना।[396]

चार-अहलूवालिया या वालिया:-

अहलुवालिया या वालिया जाति समूह को कलार जाति समूह से सम्बद्ध किया जाता है, शराब और आसवन आदि के व्यवसाय से सम्बद्ध समूह रहा है।[397] पर यह योद्धा जाति रही है।

अब छत्तीसगढ़ के प्रमुख पंजाबी जाति समूहों पर चर्चा की जा रही है।

[i] पंजाबी ब्राह्मणः-

पंजाबी ब्राह्मणों में अधिकाँशतः और मुख्यतः सारस्वत ब्राह्मण हैं।[398] इन्हें सारस्वत संज्ञा पौराणिक और आख्यानिक सरस्वती नदी तट/घाटी और उसके आस-पास के क्षेत्रों में निवास करने के कारण

---

[393] http://en.wikipedia.org/wiki/List_of_Gujjar_Clans, http://en.wikipedia.org/wiki/Bhatia और http://en.wikipedia.org/wiki/Gujjar

[394] G.S.Churye-caste and Race in India और Reginld Edward Enthoven-The Tribe and Caste of Bombay

[395] H. A Rose- A Glossary of the Tribes & Castes of Punjab, P.480 और http://en.wikipedia.org/wiki/Sood

[396] http://en.wikipedia.org/wiki/Tarkhan_(Punjab)

[397] http://en.wikipedia.org/wiki/Kalwar Ahluwalia & Walia

[398] Gazette (Punjab Department of Revenue),Religions and Caste

मिली। यह सारस्वत ब्राह्मण पश्चिम भारत के कोंकणी और मराठी भाषी गौड़-सारस्वत और कश्मीरी सारस्वत ब्राह्मणों से भिन्न हैं। पंजाबी सारस्वत ब्राह्मण मूल ब्राह्मण और प्राचीनतम आर्य माने जाते हैं। प्रारम्भिक आर्य, ब्राह्मण ही आए और सभी पेशों को करते थे। उनके सरनेम यह पेशा भी दर्शाते थे। 712 में सिन्ध के इस्लामीकरण से इनका पलायन प्रारम्भ हुआ। बाद में जब सिंधीभाषी लोग विभाजन आदि के कारण पलायन किए, तब उनमें भी सिन्धी सारस्वत ब्राह्मण भी थे, जो पंजाबी सारस्वत ब्राह्मण से भिन्न हैं। यह लोग भी सामान्यतः जोशी, पाठक और कुमार सरनेम ही उपयोग करते रहे हैं, पर कुछ ने अन्य सिन्धी सरनेम भी अपनाए। यथा- आड़वानी, माधवानी, चन्द्राणी आदि। इनमें 'आमिल' सिन्धी समुदाय प्रमुख है। पंजाबी ब्राह्मण अधिकाँशतः हिन्दू वैष्णव पंथ को मानने वाले हैं। इनके प्रमुख चार उपविभाजन हैं।[399]-

प्रथम- **बराहिस**। इसमें शकाद्वीपीय या मग ब्राह्मण हैं। यह 12 जातियों में ही विवाह करते हैं।

द्वितीय- **बावन जई**। यह 52 घरों में ही विवाह करते हैं।

तृतीय- **अठवान**। यह अपने आठ कुलों में ही विवाह करते हैं। यह आठ कुल हैं- जोशी, कुर्ल, संड़, पाठक, भारद्वाज, शौरी, द्विवेदी और तिवारी। यह श्रेष्ठ स्थिति में हैं। कुर्ल को छोड़ शेष सात मूल सात ऋषियों से उत्पन्न माने जाते हैं। इन्ही सात के द्वारा वेद रचना मानी गई है। इनमें से द्विवेदी अधिकाँशतः होशियारपुर जिले के टँड़ा के समीप स्थित बुद्धिपिंड़ ग्राम के हैं।

चतुर्थ- **मोहयल**। यह योद्धा ब्राह्मणों की श्रेणी है। यह ब्राह्मणों से व्युत्पन्न ऐसा समूह है, जो सैन्य ज्ञान को शिक्षा और पढ़ाई के साथ जोड़ता है। इनकी व्युत्पति सारस्वत ब्राह्मणों से ही मानी जाती है। इसे सास्वत पंजाबी ब्राह्मणों का ही एक उपसमूह भी माना जा सकता है। वे अपने को परशुराम का वंशज मानते हैं। परशुराम को प्रथम ब्राह्मण माना जाता है, जिन्होंने अस्त्र-शस्त्र धारण किए थे। इन्होंने ब्राह्मणों के मूल कार्य और पूजा, पुरोहिताई, पुजारी आदि के कार्य छोड़ कर योद्धा के कार्य अपना लिए। इसमें सात कुल हैं- बाली, भीमवाल, छिब्बर, दत्त, लाउस, मोहन और वैद्य। यह ब्राह्मण वर्ग खुखरेन (कोहली) खत्रियों से भी सम्बन्धित रहा है। दत्त तो इनके पुरोहित भी रहे हैं। यह लोग भू स्वामी हैं। सेना और प्रशासन में जाना पसन्द करते हैं और उसमें हैं भी। धार्मिक विश्वासों, परम्पराओं, कर्मकाण्डों और रीति-रिवाजों के प्रति आग्रह नहीं रखते हैं। माँसाहारी हैं। अन्य हिन्दुओं की तरह गाय माँस नहीं खाते हैं। अपने सात कुलों में ही विवाह करते हैं। यह लोग भूमि के मालिक, दीवान, शाह, जमीन्दार, राजा आदि हुए। इन्होंने उत्तर-पश्चिम सीमा प्राँत में (अब पाकिस्तान) अपना पृथ्क अस्तित्व बनाया और स्थापित किया, जहाँ यह लोग जमीन्दार, योद्धा, शिक्षक, विधिवेत्ता आदि हुए। यहाँ के पठान ज्ञान और जन-जातीय कानूनों हेतु इन्हीं की सलाह लेते हैं।

पंचम- भास्कर। यह वशिष्ठ गोत्र के पंजाबी ब्राह्मण हैं। इनका मूल स्थान 'बदु की गुसाईयाँ' माना जाता है, जो अब पाकिस्तान में है।

पलायन, निवासस्थलों के व्यापक विस्तार, आधुनिकता, सामाजिक-आर्थिक कारण आदि के कारण अब कुल अंतर्गत विवाह प्रथाओं में क्षीणता आई है।

[ii] क्षत्रीयः-

इस शीर्षक के तहत छत्तीसगढ़ में रह रही दो प्रमुख पंजाबीभाषी क्षत्रीय जातियों पर ही चर्चा की जा रही है। यह हैं- पंजाबी **खत्री** और पंजाबी **अरोड़ा**।

---

[399] http://en.wikipedia.org/wiki/Punjabi_Brahmins

(क) पंजाबी खत्रीः-

खत्री शब्द संस्कृत या पाली के क्षत्रीय शब्द की पंजाबी व्युत्पति है।[400] पंजाबी में क्ष का उच्चारण नहीं है। ऐसी ही एक नेपाली व्युत्पति छत्री है। हालाँकि खत्री मौर्य काल तक क्षत्रीय ही उच्चारित होते थे।[401] यह एक क्षत्रीय योद्धा जाति रही है, जो सूर्यवंशी हैं।[402] यह लोग शासक और प्रशासक के रूप में सामने आए और धर्म तथा मानवता के सेवक के रूप में जाने गए।[403] धीरे-धीरे अन्य व्यवसायों और व्यापर में भी आए। इसी जाति ने भारत पर हुए समस्त आक्रमणों का सामना सर्वप्रथम किया। खत्री हिन्दू और सिक्ख दोनों हैं। पाकिस्तान और अफगानिस्तान में मुस्लिम खत्री भी हैं। पंजाबी संस्कृति का विकास इसी जाति द्वारा किया गया है। सिक्ख धर्म भी इसी जाति के लोगों से निकला। सभी सिक्ख गुरू खत्री थे।

भारत में सवा उन्नीस लाख से अधिक हिन्दू खत्री अनुमानित हैं, जिसमें से लगभग पाँच हजार से अधिक छत्तीसगढ़ में रहते हैं और उसमें से दो हजार से अधिक छत्तीसगढ़ी भी बोल लेते हैं। भारत में सिक्ख खत्री तीन लाख के लगभग हैं, जिसमें से लगभग हजार-पाँच सौ छत्तीसगढ़ में रहते हैं और उसमें से आधे छत्तीसगढ़ी भी बोल लेते हैं। भारत में मुस्लिम खत्री लगभग पचास हजार तक हैं और विश्व में यह लगभग बारह लाख हैं।[404]

प्रारम्भ में खत्री मुख्यतः उत्तर-पश्चिम में तक्षशिला और माजह क्षेत्र में बसे। यह क्षेत्र ही भारतीय आर्य संस्कृति के विकास और वेद, महाभारत, रामायण, गुरू ग्रंथ साहेब, पुराणों आदि के विकास का भी क्षेत्र था।

सुनारों पर चर्चा करते समय राबर्ट वाने रस्सेल्ल और रायबहादुर हीरालाल द्वारा, उत्पति की एक कथा बताई गई है और यह उल्लेख किया गया है कि, यह समान कथा खत्री और सुनार, दोनों जातियों में, प्रचलित है, पर इस तथ्य से दोनों अनभिज्ञ है कि, यह समान कथा दोनों जातियों में है। यह कथा है- यह लोग उन दो राजपूत भाईयों में से उस एक की व्युत्पत्ति हैं, जिसे सारस्वत ब्राह्मण ने बचाया। ज्ञातव्य हो कि, सारस्वत ब्राह्मण उत्तर-पश्चिम भारत में सामन्यतः हैं। जैसे पंजाब, कश्मीर, सिन्ध आदि। आगे यह कहा गया कि, जब परशुराम क्षत्रीय वध को उदत्त थे, तब एक भाई से खत्री हुआ। सुनारों में यह बात अपने हेतु कही गई।[405]

खत्रियों को मूल आर्य माना जाता है। आर्यों की तरह खत्री इण्ड़ो-सीथियन माने जाते हैं। इतिहासकार यह मानते हैं कि, खत्री शब्द युरेशिया की खजार जनजाति से बना। जैसे अहीर अवर से, जाट

---

[400] Dr. Buddha Prakash - Political and Social Movements in Ancient Punjab (http://punjabrevenue.nic.in/gaz_asr9.htm), तथा अमृत्सर, लुधियाना और फरीदकोट जिला गजेटियर

[401] The Punjab Past and Present By Punjabi University Dept. of Punjab Historical Studies Published by Dept. of Punjab Historical Studies, Punjabi University., 1981

[402] पं हरिश्चंद्र शास्त्री , पं श्याम चरण शास्त्री , तलवादमे , जे सी नेसफिल्ड , सी एच्च इलियट , सर जॉर्ज् कैम्बल , ए एच विल्सन

[403] http://en.wikipedia.org/wiki/Khatri

[404] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[405] R.V.Russell and Rai Bahadur Hira Lal -The Tribe and Castes of the Central Province of India

गैटे से, शक स्कैथी से, गुर्जर और खत्री ख़जार से, ठाकुर और तरखन तुखिरियन से, सौराष्ट्र सौरामट्टी या सरमाटियनस से और सिसौदिया स्सेनियन से।[406]

डा.बुद्धि प्रकाश आधुनिक पंजाबी या उत्तर भारतीय समूहों का उक्त विवरण निम्नाँकित अनुसार देते हैं। इस सूची में खत्री और पंजाबी से इतर जाति समूह भी सम्मलित हैं।:-

सारणी - आधुनिक पंजाबी/उत्तर भारतीय समूहों का पूर्व जनजातियों से सम्बद्धिकरण

स्रोत- Dr.Buddha Prakash- Political and Social Movements in Ancient Punjab

(http://punjabrevenue.nic.in/gaz_asr9.htm)

पंजाबी/उत्तर भारतीय सरनेम	**सम्बन्धित पूर्व नस्ल/जनजाति/कबीला**
अरोड़ा	अरत्ता, आरस्ट्रक
बग्गा	भगल
बधवार और बेदी	भद्रा
बहल, बेहल, भल्ला, भल्का, भल्लार और भल्लोवाना	बल्हिका
चावला	जउला
गुर्जर	गुर्जरा, खजार, वू-सुन, हूण
हून	जरता-जटिओइ
जाट	यवनजा-इओनिन्
जुनेजा, कम्बोध	कम्बोजा
कंग	कंग-क्यु
कपूर	अर्जुनयना ?

406 http://www.archive.org/strem/tribescasteesofceruss_djvu.txt; http://www.wahlah.org; http://www.google.co.in/serch?h1=ensq=gujjar+khazar+thakur+ahir+as+avars&btng=serch&meta+saq =fsod= और http://www.geocities.com/pakhistory/indos-cythian.html

खन्ना	ख्योन(खिओनिते)
खरोति	खरोस्था
खोसला	कुसुल्का
खोखर	करास्कर
मदान	मद्र
मालवा	मालवा-मलोई
मेहरा	मग
ओसहन	सहि(शक)
पठान	पक्था
पुरी	पौरव
सलूजा	सल्वज-साल्व
साहनी	सहनुसहि-कुषाण
सिक्का	शक
सोइ	सि-वांग(शक)
सोंढ़ी, सूद	सौनड़िक
सुल्का, सूरी	लिक-सोग्दिन
तोखी,ठाकुर,विश्नोई	तुखारा
विश्नोई,वादेव	वैस्नव-वसुदेवक

खत्रियों का सर्वाधिक पुराना आँतरिक विभाजन अबुल फज़ल की आईना-ए-अकबरी[407] में मिलता है, जिसे डेंज़िल इब्बेटसन[408] ने उद्धृत किया और तत्पश्चात यह सभी स्थानों पर उद्धृत होने लगा, जिसमें सभी गजेटियर भी सम्मलित हैं।

उक्त के अनुसार अल्लाउद्दीन खिलज़ी के शासन काल में विधवा पुर्नविवाह लागू कराया गया। बावन (52) खत्री कुलों (अल्ल) या जातियों ने शासक को इसके विरूद्ध ज्ञापन दिया। यह (52) खत्री कुलों (अल्ल) या जातियाँ **बनजई या बावनजई** कहलाईं। इसका अर्थ बहु-जई (कई जन्म) लेने से भी लिया जाता है, जो कि बार-बार गलती करने और निकाले जाने तथा पुनः वापस लिए जाने से जोड़ा जाता है। इस सूची में खुखेरियन, ढ़ाईये, बाहरी आदि खत्री विभाजन के कई कुल (अल्ल) और अरोड़ा पंजाबी भी सम्मलित हैं, जो सूर्य और चन्द्रवंशी, दोनों, हैं। यह अधिकाँशतः पश्चिम पंजाब के हैं, उसमें भी मुल्तान के। ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने के कारण, इस विभाजन में कुछ अरोड़ा समूह भले ही सम्मलित हो गए, पर वे खत्रियों में नहीं गिने जाते हैं। हालाँकि आगे उन समूहों का भी उल्लेख किया जा रहा है, जिन्होंने ज्ञापन पर हस्ताक्षर तो किए, पर वे खत्री न हो कर अरोड़ा थे। अरोड़ा अवश्य अपने को खत्री कहलाना पसन्द करते हैं, पर वे खत्रियों से नीचे की अन्य जाति माने जाते रहे हैं। पहले खत्री इनसे विवाह सम्बन्ध नहीं रखते थे, पर अब धीरे-धीरे इनमें भी विवाह करने लगे हैं। हालाँकि वे खत्री, जिन्होंने इस ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए थे, पृथक चिन्हित हो जाने के कारण विवाह अपने मध्य ही करने लगे।

इस विभाजन (या ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने वालों में) (अरोड़ा सहित) में अधलक्खा (अरोड़ा), अवाल, बधवार, बग्गा, बहल, बस्सी, बेरी, भल्ला, भामरी, भण्ड़ारी, बिन्द्रा, धीर, दुग्गल, धुपर, गम्भीर (अरोड़ा), गन्दोत्रा (अरोड़ा), गान्धी (अरोड़ा), गुलाटी (अरोड़ा), गुल्ला, हाण्ड़ा, जग्गी, जेटी, जग्गा, जोल्ली या जौली, कत्याल, खोसला, खुल्लर, किरि, कोचर, लाम्बा, मन्ढ़ोक, मन्हान या महन, मैनी, माकन/मरकान/ माकिन, मलिक, मनखंड़, मरवाह, मोंगा, मोंगिया, नेहरा, निखंज, ओबेराय, ओहरी, परवंदा, पुरी, पहवार, पार्दाल, पस्सी, राय, रोशन, सबलोक, सग्गर या सागर, सहि या शाही, सरना, सेकरी या सेखरी, सिकन्द, सिक्का, सोनी, थमान, ठक्कर या ठाकुर, तुली, थापर, उप्पल, वढ़ेरा, विग या

[407]Abul Fazlallami-The Ain-I-Akbari (English translation from original Perisan by H.Blochmann,M.A. and Colonel H.S.Jarrett),Vol.111, P.114

[408] Denzil Ibbetson,Edward MacLagan,H.A.Rose-A Glossary of the Tribes and Castes of the Punjab and North-West Frontier Province (1911),Vol.-II,P.510

विज, विनायक, वाही आदि सम्मलित हैं।[409]

पूर्वी पंजाब की जिन खत्री कुलों (अल्ल) या जातियों ने इस ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने से इंकार किया, वे **शरा-अईन** (कानून मानने वाले) अर्थात **सरीन** कहलाईं। यह बड़ा और छोटा सरीन में बटे हैं इनके लगभग 300 कुल (अल्ल) हैं। यह भी अपने मध्य ही विवाह करते हैं।

खत्रियों से ही **खोखरन** समूह निकला। यह वे खत्री कुल (अल्ल) या जातियाँ थीं, जिन्होंने खोखरन विद्रोह में खोखरन लोगों का साथ दिया। यह आठ हैं- आनन्द, भसीन (भू-सीन/प्रवचन शक्ति), चढ्ड़ा (चामुण्ड़ा), कोहली (कुल-हरी), सबरवाल (शुभ-वर/भाग्यशाली), साहनी (सेनानी), सेठी (श्रेष्ठी) और सूरी (सूर्य या सूरवीर)। बाद में इनके अन्य उपविभाज भी सम्मलित हुए। यह हैं- चंड़ोक (चन्दधोके, चन्धोक, चन्ददीओक)(चढ्ड़ा का एक उपविभाजन, जो कि 1940 के बाद ही सामने आया), छच्छी (चच्ची, छाची)(कोहली का एक उपविभाजन, जो कि छच्छी, अटोक जिला, जिसे चमेल या चम्पबेल-पुर कहा जाता था, में बसने वाले।), गंढोक और घई (सम्भवतः सूरियों से सम्बन्धित)। बोलचाल की भाषा में इन्हें कोहली खत्री कहा गया। इनसे अन्य खत्री विवाह को अनिच्छुक हो गए।

खोखरन खत्री लोग बेहरा (भद्रावती) नगर (सरगोधा जिला,पाकिस्तान) और साल्ट क्षेत्र से हैं। इसे 'बेहरा फूलों का सेहरा' कह कर सम्बोधित किया जाता रहा है।[410] बेहरा नगर (भद्रावती) पुरू जनजाति या कबीले का नगर था। 7 फुट 6 इंच लम्बा कैकय राज पुरषोत्तम[411] या पोरस (325 ई.पू.) यहीं का सबरवाल खोखरन खत्री था और सिकन्दर से 326 ई.पू. में लड़ा था। इसमें सग्गर (सिन्धू-झेलम) और जिच (झेलम-चिनाब) दोआबा, खुशाब, पिंड़ीघेब, तालागंग, चकवाल, पिंड़ ड़ंड़रखान, पेशावर, नौशहरा आदि हैं। सभी अब पाकिस्तान में हैं। इनकी भाषा दोआबी कहलाई।

यह माना जाता है कि, कुश (राम पुत्र) से खुख शब्दांश बना, जिसका अर्थ जड़ लगाया गया और रेन संस्कृत के रायन से बना, जिसका अर्थ है वंशज। अर्थात राम पुत्र कुश के वंशज और सूर्यवंशी।

खोख्ररन खत्री लोग कश्यप गोत्र के हैं। आन्नद, कोहली और भसीन यह गोत्र ही अपनाते हैं, पर शेष पाँच ने अपने पुरोहित प्रथम शताब्दी में ही बदल लिया। यह अत्यधिक असधारण बात थी। चढ्ड़ा और

---

409 http://en.wikipedia.org/wiki/khukhrain

410 बेहारा एंकेलेव में खुखरेन लोगों ब्दारा लिखवाया गया। http://en.wikipedia.org/wiki/khukhrain

411 ग्रीक इतिहासकार एरियन का मत

साहनी ने वत्स (वीरवंस), सेठी ने पुलस्त, सूरी ने भार्गव और सबरवाल ने हंस को पुरोहित बनाया और यह ही इनका गोत्र हुआ।

खत्रियों के इस उपविभाजन अर्थात खोखरन खत्रियों को वीरों में भी वीर जाति की संज्ञा भी मिली[412], जिसका कारण सभी विदेशी और खासकर मुस्लिम आक्रांँताओं से डट कर सामना करना था। भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह खत्रियों के इसी विभाजन से सम्बन्धित खत्री हैं।

बारी ढ़ाई (तीन को शुभ नहीं मानने के कारण) **घर** खत्री मेहर चन्द, खान चन्द और कपूर चन्द के वंशज हैं। यह वे तीन खत्री थे, जो अकबर द्वारा राजपूत कन्या से विवाह करने पर विवाह समारोह में उपस्थित हुए। इन्हें खत्रियों से पृथ्क कर दिया गया। अतः इनके विवाह इन्हीं परिवारों में होने लगे। इसमें मेहरा (मल्होत्रा, मेहरोत्रा), खन्ना, कपूर आदि सम्मलित हैं। यह लोग कृष्ण वंशज चन्द्रवंशी माने जाते हैं।

बारी बहरान खत्री में टण्ड़न, चोपड़ा, बोहरा, वधावन या वाधवा, तलवार, सहगल, धवन, महेन्द्रू आदि हैं। यह सूर्यवंशी हैं।

कक्कड़ और सेठ **चार घर** खत्री विभाजन में हैं, जो कि ढ़ाई घर का ही विस्तार है।

इन विभाजनों के अलावा अन्य खत्री **नागवंशी** माने जाते हैं। इसमें नैय्यर, नायर, नाईक आदि हैं। यह अपने को क्षत्रिय खत्री मानते हैं। इन्हें खत्रियों ने पृथक कर दिया था। यह दक्षिण भारत में भी हैं।

बाद में बाहर या विदेश में रहने वाले खत्रियों हेतु **बाहरी** संज्ञा भी सामने आई।

खत्री जाति में भी उपजातियों की प्रधानता का क्रम आदि भी है। बारी में ढ़ाई घर के तीन- कपूर, मल्होत्रा और खन्ना- ऊपर हैं। इसके उपराँत बारह घर के खत्री हैं, जिसमें गुजराल, मरवाह, टण्ड़न, चोपड़ा, वाही आदि हैं। इनके उपराँत बावनजई (बावन) घरी हैं। इन घरों के उपराँत खुखेरियन हैं।[413]

अबुल फज़ल के उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि, खत्रियों के कुलों (अल्ल) के मध्य उक्त प्रकार का विभाजन मध्य काल से ही प्रारम्भ हुआ।

---

[412] H A Rose- A glossary of the tribes and castes of the Punjab and North-West provinces, Vol-II, P.-513 (http://books.google.com/books?id=1QmrSwFYe60C&pg+RA4PA514&1pg+RA4PA514&dq=krukhak&source=web&ots=qJ14aZjg95&sig+mqkKIP9QA3hgtIWpp6ZyssJJ_5U और #PPA123,MI)

[413] http://en.wikipedia.org/wiki/khukhrain

एक अन्य सामान्य विभाजन यह है कि, जैसे-जैसे खत्री भारत के विभिन्न प्रदेशों में बसते गए, वैसे-वैसे उन्होने स्थानीय रीति रिवाजों, व्यवहार और व्यसाय को अपनाना प्रारम्भ किया। इस तरह उनकी अनेक उपजातियां बन गयी, जिसमें स्थानियता और क्षेत्र का तत्व प्रधान था। व्यवसाय, युद्धकौशल, विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के प्रति आस्था और रहन सहन की विशेषताओं के उपजातियों के नामकरण होते गए। साथ ही सामाजिक प्रतिष्ठा और स्वाभिमान के कारण कुछ अपने को श्रेष्ठ समझने लगे। ऋषि परंपरा के गोत्र भी विभेद का कारण बने।

खत्री जाति के उपभेदों को **'अल्ल' (कुल)** कहते हैं। अल्लों की उत्पत्ति का कुछ कारण ज्ञात है और कुछ अनुमानित, इसमें बहुत शोध होना आवश्यक है।

भारत पर विदेशी आक्रमण उत्तर-पश्चिम से ही हुए और पंचनद (पंजाब) प्रदेश ही इससे सर्वाधिक प्रभावित हुए। यहाँ के लोग ही पीछे ढकेले गए। इस पर पृथक चर्चा और शोध वाँछित है। फलत: उस प्रदेश के निवासी समय-समय पर भारत के अन्य प्रदेशों में प्रवास कर गए। जो खत्री पहले गंगा-यमुना के किनारे-किनारे कोलकाता तक अर्थात पूर्व में फैलते गए, वे **पूर्विय** (पूर्विया, पूर्वाधे, पबाधे) खत्री कहलाए और जो बाद में अपने प्रदेश से निकले और सामान्यतः पश्चिम की ओर बसे , वे **पछिए** (पछादे, पचाधे, परिचमाधे) कहलाए। इसी प्रकार आगरेवाले, दिल्लीवाले, लाहौरिये आदि उपभेद बनते चले गए। राजस्थान और गुजरात में बसनेवाले **ब्रह्मक्षत्रिय** के नाम से जाने गए। दक्षिण भारत में सहस्रार्जुन प्रसिद्ध सम्राट हुए हैं , उनके वंशज अपने को सोमवंशीय **सहस्रार्जुन खत्री** कहते हैं। यह ध्यान देने योग्य बातें हैं कि ब्रह्मक्षत्रिय और सहस्रार्जुन क्षत्रिय अपने विभेद का कारण प्रसिद्ध परशुराम को मानते हैं।[414] इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में बसने वाले खत्री उत्तर प्रदेश के खत्री कहलाए। अब छत्तीसगढ़ में बसने वाले खत्रियों हेतु भी यह तथ्य रेखाँकित होता है।

---

[414] http://khatrisamaj.blogspot.com/search/label/%E0%A4%96%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A5%8B%E0%A4%82%20%E0%A4%95%E0%A5%87%20%E0%A4%85%E0%A4%B2%E0%A5%8D%E2%80%8D%E0%A4%B2

सिक्ख धर्म स्थापित करने वाले गुरू नानक सहित सभी दसों सिक्ख गुरू पंजाबी खत्री जाति (नानक-बेदी, अंगद-त्रेहन, अमरदास-भल्ला और शेष सात-सोढ़ी) के ही थे। [415]

गोविन्द सिंह ने दशम ग्रंथ के बच्चित्तर नाटक में सोढ़ी और बेदी खत्रियों का उल्लेख करते हुए उन्हें सूर्यवशीं राम पुत्र लव और कुश का वंशज माना।[416] अतः कुछ विद्वान भगवान राम और उनके वंश को भी खत्री ही मानते हैं।

यह माना जाता है कि, लव और कुश का जन्म रामतीर्थ (अब अमृतसर का एक मन्दिर) में हुआ था। दसम ग्रंथ में यह भी बताया गया कि, पंजाब की पूर्व राजधानी लाहौर का नाम लव के नाम पर पड़ा। यहाँ के किले में उनका मन्दिर भी है। लव लौह उच्चारित हुआ और उससे लोह-वर(गढ़) अर्थात लोहे का किला-लाहौर।[417] कसौर (अब पाकिस्तान में) का नाम कुश के नाम पर माना जाता है।

खत्री सूर्यवंशी क्षत्रीय हैं। अधिकाँश खत्री कुलों (अल्ल) के नाम सूर्य के पर्यायवाची ही हैं।[418] जैसे- सहस्त्रकार से सहगल (पुरोहित-मोहिले), कृपाकार से कपूर (पुरोहित-पम्ब), सहनकान से खन्ना (पुरोहित-झिंगन), मार्तण्ड़ से टण्ड़न (पुरोहित-झिंगन), मित्र से मेहरा (पुरोहित-जेटली), श्रेष्ठ से सेठ, बहुकर से बोहरा, चक्रवली से चोपड़ा, करलंगनी से कक्कड़ (पुरोहित-कुमदिया), सूर्य से सूरी आदि।

खत्री जाति मूल रूप से सूर्य पूजक है। यह सारस्वत ब्राह्मणों के यजमान हैं। बाकू (आतिशगाह-अजरबैजान) और काबुल (अफगानिस्तान) के सूर्य मन्दिर खत्री लोगों द्वारा ही बनवाए गए। इसका उल्लेख राहुल साकृत्यायन और असग़र वजाहत के यात्रा विवरणों में भी आया है।[419]

खत्रियों का उक्त वर्णन निम्नाँकित सारणी से भी स्पष्ट होता है।:-

सारणी 4 - कुछ खत्रीयों के कुल देवता, पुरोहित, वंश, गोत्र आदि का सारणीकरण

स्रोत-http://khatri2khatri.com/history.htm और http://en.wikipedia.org/wiki/khukhrain

---

415 http://en.wikipedia.org/wiki/Khatri

416गुरू गोविन्द सिंह- श्री दसम ग्रंथ साहिब,पृ.144 (http://www.sridasam.org/dasam?Action+Page&p=144)

417 http://en.wikipedia.org/wiki/Khatri

418 राजा वन विहारी कपूर का मत
ज्वाला प्रसाद मिश्रा-जाति भास्कर(1914)

419 असग़र वजाहत-चलते तो अच्छा था,पृ.83-86

क्रमाँक	सरनेम (कुल या अल्ल)	वंश	कुल अराध्य	गोत्र	पुरोहित
1	मेहरा	सूर्यवंशी	शिव	कौशल्य	जेतली
2	कपूर	चन्द्रवंशी	चंड़िका	कौशिक	कपूरिये
3	सेठ, बैजल	चन्द्रवंशी	बराई	हंसलस	तिक्खे
4	टण्ड़न	अग्निवंशी	चण्ड़िका	अह्रिस	भिम्गरन
5	कक्कड़	चन्द्रवंशी	शिव	वत्स	कुमरये
6	वोहरा	चन्द्रवंशी	चण्ड़िका	कौसल्या	मालीया
7	धौन	चन्द्रवंशी	योगमाया	ऋंग	कालीया
8	महेन्द्रू	चन्द्रवंशी	शिव	वत्स	भढ़ूरिया
9	खन्ना		चण्ड़िका	कौशिक	
10	भल्ला		जाने देवी	कौशल्य	
11	चोपड़ा		चण्ड़िका देवी	अवलश कौशल्य	बग्गा
12	सहगल		चंड़िका देवी	कौशल्य	होसल
13	पुरी			भारद्वाज	

खोखरन खत्रीः-

14	आन्नद	सूर्यवंशी	दुर्गा माता	कश्यप	बिजड़ा
15	भसीन	सूर्यवंशी	दुर्गा माता	कश्यप	बिजड़ा
16	चढ्ढा	सूर्यवंशी	भद्र काली और ऊ.प्र. में बाबा	वत्स(वीरवंस)	वासुदेव और ऊ.प्र. में लव

			सोंढ़र		
17	कोहली	सूर्यवंशी	सत्यवती	कश्यप (भारद्वाज)	दत्त
18	साहनी	सूर्यवंशी	भद्रकाली	वीरवंस(वत्स)	वासुदेव
19	सबरवाल	सूर्यवंशी	बाबा मेदार	हंसलाल	मदन खम्म
20	सूरी	सूर्यवंशी	भगवती और ऊ.प्र. में शेष नाग	भार्गव	पांध
21	सेठी	सूर्यवंशी	वैष्णव देवी	पुलस्त	सूदन

खत्रियों में कई कुल या अल्ल प्रचलित हैं, जो उनके सरनेम से प्रदर्शित होते हैं। 1891 की जनगणना में खत्रियों के 3,086 समूह और 1911 की जनगनना में 1,559 समूह सूचीबद्ध हुए थे। यह माना जाता है कि, पहले वाली जनगणना में अरोड़ा भी खत्री जाति में गिन लिए गए थे[420], जबकि अरोड़ा खत्रियों से पृथक समूह है, जो कि खत्री कहलाना पसन्द करता है। किन्हीं स्रोतों में अत्यधिक सरनेम उल्लेखित हैं[421], किसी में सीमित[422], पर उनकी संख्या 1,500 से ऊपर प्रतीत होती है। द्वितीय स्रोत[423] के आधार पर कुछ का उल्लेख यह है।:-

ए. एबराल, अलंग (अलघ, अल्ग, अलंघ), आनन्द, अंगरा, अवाल, अजाद, अम्बा;

बी. बधवार (बुधवार), बहल, बाहरि, बैजल, बस्सि, बेदी, बेरी, भल्ला, भामरी, भामरा, भण्ड़ारी, भसीन, बिन्द्रा;

420 http://en.wikipedia.org/wiki/khukhrain

421 http://khatrisamaj.blogspot.com/2010/01/blog-post_14.html

422 http://en.wiktionary.org/wiki/Appendix:Indian_surnames_(Khatri)

423 http://en.wiktionary.org/wiki/Appendix:Indian_surnames_(Khatri)

सी. चांड़क (चड़ढ़ा), चंड़ोक, चौधरी, छट(चट)वाल, चोना, चोपड़ा, छौंछा;

डी. दागिया, धीर, दुग्गल, ढ़ाल, ढ़ांड़;

जी. गढ़ियोक, गोसाई, घई (घेई), गुजराल, गन्दोत्रा;

के. कक्कड़, कपूर, खन्ना, खोसला, कोहली, कत्याल, खट्टर(खत्री), किरी;

एल. लाल, लांबा, लूम्बा;

एम. मंड़ोक, महन, महेन्द्रू, मैनी, माकन (मरकान, माकिन, मवकिन, मकेन), मल्होत्रा, मलिक, मनखन्द, मरवाह (मरवाहा), मेहरा, मेहरोत्रा;

एन. नईय्यर (नायर, नाईर), निजहवान, निखंज, नन्दा;

ओ. ओबेराय, ओहरी;

पी. परवन्दा, पुरी, पहवार;

आर. राय, रोशन;

एस. सयाल, सबरवाल, सग्गर, साहनी, सामि, सरीन, सरवाल, सग्गी, सरना, सहगल, सेठी, सेठ, सिब्बल, सिकन्द, सिक्का, सोबती, सोढ़ी, सोन्धी, सोनी, सूरी;

टी. तलवार, तेहमान, टण्ड़न, त्रेहन, तुली;

यु. उप्पल*;*

व्ही. वढ़ेरा, वासुदेव, विज (विग), विश्वनाथ, वर्मा;

डब्ल्यु. वाही, वालिया, वधावन

आदि-आदि।

खत्रियों के कुछ स्पष्ट प्राचीन सन्दर्भ भी हैं, जिसमें अबुल फजल के आइना-ए-अकबरी का उल्लेख किया जा चुका है। कुछ अन्य हैं- पाँचवी और छठी शताब्दी में सियालकोट के राजा रसालू के मंत्री माहित

चोपड़ा का उल्लेख आता है, जो यह सिद्ध करता है कि, तब चोपड़ा सरनेम प्रचलित था। खोखरन खत्रियों की चर्चा के समय जिस बेहरा नगर का उल्लेख आया है, वहाँ 1540 में शेरशाह सूरी ने नया नगर बसाया, जो बाद में अकबर के कब्जे में आया। यह लाहौर सूबे में था। मोहम्मद शाह के काल में यहाँ का प्रभारी सलामत राय और बाद में उसका भतीजा फतेह सिंह आनन्द खत्री था।[424] बेहरा का अंतिम शासक दिवान बहादुर जावाहिर मल सेठी खुखेरियन खत्री था।[425] यह परिवार या वंश पेशावर से आया था। गजनी का मुकाबला खुखेरियन खत्रियों ने भी किया। गजनी के आक्रमणों का सामना करने में खत्रियों द्वारा डटकर मुकाबला करने का स्पष्ट उल्लेख ड़ा. ईश्वरी प्रसाद और जाअन ब्रिग्स करते हैं।[426] राजा फतेह चन्द, जिसने सिक्ख गुरू तेग बहादुर की सेवा की थी, मियानी खत्री था और इसीसे मियानी संगत तथा बाललीला मियानी संगत अस्तित्व में आए। हकीकत राय पुरी खत्री था। हरि सिंग नलवा उप्पल खत्री था। रंजीत सिंह के दीवान खत्री सावन मल और खत्री मूल राज चौपड़ा मुल्तान के गवर्नर रहे। सियालकोट के साधु सिंह गुल्ला उपनिवेशवादियों के विरूद्ध लड़े। बंगाल (अविभाजित अर्थात उड़ीसा और बिहार सहित) के वर्धमान नरेश खत्री थे। उड़ीसा के खत्री अन्य क्षत्रीय जातियों से ऊँचे माने जाते हैं। पुरी के राजा खत्री थे और अब उनके वंशज पुरी मन्दिर के ट्रस्टी हैं।

भारत और छत्तीसगढ़ के अधिकाँश खत्री हिन्दू हैं और सनातन खत्री कहे जाते हैं।[427] खत्री गैर-ब्राह्मण जातियों में वह जाति है जिसे वेद अध्ययन का अधिकार परम्परागत प्राप्त रहा है।[428] सारस्वत ब्राह्मण इनसे सभी तरह का, कच्चा और पक्का दोनों, भोजन ग्रहण करते हैं। जब खत्रियों द्वारा सिक्ख धर्म की स्थापना हुई तो, सभी खत्री परिवारों से सिक्ख बनने की परम्परा पड़ी, जो अब क्षीण हुई है। खत्रियों में कई सिक्ख खत्री छत्तीसगढ़ में भी हैं। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह भी सिक्ख खत्री हैं। दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज को भी खत्रियों ने ही अपनाया और पोषित किया। अल्प मात्रा में जैन खत्री भी हुए।

---

[424]Imperial Gazetteer of India,Voll.-22,P.124
(http://dsal.uchicago.edu/reference/gazetteer/pager.html?objectid+DS405.1.134_V22_219.gif)

[425] W.L.Conran and H.D Craik- The Punjab Chiefs,P.197

[426] Mohomed Kasim Ferishta(Translated from the original Persian by John Briggs)- History of the rise of the Mahmomedan Power in India, Vol P.- 22

[427] Matthew Atmore Shering-Hindu Castes and Tribes as represented in Banares,1872,P.277
(http://books.googal.com/books?id=8V4IAAAAQAAJ&Pg=PA167&dq=The+Tribes+and+castes+of+the+NorthWestern+Provinces+and+oudh&lr=#PPA277,M1P277)

[428] Matthew Atmore Shering-Hindu Castes and Tribes as represented in Banares,1872,P.277
(http://books.googal.com/books?id=8V4IAAAAQAAJ&Pg=PA167&dq=The+Tribes+and+castes+of+the+NorthWestern+Provinces+and+oudh&lr=#PPA277,M1P277)

जैन आचार्य आत्माराम, जो विजयानन्द सूरी कहलाए, कपूर खत्री थे। कश्मीर, पाकिस्तान और अफ़ागानिस्तान में मुस्लिम खत्री भी हैं।

रमेश चन्द्र मजूमदार का मनना है कि, खत्री तब-तब अत्यधिक एकीकृत और संगठित हुए जब मध्यकाल में हिन्दू विश्वासों, धन और स्त्रियों पर खतरा मंडराया।[429]

खत्री लोग सभी हिन्दू त्योहारों को मनाते हैं। **पंजाबी संस्कृति के प्रमुख हैं**। लोहड़ी, नवरात्र, बैसाखी भी मनाते हैं। बसंत या चैत्र नवरात्री को खत्रियों द्वारा मनाने की कथा इस त्योहार की उत्पति की कथा से ही जुड़ी हुई है। यह कथा यह है।:-

शिकार के दौरान (अयोध्या) राम के पूर्वज कोसल राज (अयोध्या) सूर्यवंशी राजा ध्रुव सिंह शेर द्वारा मारे गए। अतः रानी मनोरमा के पुत्र राजकुमार सुदर्शन के राज्य आरोहण की तैयारी की जाने लगी। अब अन्य रानी लीलावती के पिता उज्जैन राज युद्धजीत और रानी मनोरमा के पिता वीरसेन अपने-अपने नातियों को सिंहासनारूढ कराने हेतु युद्धरत हो गए। इस युद्ध में कलिंग राज खेत रहा। मनोरमा पुत्र सुदर्शन सहित निष्कासित हो गई। इनके साथ एक हिजड़ा भी था। वे भारद्वाज आश्रम में आ गए। इधर विजयी उज्जैन राज युद्धजीत ने अपनी पुत्री के पुत्र शत्रुजीत को कोसल राजधानी अयोध्या में सिंहाँसनारूढ़ कराया। तदुपरांत उसने ऋषि से शरणागतों को माँगा। ऋषि ने इंकार कर दिया। इसी समय एक ऋषि पुत्र आश्रम आया। उसने हिजड़े हेतु प्रयुक्त संस्कृत संज्ञा- क्लीब- से उसे पुकारा। राजकुमार ने प्रथम शब्दांश क्लि को ही सुना और उसे क्लीम पुकारने लगा। यह देवी का बीज मंत्र भी है। सो उसे देवी दर्शन और वरदान प्राप्ति हुई। उसे दिव्य अस्त्र-शस्त्र मिले। अब उसे वाराणसी दरबार के कुछ लोगों ने देखा और वहाँ की राज कन्या शशिकला के वर के रूप में चुन लिया। शशिकला ने भी स्वयंवर में उसे ही वरा और विवाह सम्पन्न हुआ। इस समारोह में उज्जैन राज उद्धजीत भी था। वह वाराणसी राज से लड़ बैठा। देवी ने सुदर्शन और उसके स्वसुर की सहायता की। युद्धजीत ने तिरस्कार किया और वह और उसकी सेना भस्माभूत हो गई। सुदर्शन ने पत्नी और स्वसुर के साथ देवी की स्तुती की। देवी ने उन्हें बसंत/चैत्र में हवन और अन्य साधनों से भक्ति करने का आदेश दिया और अंतर्ध्यान हो गईं। वे भारद्वाज ऋषि के आश्रम लौट आए। अब ऋषि ने सुदर्शन को आशिर्वाद के साथ कोसल (अयोध्या) का सिंहांसनारोहण भी कराया। सुदर्शन ने प्रति बसंत/चैत्र नवरात्र पर हवन पूजन से विधिवत देव भक्ति का क्रम बनाए रखा। आगे उसके वंशज भी इसे निभाते रहे, जिसमें राम भी सम्मलित हैं। खत्री भी अपने को इसी वंश का मानते हैं। अतः वे भी इस वंश

[429] Ramesh Chandra Majumdar-Ancient India(ISBN 8120804368)

परम्परा को निभाते हैं। शरद नवरात्र भी राम की रावण पर विजय से जोड़ा जाता है। इसी से दशहरा और दीपावली भी जुड़े हैं।

यह कथा या तथ्य मात्र परम्परा और वंश रेखांकित करने हेतु उल्लेखित की गई है। हालाँकि अन्य आयोजनों और त्योहारों हेतु भी विभिन्न कथाएँ और प्रसंग पृथक से हैं।

1936 की लाहौर खत्री महासभा के आयोजन में सभी अरोड़ा, सूद और भाटिया लोगों को खत्रियों रोटी-बेटी के सम्बन्ध हेतु मान्य किया, पर इससे कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा और आगे जाकर समय के प्रभाव से धीरे-धीरे स्वमेव यह क्रिया प्रचलन में आती गई।[430]

खत्रियों में सामान्यतः गर्भावस्था में संस्कार नहीं किया जाता। जन्म संस्कार में जच्चा-बच्चा की शुद्धता 40 दिनों के उपराँत मानी जाती है। तब स्नान, नव वस्त्र धारणा, पूजा, अराध्य दर्शन आदि की परम्परा है। तब चौका चढ़ाई की रस्म की जाती है।

विवाह संस्कार रस्मो रिवाज वाले हैं, जिन्हें बड़े शौक और उत्साह से निभाया जाता है। पंजाबी विवाह के रस्मोरिवाजों में ठाका, सगन, चुन्नी, सगाई, धुगनिया, तेल, घड़ोली चूड़ा, मेहन्दी, लेड़ीज संगीत, सेहरा बन्दी, वाग, सुरमा, मिलनी, सगन रोटी और गिराई, लाँवा फेरे, जूता छिपाई, कलीचड़ि, ड़ोली, तिलमल्ले, कंगना आदि रस्मों के अन्दर भी कई रस्में हैं। इनमें से कई तो किसी रिश्ते विशेष के द्वारा ही की जानी होती हैं। लेड़ीज संगीत और मेंहदी जैसी कई रस्में खत्रियों से ही अन्य हिन्दू और भारतीय समुदायों में पुष्ट हुईं। बारात में नाचने-गाने की परम्परा भी पंजाबी शादियों से ही पुष्ट हुई। विवाह में सात फेरे होते हैं। विवाह समारोहपूर्वक करते हैं।

मृतक को जलाते हैं। अस्थि विसर्जन, सामान्यतः, गंगा में हरिद्वार जाकर करते हैं। मृतक संस्कार हिन्दुओं की तरह है, पर सामन्यतः मुण्ड़न नहीं कराते हैं, पर अब कुछ कराने लगे हैं।

खत्री अपनी निष्पक्षता, योग्यता, प्रशासनिक क्षमता, मर्यादित व्यवहार और ईमानदारी के लिए ख्यात हुए तथा इन्हें तीखे नयन-नक्श, चौड़े माथे और ऊँचाई के कारण भी चिन्हित किया गया।[431] **भारत के सर्वाधिक प्रधानमंत्री (तीन-नन्दा, गुजराल और मनमोहन) इसी खत्री जाति से हुए।**

---

[430] http://punjabrevenue.nic.in/fdigs.htm

यह जाति मूलतः योद्धा है। सेना के सर्वाधिक अध्यक्ष भी खत्री ही रहे हैं। फिल्म (कपूर) और कला में खत्रियों की उच्च और पृथक पहचान है। इस जाति से कई उच्च ख्यातनाम लेखक, फाइन आर्ट पेंटर/चित्रकार, प्रशासक, मंत्री, न्यायविद, खिलाड़ी, पत्रकार, उद्योगपति, व्यवसायी, फैशन डिज़ाईनर, इजीनियर, चिकित्सक, सर्जन, वैज्ञानिक आदि हुए हैं।[432]

खत्री सज्जन, कानून मानने वाले और शिक्षित रहे हैं और हैं।[433] योग्यतम प्रशासक माने जाते हैं।

भाँगड़ा लोक नृत्य खत्री जाति का नृत्य माना जाता है, जो इनसे अन्य पंजाबी जातियों में गया।[434]

(ख) अरोड़ाः-

पंजाबीयों में खत्री प्रधान जाति है। अरोड़ा उससे मिलता-जुलता, पर पृथ्क, जाति समूह है। यह भी क्षत्रीय हैं[435], पर इन्हें कहीं-कहीं वैश्य कहा[436] और समझा जाता है। इब्बेटसन इन्हें रोर का क्षत्रीय कहता है।[437] अरोड़ा जाति भारोपीय (Indo-European) समूह की योद्धा जाति है। यह भी योद्धा पर शिक्षित जाति है। भारत विभाजन के पूर्व यह लोग अधिकाँशतः पश्चिम पंजाब (पाकिस्तान) के सिन्ध और उसकी सहायक नदियों के साथ, मालवा क्षेत्र (भारतीय पंजाब), उत्तर-पश्चिम सीमा प्राँत और सिन्ध में रहते थे। यह राजस्थान और गुजरात में भी थे। अविभाजित पंजाब में अधिकाँश खत्री उत्तर के पोतोहार और माझा में तथा अधिकाँश अरोड़ा मध्य और दक्षिण-पश्चिम (बहावलपुर सहित) में अधिक थे। अभी भी उत्तर-पश्चिम सीमा प्राँत और पंजाब के उत्तर-पश्चिम के जिलों में इनकी उपस्थिति उल्लेखनीय है। भारतीय आर्य विशेषकर खत्री और अरोड़ा पूरे एतिहासिक काल में सिन्धू घाटी में ही रहे। कुछ अरोड़ा सिक्ख भी हुए।

भारत में हिन्दू अरोड़ा भारत में लगभग 36 लाख अनुमानित किए गए हैं, जिसमें से लगभग 25

---

431 http://en.wikipedia.org/wiki/Khatri और The Punjab Past and Present By Punjabi University Dept. of Punjab Historical Studies Published by Dept. of Punjab Historical Studies, Punjabi University., 1981

432 http://en.wikipedia.org/wiki/List_of_distinguished_Khatris

433 लुधियाना गजेटियर

434 http://en.wikipedia.org/wiki/Arora

435 http://en.wikipedia.org/wiki/Arora

436 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

437 Denzil Ibbetson, Edward MacLagan, H. A. Rose- A Glossary of The Tribes & Casts of The Punjab & North West Frontier Province, 1911,Vol-II, P.17

हजार छत्तीसगढ़ में माने गए हैं और उसमें से लगभग कुछ सौ छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं। राष्ट्र में सिक्ख अरोड़ा लगभग साढ़े चार लाख अनुमानित किए गए हैं, जिसमें से लगभग एक-आध हजार छत्तीसगढ़ में माने गए हैं और उसमें से कुछ ही छत्तीसगढ़ी भी बोलते हैं। मुस्लोम अरोड़ा भारत में कुछ सौ मात्र हैं।[438]

अरोड़ा संस्कृत के अरोडा से बना और यह अरोडा प्रोटो-इण्ड़ो-आर्य शब्द अरट्टा से बना।[439] युनानी ग्रीक अरकेशिया (अब कन्धार) में रहने वाले अरट्टा लोगों को इओरिटे कहते थे। अरोर (आरकोट, अलोर) नगर का नाम अरोड़ा नाम पर ही पड़ा। कुछ का मानना है कि, इस नगर के नाम पर अरोड़ा नाम पड़ा।[440] तब यह कहा गया कि अरोर से उन्हें परशुराम ने हटाया। अरोड़ा लोगों ने अरोर को बसाया और वहाँ शासन किया। कहते हैं, कि एक फकीर के श्राप से यह जनशून्य हुआ। इसका उल्लेख लोकगीत में भी आया। एक लोक गीत में यह प्रसंग आता है कि, मुस्लिम आक्राँताओं और क्रुध संत के प्रभाव के कारण पंजाब के दक्षिण और पश्चिम, राजस्थान के नाउगर और जोधपुर, सिन्ध, गुजरा आदि में यह लोग गए।

कुछ सिन्धी, गुजराती, लोहाना, राजस्थान के नागौरी और जोधपुरी खत्री भी अरोड़ा सरनेम का उपयोग करने लगे।[441]

आर्य का नाम भी इनके लिए प्रयुक्त हुआ। आर्य इनकी उपजाति भी हुई।

अरोड़ा उत्पति के सभी तथ्य अरोर, रोहोर और सुक्कुर (उत्तर सिन्ध-पंजाब और सिन्ध की सीमा पर) की ओर संकेत करते हैं। डा. बुद्ध प्रकाश अरोड़ा को मध्य एशिया की अत्ता, आरस्ट्रक जनजाति से सम्बद्ध करते हैं।[442] यह सिन्धु तट और घाटी का क्षेत्र है। मध्य एशिया से आर्य आगमन पर भी यह यहीं थे। सिन्धु ही इनका मूल क्षेत्र है। बाद में यह लोग अमृतसर भी आ गए और अरोरियाँवाली गली अस्तितव में आई।[443]

अरोड़ा आर्यो की व्युत्पति हैं। भारत के बाहर एक सिद्धांत यह माना जाता है कि, प्रोटो-इण्ड़ो-युरोपियन लोगों में कम से कम मिश्रण के साथ, अरोड़ा लोग ही हैं। एक सिद्धांत यह है कि, आर्केनियन्स के नाम से जाने वाले अरट्टा (Arattas) लोग ही अरोड़ा हैं। यह अरट्टा लोग महाभारत में भी बहिलका (पंजाब, पाकिस्तान) के पड़ोसी के रूप में उल्लेखित हुए हैं। अरकेशिया (कन्धार या दक्षिण अफगानिस्तान

---

[438] http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[439] लुधियाना गजेटियर, Punjab Revenue (Section on Aroras)

[440] Denzil Ibbetson, Edward MacLagan, H. A. Rose- A Glossary of The Tribes & Casts of The Punjab & North West Frontier Province, 1911,Vol-II, P.17

[441] Punjab Revenue (Section on Aroras) की पाद टिप्पणी

[442] Dr. Buddha Prakash - Political and Social Movements in Ancient Punjab (http://punjabrevenue.nic.in/gaz_asr9.htm)

[443] अमृतसर गजेटियर, Punjab Revenue (Section on Aroras)

और हेलमन्द नदी का बेसिन) से, यह लोग सिन्ध में बसे। अरोर और अरोड़ा अरट्टा से व्युत्पन्न शब्द हो सकते हैं।[444]

जब फकीर श्राप के उपराँत अरोर आदि से अरोड़ा उत्तर, पश्चिम और दक्षिण गए तो इसी अनुसार उनके विभाजन भी सामने आए। यह थे- **उत्तराधी, गुजराती** और **दक्खनी**।[445] पहले विवाह इन उपविभाजनों के अन्दर ही करते थे। इनमें **उचन्धा** और **निचन्धा** विभाजन भी है।

सिन्धु तट पर अरोर (अरबी नाम अल-रोर से) (अब रोहरि) सिन्ध की प्राचीन राजधानी था, जो कि समृद्ध और व्यावसायिक था। प्रसिद्ध राजा दाहिर यहीं से था। इसे 711 में अरब सेनापति मोहम्मद-बिन-कासिम ने जीता और राजधानी मंसूरा ले गया। 962 के भूकम्प से सिन्धु की धारा का बहाव मार्ग बदलने से यह नगर समाप्तप्राय होकर गाँव मात्र रह गया।[446]

समाजशास्त्री जी.एस. धुरिए ने कुछ उन जातियों को चिन्हित किया है, जिनके नाम व्यवसायों से आए। जैसे- ग्वाल, गड़रिया (भेड़ के लिए शब्द गदर से), लोहार, कुम्हार, सुनार आदि-आदि। साथ ही यह भी कि कुछ जाति नाम अपनी पूर्व जनजाति, परम्परा और आचार-नियमों के आधार पर आए, इसमें अरोड़ा भी हैं। अन्य कुछ हैं- गुज्जर, लोहाना, भाटिया, मीणा, भील, डोम, उराँव, मुण्ड़ा, संथाल, कोच, अहीर, महार, नायर, मराठा, गोण्ड, खोण्ड़ आदि-आदि।[447]

छत्तीसगढ़ में अधिकाँश अरोड़ा भारत विभाजन के उपराँत आए, जिसमें उत्तराधी अरोड़ा अधिक हैं। अरोड़ा जाति तेज, उत्साही, बुद्धिमान और चतुर मानी जाती है। इसी कारण यह लोग शीघ्र ही व्यवस्थित भी हुए। इसमें हिन्दू और सिक्ख दोनों थे। व्यवसाय और उद्योग, इनका प्रमुख पेशा है। यह लोग भले ही खत्रीयों से भिन्न और जाति क्रम में उनसे नीचे थे, पर इब्बेटसन कुछ मामलों में इन्हें उनसे बेहतर भी मानता है।[448] पहले इनमें विवाह सम्बन्ध नहीं थे। अब होने लगे हैं। 1936 की लाहौर खत्री महासभा के आयोजन में सभी अरोड़ा, सूद और भाटिया लोगों को खत्रियों ने रोटी-बेटी के सम्बन्ध हेतु मान्य किया, पर इससे कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा और आगे जाकर समय के प्रभाव से धीरे-धीरे स्वमेव यह क्रिया प्रचलन में आती गई।[449] यह लोग खत्री कहलाने में गर्व महसूस करते हैं और खत्री पंजाबी आचरण को अपनाते हैं। इनमें भी कई सिक्ख बने। सिन्ध में रहने के कारण सिन्धी हिन्दुओं के कई सरनेम इनसे मेल खाने लगे। जैसे- अहूजा, चावला, ठक्कर आदि। विशेष कर 'आनी (या अनि)' और 'जा' शब्दांत वाले।

---

444 http://en.wikipedia.org/wiki/Arora

445 Denzil Ibbetson, Edward MacLagan, H. A. Rose- A Glossary of The Tribes & Casts of The Punjab & North West Frontier Province, 1911,Vol-II, P.17

446 http://en.wikipedia.org/wiki/Aror

447 G.S.Ghurye-Caste and Race in India (Popular prakashan,2004),P.31 to 33

448 होशियारपुर गजेटियर

449 http://punjabrevenue.nic.in/fdigs.htm

राजस्थान में जोधपुरी और नागौरी खत्रियों के सरनेम भी अरोड़ाओं से मेल खाए। जैसे- गाबा और जुनेजा। इन्होंने कुछ खत्री सरनेम को भी अपनाया।

इनके भी कुल (अल्ल) कई हैं, जिनकी संख्या 1,500 से भी अधिक है। इन्हें कभी-कभी खत्रियों में भी गिना दिया जाता रहा है। छत्तीसगढ़ इनके अधिकाँश सरनेम जा या आनी (या अनि) शब्दांत वाले हैं। कई इस तरह के शब्दांत से पृथ्क भी हैं।

तेरह (13) प्रमुख पंजाबी अरोड़ा कुल (अल्ल) या सरनेम माने गए हैं- गाबा (गाभा, गौभा), गिलहोत्रा, चुघ, ग्रोवर, मदान, मोंगा, नागपाल, नरूला, सचदेव (सचदेवा), सेतिया, वाधवा, वालिया-कुकरेजा, कालरा और ढ़ीगरा।[450]

इनके कई (1,500 से अधिक) अन्य सरनेम हैं (जिनमें से कुछ खत्री बावनजई विभाजन में भी उल्लेखित हुए हैं, पर वे मात्र ज्ञापन पर हस्ताक्षर करने के कारण, न कि खत्री होने के कारण):-

ए. अचेजा, अचरेजा, अधलक्खा, अहूजा (आहूजा), अजमानी, अलरेजा, अनेजा, अरनेजा, अरोड़ा, आर्य, असीजा, अल्माड़ी;

बी. बजाज, बलूजा, बंगा, बरेजा, बथेजा (बथिजा), बाथला, बत्रा, बवरेजा, बावेजा (बवेजा), भरेजा, भटेजा, भूसरी (बुसरी, बौसरी), भुगरा, भूटना, भूटानी (भुटियानी), बुद्धिराजा (बुद्धराजा), भटिजा, बनोथा;

सी. चावला, चचरा, छाबड़ा, चुघ;

डी. डंग, डारगन, डावर, धमीजा (धमेजा), धनेजा, ढ़ींगरा, दुआ, डुड़ेजा, डुरेजा (धुरेजा), दुसेजा (दोसेजा), डोडा;

ई. ईशफुनीयानी;

एफ. फुटेला;

जी. गाबा (गौभा, गाभा), गवेरा, गगनेजा, गक्खर, गिलहोत्रा, गलहोत्रा, गिरोत्रा, गम्भीर, गान्धी, गिरधर (गिधर), गोगिया, गुम्बर, ग्रोवर, गुलाटी, गुलरी, गुरेजा, गुलयानी;

एच. हंस, हंसिजा, होरा;

आई. ईशपुजानी;

जे. जगसिया, जड़ेजा, जयसिंह, जाम्भ (झांब), जुनेजा (जनेजा, जोनेजा), जसूजा;

---

[450]http://en.wiktionary.org/wiki/Appendix:Arora_surnames और http://en.wikipedia.org/wiki/Arora

के. कटारिया, क्वात्रा, कालरा, कमरा, कठपाल, कथूरिया, खरबन्दा, खेड़ा, खुंगर, खुराना, कुकरेजा, कुमार, कैंथ, कुक्कड़;

एल. लाल, लेखी, लूना, लूथरा, लूला (लुल्ला, नरूला), लीका;

एम. मदान, माखीजा, मक्कड़, मल्लिक (मलिक), मनचन्दा, मिनोचा (मनोचा), मट्टा, मेहन्दीरत्ता (मेन्दीरत्ता), मिढ़ड़ा, मिंगलानी, मित्तरा (मित्रा), मोहिन्द्रा, मोंगा, मुधार, मुखी, मुंजाल, मुटनेजा, मटरएजा;

एन. नागदेव, नागपाल (ननंगपाल, अंग्रेजी संस्करण-पाल), नागरू, नकरा, नरूला (नरूल्ला, निरूला), निचल (निश्चल, निसचल);

पी. पपनेजा (पुपनेजा0, पबरेजा, पट्टेजा, पाहूजा, पहवा, पपरेजा, परेजा, प्रूथि (परूथि) (यह सरनेम विदेशी अलबानियन लोगों में भी है), पसरीचा, पसरीजा, फुटेला, पुनयानी;

आर. रहेजा, रजेजा, रखेजा (रकेजा), रल्हन, रवेजा, रसवंत;

एस. सचदेव (सचदेवा), सालूजा (सलूजा), सतीजा, सिन्द्धवानी, सुखिजा, सुनेजा, सिदाना (सदाना);

टी. टगरा, तलरेजा, तलुजा, तनेजा, तरनेजा, थरनेजा, टुटेजा;

यु. उटरेजा;

व्ही. वासन (वसंत), वासदेव (वासदेवा, वासुदेव), वाधवा

आदि-आदि।[451]

अरोड़ा लोगों ने भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में बढ़ कर भाग लिया। हिन्दू महासभा से जुड़े और मदन लाल पहवा इस कारण जाने गए। आर्य समाज की गतिविधियों में भी भाग लिया। जब खत्री सिक्ख धर्म और अन्य समूहों यथा आर्य समाज आदि की ओर झुकने लगे, तब अरोड़ा लोग हिन्दू झण्ड़ाबरदार के रूप में सामने आए।

अरोड़ा कद्दावर और सुन्दरता से भी जाने गए। अपने संस्कारों, शिक्षा, उद्यमशीलता, चतुरता और बने रहने की तीव्र इच्छाशक्ति के कारण अपने को स्थापित कर पाए। परिश्रमी होते हैं और कठिन परीश्रम से अपने को स्थापित करने के कारण जाने गए।[452] इन्होंने व्यवसाय, शिक्षा, मैड़िसिन, वित्त, तकनीकी, इंजीनियरिंग, निर्माण, कला, मनोरंजन, सेना और प्रशासन में अपने को स्थापित किया।

झूमर नृत्य अरोड़ा जाति का मूल नृत्य माना जाता है, जो इनसे अन्य जातियों में गया।[453]

---

[451] http://en.wiktionary.org/wiki/Appendix:Arora_surnames और http://en.wikipedia.org/wiki/Arora

[452] अमृतसर गजेटियर

[453] http://en.wikipedia.org/wiki/Arora

[iii] पंजाबी जट्ट सिक्खः-

जैसा की पूर्व में उल्लेख आ चुका है कि, पंजाबी भाषा में क्ष और श का उच्चारण नहीं होने के कारण खत्री (क्षत्रीय) और खुख(कुश)-रेन(रायन) अर्थात खोखेरन शब्द (जाति समूह) बने। उसी प्रकार संस्कृत के शिष्य और शिक्षा शब्द से सिक्ख शब्द की व्युतपत्ती हुई।[454]

सिक्खों की परिपाटी और आचार सन्हिता की पुस्तक रेहात-मर्यादा के अनुसार सिक्ख वह मनुष्य है जो अजर, अमर, अविनाशी पर विश्वास करे, दस गुरूओं (गुरू नानक से गोविन्द सिंह तक) और गुरू ग्रंथ साहिब की शिक्षाओं पर विश्वास करे, दसवें गुरू द्वारा निर्धारित संस्कार कराए और अन्य धर्म के प्रति निष्ठावान नहीं हो।[455]

सहज संस्कारित सिक्ख सोच-समझ कर धीरे-धीरे बना जाता है और इसलिए उन्हें सहजधारी सिक्ख कहा जाता है।

विश्व में सभी जातियों के सिक्ख 2 करोड़ 50 लाख (25 मिलियन) तक हैं[456], जिसमें से 2001 की जनगणना में 1 करोड़ 92 लाख (19,215,730) भारत में थे।[457] सिंगापुर में सिक्खों की प्रविष्टि भी हिन्दू के रूप में ही होती है।[458]

पंजाबी खत्री जाति से सिक्ख धर्म का प्रारम्भ हुआ और प्रारम्भ में खत्री ही इसे जीवित रखने और बनाए रखने को उदत्त हुए। ***सिक्ख धर्म स्थापित करने वाले गुरू नानक सहित सभी दसों सिक्ख गुरू पंजाबी खत्री जाति (नानक-बेदी, अंगद-त्रेहन,अमरदास-भल्ला और शेष सात-सोढ़ी) के ही थे।***[459] इसके मानवतावाद और समानता के प्रचार के कारण इसमें कई जातियों के लोग जुड़ते चले गए, जिसमें हिन्दू जाट जाति के लोग सर्वाधिक थे। यह माना जाता है कि, भारत में आज यह जट्ट सिक्ख, सिक्ख धर्म का 50 से 66% भाग हैं और वे सिक्ख धर्म के खालसा पंथ की स्थापना के बाद इससे जुड़े और इस धर्म के खालसा पंथ को ही मानते हैं, अन्य पंथों को नहीं। धीरे-धीरे इन्हें ही सिक्ख प्रतीक के रूप में माना जाने लगा। 12 में से कम से कम 7 सिक्ख मिसिल जट्ट सिक्खों के ही अधिकार में आ गई।[460] छत्तीसगढ़ में इन्ही को सिक्ख प्रतीक माना जाता है।[461] यह अधिक रूढ़ और कट्टर हुए।[462] अपने को पृथ्क बताने के लिए 'जट्टा' शब्द प्रचलित किया।

---

[454] Khushwant Singh-The illustrated History of the Sikhs(Oxford university press,ISBno.-19-567747-1),P.15 और खान सिंह नाभा-गुर शबद रत्नाकर महान कोष (गुरूमुखी लिपी में),पृ.720 (http://www.ik13.com/online_Library.htm#mahankosh)

[455] सिक्ख रेहत मर्यादा (शिरोमणी गुरूद्वारा प्रबन्धक कमेटी) (http://wwwsgpc.net/rehat_maryada/Section_one.htmi)

[456] Panthic Weekly- Has India put the U.S. - India 'Nukes - for mangoes' (http://www.panthic.org/news/129/ARTICLE/3632/2007-10-24.html)

[457] भारत की जनगणना'2001 (http://www.censusindia.gov.in/.)

[458] http://en.wikipedia.org/wiki/Sikh

[459] http://en.wikipedia.org/wiki/Khatri

[460] http://en.wikipedia.org/wiki/Jatt_Sikh

[461] A.E.Barstow- The Sikhs: An Ethnology, P.155

भारत में जट्ट सिक्खों की जनसंख्या 1 करोड़ 4 लाख तक अनुमानित है, जिसमें से लगभग 20 से 25 हजार छत्तीसगढ़ में अनुमानित हैं और उसमें से लगभग दस हजार छत्तीसगढ़ी भी बोल लेते हैं।[463]

डा. इरफान हबीब और प्रो.किसन सिंह का मानना है कि, सिक्ख धर्म अपनाने से जाटों की स्थिति में सुधार आया।[464]

जाट शब्द अरबी शब्द जट्टा से बना है।[465] यह लोग पश्चिमोत्त्तर भारत से होकर भारत में आए। यह अधिकाँशतः दसवें गुरू गोविन्द सिंह की ओर अधिक आकृष्ट हुए। इनमें रूढ़ता और कट्टरता अपेक्षाकृत अधिक आई। यह लोग अमृत संस्कार करा सिक्ख धर्म के खालसा पंथ के सिक्ख बनने को अधिक प्रवृत्त हुए, जो कि पंच ककार (केश, कच्छा. कड़ा, कंघा और कृपाण) धारण करते हैं।

एक स्थान पर तो यह तथ्य भी उल्लेखित है कि नानक के व्यापक भ्रमण के दौरान उनकी भेंट कबीर से बिलासपुर के गौरेला के समीप (अमरकण्टक) हुई, जहाँ बाद में कबीर चौरा बनाया गया।[466] इसमें सत्यता कितनी है, यह अभी शोध का विषय है।

छत्तीसगढ़ में कुछ सिक्ख स्वतंत्रता के पूर्व आए।

सक्ति रियासत में वे पहले शासक और बाद में सक्ति के अंतिम शासक वंश गोंड़ के दीवान रहे। सक्ति में अंतिम शासक गोंड़ वंश के पूर्व दीवान निर्मल सिंह के पूर्वज पुरूषों का शासन था। यह वंश पंजाब से यहाँ आया था। इस वंश को दीवान उपाधि सम्बलपुर राजा द्वारा दी गई थी।

रायगढ़ रियासत में, इन्हें माफी ग्राम भी मिले। 1833 में बरगढ़ के शासक अजीत सिंह नें अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के प्रति विद्रोह किया। देव नाथ सिंह ने उसे, अंग्रेजों के लिए पराजित किया। अतः अंग्रेजों ने उसे बरगढ़ की जमीन्दारी भी, 1833 में, दे दी। देवनाथ सिंह ने 1857 की क्रांति के समय भी अंग्रेजों की सहायता की। उसने क्रांतिकारी और विद्रोही सम्बलपुर के सुरेन्द्र साय और उदयपुर के शिवराज सिंह को साथियों सहित पकड़ कर अंग्रेजों के हवाले कर दिया। होशियारपुर, पंजाब से आकर एक सिक्ख- वीर सिंह- रियासत में बसे थे। उसके वंशजों ने बरगढ़ को हराने में सहायता की। इसीका एक वंशज शमशेर सिंह हुआ। वह नेटनागढ़ ग्राम का माफीदार और अन्य दो ग्रामों का मालगुज़ार था।[467] देवनाथ सिंह का देहांत 1862 में हुआ।

कुछ अन्य का भी उल्लेख आता है। जैसे कोरिया रियासत के राजा के ड्रायव्हर फकीरा सिंह या कोरिया में ही एक अन्य ड्रायव्हर बेचिंत सिंह।[468]

हालाँकि छत्तीसगढ़ में अधिकाँश जट्ट सिक्ख भारत विभाजन के उपराँत ही आए, वरन् यह कहा जा सकता है कि, छत्तीसगढ़ आने वाले अधिकाँश सिक्ख भी जट्ट सिक्ख ही थे।

यह सभी जाट जाति से सिक्ख हुए। अतः उनकी तरह इनका भी मुख्य व्यवसाय कृषि ही रहा है। वे योग्य प्रगतिशील कृषक सिद्ध हुए। वे अच्छे सैनिक भी सिद्ध हुए। छत्तीसगढ़ में इन्होंने परिवहन, आटो-मोबाईल रेस्टोरेंट और होटल आदि व्यवसायों को भी स्थापित किया। यह लोग मेहनती माने जाते हैं।

जट्ट सिक्खों में 120 से अधिक कुल या सरनेम प्रचलित हैं। लगभग सौ यह हैं:-

ए. औलख, अटवाल;

बी. बस्सी, ब्रार(बरार), बाजवा, बैंस, भुल्लर, भंगू, बल, बसरा, खोखर, भलाही, भाली, बिल्लान,

---

462 A.E. Barstow- The Sikhs: An Ethnology, P.155

463 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

464 Punjabheritage.org और Worldsikhnews.com

465 http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

466 http://tdil.mit.gov.in/CoilNet/IGNCA/kabir012.htm

467 धानूलाल श्रीवास्तव-अष्ट-राज्य-अम्भोज,पृ.118-119

468 काँतिकुमार जैन-बैकुण्ठपुर में बचपन,पृ.74 और 153

बैदवान, बादेशा;

सी. चीमा, चहल, चथा, चज्झ, चिनजेर;

डी. धालीवाल, देओल, ढिल्लन, दोसांजा, दिनसा, धुले;

जी. गरेवाल(ग्रेवाल), गिल, घुमान, दिनोहा, गोरया, घोत्रा,गारचा;

एच. हयेर, हीर, हेथि, हुंडाल, हंसरा, हनजारा;

जे. जोहल, जज्जा, जसपाल, जगपाल, जनझिहा, जवार;

के. कंग, खेरा, कलैर, कूनर, कहलों, खंड़ोला, खंगुरा, खरौन्द;

एम. मान, मन्दैर(मंढ़ेर), महल, मंगत, मुंडी, मनशाही, मावि, मखसोसपुरी, मरहर(मरहार);

एन. निज्जर, नगाड़ा;

ओ. ओज्जला;

पी. पुरेवाल, पद्दा, पन्नु, पवार, पन्धेर;

आर. राना, रन्धावा, राई, रत्तौल, राठौर(राथौर), रेनू(रेणू);

एस. सिद्धू, सन्धू, सहोता, शेरगिल, सरवान, साल, सोहट्टी, सामरा, शेखों, सुनपाल, सग्गू, स्वाइच, सुनेर, सूच;

टी. थांड़ी, तूर, तनवाल, तरार, तिआरा(थिआरा);

यु. उप्पल;

व्ही. विर्क;

डब्ल्यु. वराइच।

खत्रियों के मूल नृत्य भाँगड़ा को नाचने में जट्ट सिक्खों ने महारत हासिल की। वे गिद्धा नृत्य भी अच्छा करते हैं। वे इनमें आगे बढ़ कर भाग लेते हैं। बैसाखी मुख्य त्योहार के रूप में मानाते हैं। लोहड़ी, गुरू परब, गुरूओं की जयंतियों आदि को भी मनाते हैं। सभी हिन्दू त्योहार मनाते हैं। विशेषकर दीपावली। हालाँकि इसके वे नए अन्य कारण देते हैं। माँसाहारी हैं। हलाल के अस्तित्व में आने पर झटका का प्रचलन अपनाया। जिन्दगी के हर पल को जीने में विश्वास करते है।

छत्तीसगढ़ में गुरूद्वारों का निर्माण इनके आने उपराँत ही अस्तितव में आया। इससे नई वास्तु कला सामने आई।

6. राजपूतः-

राजपूत क्षत्रीय वर्ण में आते हैं। याह भी योद्धा वर्ण और जाति है। यह लोग छठवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य सशक्त हो कर उभरे और पृथक रूप से चिन्हित किए जाने लगे। राजपूत शब्द का अर्थ होता है राजा का पुत्र। राजा से राज और पुत्र से पूत शब्द बना। यह राजपूत शब्द कभी-कभी क्षत्रीय के लिए भी प्रयोग कर लिया जाता है, जो गलत है, क्योंकि क्षत्रीय वर्ण की कई जातियाँ हैं और राजपूत उसमें से एक हैं। इसके अतिरिक्त इन्हें ठाकुर, छत्री आदि भी कहा जाता है।

क्षत्रीय वर्ण का कार्य शासन करना माना गया है और राजपूत क्षत्रीय उसमें सर्वाधिक आए। राजपूतों ने भारत के कई राज्यों, क्षेत्रों, रियासतों, जमिन्दारियों, इलाकों आदि पर शासन किया। 600 के लगभग रियासतों में से लगभग 400 में इस जाति का शासन था। भारत की स्वतंत्रता के समय 121 राज्यों या रियासतों को सैल्यूट का दर्जा हासिल था और उसमें से 81 राजपूत थे।[469]

भारत में हिन्दू राजपूत 4 करोड़, सिक्ख राजपूत साढ़े सात लाख और मुस्लिम राजपूत सवा

[469] http://en.wikipedia.org/wiki/Rajput

बाईस लाख अनुमानित किए गए हैं, जिसमें से क्रमशः लगभग दो से ढ़ाई लाख हिन्दू राजपूत, हजार-पाँच सौ सिक्ख राजपूत और इतने ही मुस्लिम राजपूत छत्तीसगढ़ में हैं और उसमें से तीन चौथाई से अधिक छत्तीसगढ़ी भी बोल लेते हैं।[470]

वर्ण के रूप में क्षत्रीय वेद काल से उल्लेखित हैं। राजपुत्र शब्द महाभारत में राम और लक्ष्मण हेतु[471], बौद्ध आख्यानों में बुद्ध हेतु, भागवत में अभिमन्यु पुत्र परीक्षित हेतु[472], कौटील्य (BC 350-283) के अर्थशास्त्र, कालीदास (BC प्रथम सदी) के मालविकाअग्निमित्र, अश्वघोष (ई.80-150) के हर्षचरित्र और कादम्बरी, कल्हण (सातवीं सदी) के राजतरंगणी आदि में आया है। यह शब्द कुमार गुप्त III (533 ई.) के ताम्र अभिलेख, पृथ्वीगढ़ ताम्र अभिलेख (570), लिच्छवी अभिलेख (डी.आर.रेगमी द्वारा रिकार्ड), सिकूबाही अभिलेख आदि में भी आया है। 606 में कन्नौज राज हर्ष वर्धन राजपुत्र सिलादीत्य के नाम से सिंहाँसनारूढ़ हुआ था।

राजपुत्र शब्द से राजपूत शब्द की व्युत्पति मानी गई है। विदेशी और आक्राँता जाति समूह भी इसमें मिले। जैसे- शक, कुषाण आदि। इनके स्थानिय सम्बन्धों से बने वंश भी इसमें सम्मलित हुए।

क्षत्रीय वर्ण में योद्धा और शासक जातियाँ रहीं और क्षत्री संज्ञा इनके लिए प्रयुक्त हुई। ज्येष्ठ पुत्र उत्तराधिकार के कारण एक ही पुत्र राजा हो पाता था। शेष राजपुत्र कहलाते थे। यह शब्द राजपुत्र हुआ और धीरे-धीरे जाति में तब्दील हो गया। राजपूत अपने को क्षत्रियों से विकसित और उत्पन्न मानते हैं।

राजपूतों के तीन प्रमुख विभाजन हैं- सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी और अग्निवंशी। कहीं-कहीं दो अन्य विभाजन भी बताए जाते हैं- नामवंशी और ऋशिवंशी।

सूर्यवंश सर्वाधिक प्राचीन है। इसे सूर्य से उत्पन्न माना जाता है। इसमें आख्यान उल्लेखित और प्रसिद्ध प्रथम इच्छवाकू और तदुपरांत हरिश्चन्द्र, सागर, दिलीप, भागीरथ, रघु, दशरथ, राम आदि हुए। कालीदास कृत्त रघुवंश इसी वंश से सम्बन्धित है। सामान्यतः अब इसमें अहरा, बरगुर्जर, बच्चा, बरसाल, बधियाल, बिधावत, बसरवाल, बालूच, बिर्दी, बरवाल, बुन्देला, बिसेन, भरेह, भुट्टा, बन्दराल, बनीरोत, बिका, भदौरिया, चम्पावत, चत्तार, ढ़ढ़वाल, दतिया, गौतम, गुहरवार, घोरेवाह, घुटियाल, गहलौत, गौर, हरचन्द, जामवाल, जसरोतिया, जयिवात, जसवाला, जोधा, जगमनपुर (कनेर), करनौत, कोहल, काम्पावत, कछवाहा, कलेयानोत, कगौरत, खोखरा, खण्डौल, लवतमिया, लखनेसर, लोहना, मेदातिया, मेहथान, मिनहास, मौर्य, मदाध, नरूका, नथावत, पुंडीर, राठौर, राघव, राजावत, रायजादा, रवातोत, रानावत, रूरू, शक्तावत, शेखावत, श्रीनेत्र, शिवबह्मपोता, सम्याल, सेंगर, सिकरवार, सिसौदिया, सिंघव, सुखार, तपारिया आदि हैं। खत्री भी सूर्यवंश से हैं।

चन्द्रवंशी चन्द्रमा से उत्पन्न माने गए। यह भी प्राचीन वंश है, पर सूर्यवंश के बाद का। सोम इसका प्रथम शासक माना गया तदुपरांत पुरूरवा, नहुष, ययाति, दुष्यंत, भरत या भारत, कुरू,, शांतनु, युधिष्ठिर आदि। आख्यान उल्लेखित यदुवंश भी इसी चन्द्रवंशी विभाजन में है। ययाति ज्येष्ठ पुत्र यदु से यदुवंश बना, जिसमें कृष्ण हुए। हरिवंश पुस्तक में इस वंश का विवरण है। सामान्यतः अब इसमें यदुवंशी, यादव (अहीर यादव नहीं), चिब, धाँगर, सोमवंशी, हरिओवंश, मंगराल, जुनजुआ, जराल, किनवार, जादौन, खानजादा, भट्टी, जड़ेजा, चौदसमां, चन्देल, कलयाल, पथनी, मंज, चावड़ा, दाहिया, जोहिया, कश्यप, कटोच, कुतलहरिया, मनकोटिया, अन्दोत्रा, झाला, बनाफर, पथनिया, रावत, सोलोन, सैनी, तोमर, नागवंशी, टाक, खानपुरिया आदि हैं। कहीं-कहीं बुन्देला भी इसमें उल्लेखित है।

अग्निवंश में वह जातियाँ या समूह हैं, जो बाद में क्षत्रीय वर्ण में सम्मलित किए गए और राजपूत बनाए गए। राजपूत शब्द के प्रति यह लोग ही सर्वाधिक आग्रही हुए। मध्य काल में इन्हीं के उभार और

---

[470]http://www.joshuaproject.net/people-profile.php

[471] बालमीकि-महाभारत (रामोप्ख्यान),3.266.61

[472] श्री मद्भागवत,1.12.311

स्थापना से इस वंश को बल मिला। भविष्य पुराण में उल्लेखित किया गया कि, अशोक के उपराँत माउंट आबू पर हुए यज्ञ में चार पुरूष अग्नि से उत्पन्न हुए- परमार, चफानी (चौहान), चु (चालुक्य/सोलंकी), परिहारक़ (प्रतिहार)। अग्निवंश पुस्तक में इन्हें उस पुरूष से उत्पन्न बताया गया, जो कि वशिष्ठ के यज्ञ से परशुराम के क्षत्रीय संहारोपरांत उत्पन्न हुआ। इतिहासकार यह मानते हैं कि, यह चार नवीन जाति समूह इण्ड़ो-ग्रीक आक्रमणों में, युद्ध करने हेतु, योद्धा वर्ग में जोड़े गए। कुछ का यह मानना है कि, वे गैर क्षत्रीय स्थानिय और विदेशी समूह जो धीरे-धीरे शासक बने और जिनका विकास यहाँ स्थानिय सम्बन्ध बनने से हुआ, इसमें सम्मलित होते गए। इस भारतीय सन्दर्भ को समझने के लिए कुछ महत्वपूर्ण एतिहासिक तथ्यों का उल्लेख आवश्यक हो जाता है। यह रूचिकर भी हैं। मध्य एशिया की हूण जनजाति या नस्ल बर्बर रही है। जब यह लोग प्रभावी थे और विस्तार में रूचि ले रहे थे, तब भारत में गुप्त लोगों का और युरोप में रोम राज्य का प्रभाव था। पाँचवी शताब्दी मे यह लोग दोनों स्थानों में घुसे। वे भारत से स्कन्द गुप्त द्वारा खदेड़े गए, परंतु पुनः आए और मालवा में सत्ता स्थापित करने में सफल रहे। तोरमल और मिहिरकुल हूण शासक थे। (जयचन्द्र) तोरमान के पुत्र मिहिरकुल की राजधानी शाकल (स्यालकोट) थी और वह अपने को पशुपति (शिव) उपासक कहता था। इनकी क्रूरता ह्युएन-सांग और कल्हण द्वारा भी वर्णित हुई है। इनके शासन को मन्दसर शासक यशोवर्मन ने तोड़ा। इनका शासन भले ही खण्ड़ित हुआ, पर हूण भारत में ही रहे और छोटे-छोटे राज्य या रियासतें बना कर उपद्रव और आक्रमण करते रहे। अंततः यह तब रूका जब ब्राह्मणों ने इन्हें भी शुद्ध कर राजपूत बना लिया।[473] बौद्ध-ब्राह्मण संघर्ष में राज आश्रय का भी महत्व था। जब क्षत्रीय राजा बौद्ध हो जाता तो ब्राह्मणों को क्षुब्धता होती। क्षत्रियों को बाहर जाते देख ब्राह्मणों ने नया उपाय किया। जो विदेशी हूण, शक, कुषाण आदि यहाँ सत्ता प्राप्ति का संघर्ष कर रहे थे, उन्हें आबू पहाड़ (माउण्ट आबू) के कुण्ड़ में यज्ञ कर राजपूत बना लिया। वे ब्राह्मणों के कृत्ज्ञ हो गए। ब्राह्मण-क्षत्रीय संघर्ष में ब्राह्मNa भारी हो गए। उन्हें नए शिष्य और यजमान मिल गए।[474] डा.भगवतशरण उपाध्याय का मत है कि, वर्तमान कई राजपूत हूण, गुर्जर आदि से प्रदुर्भूत हुए। गुरजरों से तो विशिष्ट शाक वंश गुर्जर-प्रतिहार की नींव पड़ी। इन्हीं से गुजरात प्रदेश का नाम रखा गया। जाट जैसी कई अन्य जातियाँ भी बाहर से आने वाले लोगों से बनीं। अब सामान्यतः इसमें, बिष्ट, निर्वान, चौहान, खुरमी, मेहमी, परमार, खैर, सिरोही, हाड़ा, सोलंकी, सोनगरा, रघुवंशी, बघेल, बलनौत, महलगोता, नथावत, खेराड़ा, वीरपुरा, धोजावत, जेड़िया, प्रतिहार आदि हैं। कहीं-कहीं भदौरिया भी इसमें उल्लेखित हैं।

ऋषिवंश में **ढ़कार** कुल का उल्लेख आता है। पाताल राज बालि के देव राज इन्द्र से घायल होने पर रक्त ढ़ाख (ढ़ाक या पलाश) के पत्ते पार एकत्र किया गया। इसे गुरू शुक्राचार्य ने पुरूष में बदल दिया।

प्रथम तीन प्रमुख विभाजन में 36 कुल हैं, जो इन तीन में बँटे हैं। इन 36 कुलों का उल्लेख जयसिम्हा की कुमारपाल चरित्र और चद्रबरदाई की पृथ्वीराज रासों में है। कार्नल टाड़ ने भी इनका उल्लेख किया है। इन छत्तीस कुलों के भी आगे और विभाजन और शाखाएँ हैं।

राजपूत सिक्ख, बौद्ध और मुस्लिम भी हैं।

छत्तीसगढ़ में राजपूत जाति के लोग सभी जिलों में हैं। इस राज्य में एक असाधारण तथ्य यह है कि, यहाँ डहरिया लोग राजपूत जाति से अन्य जाति में गए। छत्तीसगढ़ में सामान्य राजपूत चिन्हाँकान यह है- बागरी, बैस, बक्सरिया, बनाफर, बुन्देला, चन्देल, धारकर, गहरवार (गहरवाल), गौर, हैहय (हैहयवंशी, कल्चुरी), हूण, कछवाहा (कुछवाहा), नागवंशी (टाक, भोठी), निकुभ, पाईक, परिहार, राठौर, चावड़ा, इच्छवाकू, इन्दू (सोमवंशी), रघु (गहलोत, सिसोदिया), यदु (भट्टी, जरेजा, जादौन, बनाफर), तोमर, चौहान (भदौरिया, हारा, किची, निकुम्भ), चालुक्य (सोलंकी, बघेल) आदि हैं।

[473] रामधारी सिंह दिनकर-संस्कृति के चार अध्याय,पृ.231

[474] रामधारी सिंह दिनकर-संस्कृति के चार अध्याय,पृ.235

7. सिन्धीः-

सिन्धी लोग छत्तीसगढ़ के सभी जिलों में निवासरत हैं। यह वह लोग हैं, जो भारत विभाजन के उपराँत सिन्ध प्राँत (अब पाकिस्तान में) से भारत आए और जिनकी मातृभाषा सिन्धी है।

सिन्धी लोग नगरों में रहते हैं और नगरीय संस्कृति के पोषक हैं। नई चीजों को शीघ्र स्वीकारते हैं। परम्पराओं को गतिरोधक नहीं बनने देते। रूढ़ियों पर कट्टरता नहीं है। सहनशील और मेहनती होते हैं।[475]

सिन्ध या सिंधू नाम सिन्धू (इंडस) नदी के नाम से बना। सिन्ध प्राँत सिन्धू नदी का उपजाऊ क्षेत्र है। यह भारतीय उपमहाद्वीप के प्रवेश के दो मुख्य मार्गों मे बीच में स्थित है। सीथियन, परथियन, कुषाण, हूण, ईरानी, ग्रीक (युनानी) सहित सभी प्राचीन और मध्यकालीन आक्राँता इन्ही रास्तों से भारत आए। सिन्धू (इंडस)-सिन्ध से ही इण्ड़िया मूल नाम सामने आया। यह नाम इतना एतिहासिक और प्राचीन है कि, इसी से हिन्द महासागर, ईस्ट और वेस्ट इंड़ीज, इंड़ोनेशिया, रेड इण्ड़ियन, इंण्ड़ियन, हिन्दू, इण्ड़िया आदि शब्द सामने आए। यहीं विश्व की प्राचीनतम सभ्यता- सिन्धू घाटी सभ्यता- पनपी।[476]

आर्यों के आगमन के उपराँत द्रविण पूर्व और दक्षिण की ओर गए। आर्य प्राकृत, वेद, इन्द्र, विष्णू पूजा ने द्रविड़ शिव और लिंग पूजा को प्रतिस्थापित किया और सभी ग्रंथ इस को स्थापित करने के लिए ही लिखे गए। सिकन्दर (एलेक्ज़ेण्ड़र) सहित सभी आक्राँता यहाँ की समृद्धि को लूटने के उदेश्य से आए।

छत्तीसगढ़ में सिन्धी लोग भारत विभाजन के उपराँत उक्त सिन्ध प्राँत से आए। विभाजन के समय सिन्ध में लगभग 2 करोड़ हिन्दू थे। इसमें लगभग 14-15 लाख सिन्धी हिन्दू माने गए हैं और इसमें से आधे से अधिक विभाजन उपराँत के भारत आ गए। 1951 की जनगणना के अनुसार विभाजन उपराँत भारत आने वाले हिन्दू सिन्धियों संख्या 776,000 थी। हालाँकि पंजाबी हिन्दू और सिक्खों की तरह इन्हें व्यापक दंगों, नरसन्हार, लूट आदि का सामना नहीं करना पड़ा। अब ताजा जनगणना आँकड़ों में अब पाकिस्तान में (1998) लगभग 23 लाख और भारत में (2001) लगभग 26 लाख सिन्धी हिन्दू थे।[477]

सिन्धी लोग लोहानों मूल के माने गए हैं। एक सिन्द्धांत यह है कि, इनकी व्युत्पति आर्य-द्रविड़ मिश्रण की संस्कृति से हुई, तो दूसरा यह कि, यह लोग सिन्धु घाटी में पंजाब और कच्छ से प्रव्रजन कर आए।

बाद में इनकी कई शाखाएँ हुईं, जिसमें मुख्य थीं- प्रथम- आमिल। यह उच्च जाति बनी। इसमें अधिकाँशतः शासकीय अधिकारी और कर्मचारी हुए। यह अधिकार सम्पन्न लोग थे। यह लोग पूर्व में मुस्लिमों हेतु भी कार्य कर चुके थे। इस कारण से इन्हें भूमियाँ भी मिलीं और यह लोग ही जमीन्दार और ज़ागीरदार हुए। उपनिवेशकाल में सिविल सर्विस में आ गए। आमिल वर्ग में ही सिन्धी सारस्वत ब्राहमण भी रहे। इनके कुछ कुलनाम (सरनेम) हैं- आड़वाणी, माधवानी, चन्द्राणी आदि। हालाMकि इस समुदाय में उनके ब्राह्मण होने का महत्व नगण्य प्राय रहा है और अब तो लोग इस तथ्य को भूल प्राय गए हैं। द्वितीय- सिन्दुवर्कि। यह व्यापारी और ट्रेडर हुए। इन्होंने सम्पूर्ण विश्व में व्यापार हेतु ठीहे स्थापित किए। इनमें कई धनाढ़्य हुए। इनकी महिलाएँ लोकगीतों, रंगीन वस्त्रालंकरण और आकर्षक वेषभूषा के लिए जानी गईं। तृतीय- शिकापुरिए। यह बैंकर हुए और व्यापार को मध्य-पूर्व तक ले गए। चतुर्थ- वन्या। यह दुकानदार हुए।[478]

---

[475] Aileen Wortley-the Sindi Hindu population:Foregign influences on their cultur (http://home.pacific.net.sg/~malchdoom/sindesay.html)

[476] P.Jethmal gulrajani-Sind and its Sufis

[477] http://en.wikipedia.org/wiki/Sindhi

[478] H.T.Sorley-Gazetteer of west Pakistan और H.T.Lambick-SindH:A General information

सिन्धी लोगों को उपमहाद्वीप के हिन्दू समुदाय में कुछ विशिष्ट तथ्यों ने भी रेखाँकित किया है। एक- भारतीय हिन्दू व्यवस्था में सभी क्षेत्रों में कोई न कोई जाति अछूत इंगित रही है, परंतु सिन्धियों का कोई भी जातीय विभाजन इस श्रेणी में नही रहा। दो- भारतीय हिन्दूओं में मात्र सिन्धी ही ऐसा वर्ग रहा जिसमें जाति प्रथा का प्रभाव नहीं पड़ा और सम्भवतः भारत के सभी स्थानों में यह इनकी सहज स्थापना का सबसे बड़ा कारण माना जा सकता है। तीन- हिन्दुओं में सिन्धी लोगों ने ही ब्राह्मण और ब्राह्मणवाद को दरकिनार करने में सफलता पाई। अब तो यह तथ्य भी विस्मृत कर दिया गया है कि सिन्धी आमिल वर्ग में ब्राह्मण जाति भी है। इसके यह एतिहासिक कारण उल्लेखित होते हैं कि, सिकन्दर (एलैक्ज़ेण्डर) के सिन्ध आक्रमण के समय सिन्धी ब्राह्मणों ने सिन्ध शासक को सिकन्दर का स्वगत नहीं करने की सलाह दी और उसकी सजा बतौर ग्रीक (युनानी) सेना ने सिन्ध में ब्राह्मणों को लगभग नेस्तनाबूँद कर दिया। पर इनके सामाजिक प्रभाव को गायब कर देने वाला कारण बाद में आया। सोलहवीं शताब्दी में मोहम्मद-बिन-कासिम ने सिन्ध शासक दाहिर को ब्राह्मणों की सहायता से ही हराय। वे उससे मिल गए, परंतु जब सत्ता उसके पास आई तो उसने दाहिर को धोखा देने के प्रत्यक्ष उदाहरण के कारण ब्राह्मणों को अविश्वासी और विश्वासघाती जान और मान कर लगभग नेस्तनाबूँद करा दिया। यह द्वितीय तथ्य सत्यता के अधिक करीब इस लिए लगता है कि, सिकन्दर के उपराँत भी ब्राह्मण सिन्ध में शक्तिशाली थे, परंतु कासिम के उपराँत तो उनका प्रभाव ही जाता रहा। अपने कुख्यात और शर्मसार एतिहासिक अतीत के कारण शेष बचे ब्राह्मण एक तो सिमट कर अपने खोल में घुस गए, दूसरे सिन्धियों ने भी उनका बहिष्कार कर दिया और हिन्दू धार्मिक कार्यों हेतु पड़ोसी राज्यों यथा पंजाब आदि से ब्राह्मण बुलाए जाने लगे। स्थानिय ब्राह्मन पिछ्ड़े और बहिष्कृत मान लिए गए। यह हिन्दू व्यवस्था में क्राँतिकारी और अश्चर्यजनक तत्व था। चार- हिन्दुओं में सिन्धी लोगों में ही ब्राहमणवादी कर्मकान्ड, अन्धविश्वास, रूढ़ियाँ, परम्परा आदि के बन्धन नहीं आ पाए। इसका कारण ब्राह्मण और ब्राह्मणवादी व्यवस्था से शीघ्र छुटकारा पा लेना था, जिसका उल्लेख ऊपर आया है। इस जंजाल से छुटकारा पाने का कितना लाभ हुआ इस हेतु कुछ सामाजिक उदाहरण पर्याप्त होंगें। जैसे- इनमें विधवा विवाह कभी भी आपत्तीजनक नहीं रहा, बाल विवाह कभी भी अस्तित्व में नहीं आ पाया, छुआछूत की भावना ही नहीं पनपी, विकास आदि में रूढ़ियों की बाधाएँ दूर हो गईं आदि।

ब्राह्मण और ब्राह्मणवादी व्यवस्था से छुटकारा पा लेने का अगला परिणाम अन्य आस्थाओं की तरफ स्वभाविक रूझान के रूप में सामने आया। अब सिन्धी लोग सिक्ख और सूफी मत की ओर आकृष्ट हुए। यहाँ भी सिन्धी सिक्ख लोग नानक के मूल सिक्ख धर्म में ही रहे। वे उस उसके कथित कट्टर स्वरूप और खालसा पंथ के रूप में सामने आए बाद के सिक्ख धर्म के स्वरूप से ज़रा भी प्रभावित नहीं हुए। यह भी उनके सुलझे व्यक्तित्व को दर्शाता है। पहले तो ब्राह्मण तत्व को दरकिनार किया, फिर सिक्ख धर्म के भी अपेक्षाकृत कथित रूढ़, कर्मकाण्डी और कट्टरपन को स्थापित कर बढ़ावा देने वाले स्वरूप को भी गले नहीं लगाया। यह लोग नानक द्वारा प्रवर्तित सिक्ख धर्म की मूल स्वरूप को ही मानते रहे। इस कारन से गोविन्द सिंह द्वारा स्थापित रूढ़ियों और परम्पराओं जैसे पंचककारों की धारणा, खालसा मत, विभिन्न धार्मिक क्रियाएँ आदि नहीं अपनाईं। सिन्धी सिक्ख होते हुए भी पगड़ी, दाढ़ी आदि के रूढ़ प्रतीकों से दूर ही रहे। सिन्ध में यह लोग बुद्ध से भी प्रभावित रहे। इसका स्पष्ट कारण उनका क्षत्रीय होना और ब्राह्मणवादी व्यवस्था व कर्मकांड़ो का विरोध है। इसी नींव पर नानकवादी सिक्ख धर्म को भी आधार उपलब्ध हुआ। सूफी शब्द भी साफ़ से बना है और उसका अर्थ साफ से है तथा यहाँ साफ का आशय पवित्र से लिया जाता है।

सिन्धियों के अधिकाँश कुलनाम (सरनेम), पंजाबी अरोड़ाओं की तरह, जा और आनी शब्दांत पर हैं (जैसे- पंजवानी, दिंगरेजा) और कुछ समान भी हैं (जैसे- ठक्कर, अहूजा)। दोनों लगभग समान क्षेत्र से हैं। अतः यह मिलते-जुलते सरनेम का कारण हो सकता है।

संस्कृति का सीधा सम्बन्ध भाषा से है। संस्कृति के बिना भाषा नहीं और भाषा के बिना संस्कृति नहीं। सिन्धी भाषा भी इण्डो-आर्य समूह की ही है, जिसमें ऊर्दू और अरबी के भी पर्याप्त शब्द आ गए हैं।

छत्तीसगढ़ में सिन्धी हिन्दू धर्म का पालन करने के साथ नानक के मूल सिक्ख धर्म का भी पालन

करते हैं और उनके अनुयायी हैं। सभी बड़े हिन्दू त्योहारों और झूलेलाल तथा नानक जयंती को मनाते हैं। इन्होंने भी गुरूद्वारे का निर्माण कार स्थापत्य कला को बढ़ावा दिया है। हिन्दू रीति रिवाजों का पालन करते हैं। जनेऊ संस्कार करते हैं। गाय को पवित्र मानते हैं। माँसाहार से दूरी नहीं बनाते हैं।

छत्तीसगढ़ में सिन्धियों ने व्यापार, दुकानदारी आदि में आशातीत सफलता पाई है।

8. तिब्बतीः-

छत्तीसगढ़ में तिब्बती लोग वह हैं जो चीन द्वारा तिब्बत पर कब्जा कर लेने के उपराँत भारत में शरणार्थियों के रूप में आए और चीन से तिब्बत की स्वतंत्रता नहीं प्राप्त होने के कारण यहीं बस गए। भारत में इनकी संख्या लगभग ड़ेढ़ लाख है।[479] तिब्बत शब्द तूबों से बना है, जो अरबी और युरोपीय भाषाओं में तिब्बत उच्चारित हुआ। इन्हें प्राचीन बउति लोगों से सम्बद्ध किया जाता है।

यह लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं और दलाई लामा को अपना धार्मिक गुरू मानते हैं। वह 1959 से भारत में रह रहे हैं।

तिब्बती बौद्ध धर्म बौद्ध महायान और वज्रयान पंथों का विशिष्ट मिश्रण है, जो उत्तरभारत के संस्कृत बौद्ध परम्परा से वहाँ गया। यहाँ इसके चार समूह बने- गेलुग(पा), काग्येउ(पा), न्यिंग्मा(पा) और शाक्य(पा)।

यह लोग तिब्बती भाषा का प्रयोग करते हैं, जो जो साइनो-तिब्बतन समूह की तिब्बतो-बर्मन भाषा है। यह भाषा चीनी अधिक है। इनकी अपनी लद्दाखी और दोजांखा लिपीयाँ है, जो प्राचीन भारतीय ब्राह्मी लिपि से व्युत्पन्न हुई है। ब्राह्मी लिपी भारत की प्राचीन लिपी थी। तिब्बती बौद्ध साहित्य संस्कृत में भी लिखा गया। अब हिन्दी भी बोलने लगे हैं। यह लोग तिब्बत को बोड (Bod) कहते हैं, जिसे मूलतः यु-साँग (U-Tsang) कहा जाता रहा है। बोड का उच्चारण पोइंग (Poing) होता है।

यहाँ यह लोग सामान्यतः व्यापार में लगे और विशेषकर गरम कपड़ों का व्यापार करने लगे।

यह लोग बुद्ध से सम्बन्धित त्योहार मनाते हैं। लोसार इनके नया वर्ष का पर्व है।

--==**==--

-

-ड़ा संजय अलंग
75, एश्वर्य रेसीडेंसी
तेलीबाँधा, P.O.-रविग्राम
रायपुर, छत्तीसगढ़, 492006

sanjay.alung@nic.in +91 9425307888

परिचय-:

· नाम – संजय अलंग

· पिता- स्व. श्री अशोक कुमार अलंग , माता- स्व. श्रीमती लज्या अलंग

पत्नी - श्रीमती सुमिता अलंग , पुत्र द्वय – सर्वज्ञ और सौहार्द अलंग

[479] http://hindi.webdunia.com/news/news/national/1008/04/1100804107_1.htm

· जन्म – भिलाई, जुलाई'8, 1964

· शिक्षा – बैकुण्ठपुर, अम्बिकापुर, दिल्ली

· सेवा – भारतीय प्रशासनिक

· पदस्थापना – भोपाल, रीवा, रतलाम, सिवनी, ग्वालियर, कोरबा, रायगढ़, रायपुर आदि जिले

· लेखन – कई पत्र-पत्रिकाओं में शोध आलेख, कविताएँ, लेख, समीक्षाएँ आदि-आदि प्रकाशित। यथा – वसुधा, बया, पब्लिक एजेण्ड़ा, पाँड़ुलिपि आदिआदि। साथ ही 'कविता छत्तीसगढ़' और 'हिन्दी सिनेमा/वसुधा' में सम्मलित लेखन। 'छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ और जातियाँ' तथा 'छत्तीसगढ़ की रियासतें और जमीन्दारियाँ' प्रकाशित। इनका और विस्तृत स्वरूप आन-लाईन पर भी उपलब्ध। पृथ्क से 'छत्तीसगढ़ के पंजाबी' पुस्तिका प्रकाशित और आन लाईन http://www.scribd.com/doc/52473329/%E0%A4%9B%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A5%80%E0%A4%B8%E0%A4%97%E0%A5%9D-%E0%A4%95%E0%A5%87-%E0%A4%AA%E0%A4%82%E0%A4%9C%E0%A4%BE%E0%A4%AC%E0%A5%80-On-line पर उपलब्ध। कुछ पुस्तकें यथा - 'छत्तीसगढ़ का हस्तशिल्प' 'छत्तीसगढ़ का इतिहास और संस्कृति', 'छत्तीसगढ़ के लोक विश्वास' आदि प्रकाशनाधीन। कुछ पुस्तकें यथा -'बाल कविताएँ', 'कविताएँ', आदि पाँड़ुलिपि सम्पादन में।

· सम्मान -राष्ट्रीय पंजाबी महासभा का विषय-विशेषज्ञ सम्मान।

· यात्रा – भारत के कई प्राँतों की, जिसमें सूदूर अण्ड़मान सम्मलित, कुछ विदेश यात्राएँ भी, जिसमें दक्षिण एशिया, पूर्व एशिया, पश्चिम एशिया अर्थात मध्यपूर्व, अफ्रीका आदि के कुछ देश सम्मलित।

· प्रशिक्षण – आपदा प्रबन्धन, प्रशासन, प्रबन्धन, ईगवर्नेंस आदि

· सम्पर्क -75 एश्वर्य रेसीड़ेंसी, तेलीबाँधा, ड़ाकघर – रविग्राम, रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत, पिनकोड़ – 492006.

+ 91 9425307888, sanjay.alung@nic.in

नाम - संजय अलंग

पिता - स्व. श्री अशोक कुमार अलंग, माता-स्व. श्रीमती लज्या अलंग

पत्नि - श्रीमती सुमिता अलंग, पुत्र द्वय-सर्वज्ञ और सौहार्द अलंग।

जन्म - भिलाई, 8 जुलाई '1964

शिक्षा - बैकुंठपुर, अम्बिकापुर, दिल्ली।

सेवा - राज्य प्रशासनिक।

पदस्थापना - भोपाल, रीवा, रतलाम, सिवनी, ग्वालियर, कोरबा, रायगढ़, रायपुर आदि जिले।

लेखन - कई पत्र पत्रिकाओं और पुस्तको में लेख, शोध, आलेख, कविताएँ आदि प्रकाशित। यथा- वसुधा, बया, पब्लिक एजेण्डा, पाँडुलिपि आदि-आदि। पुस्तक कविता छत्तीसगढ़ और हिन्दी सिनेमा (वसुधा) में सम्मिलित लेखक। 'छत्तीसगढ़ के पंजाबी' पुस्तिका प्रकाशित। कुछ पुस्तकें यथा- 'छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ और जातियाँ', 'छत्तीसगढ़ का हस्तशिल्प' आदि प्रकाशनाधीन। कुछ पुस्तकें यथा- 'बाल कविताएँ', 'कविताएँ', 'छत्तीसगढ़ का इतिहास और संस्कृति', 'छत्तीसगढ़ के लोक विश्वास' आदि पाँडुलिपि सम्पादन में।

सम्मान - राष्ट्रीय पंजाबी महासभा का विषय विशेषज्ञ सम्मान।

यात्रा - भारत के कई प्राँतों की जिसमें सूदूर अंडमान-निकोबार द्वीप समूह सम्मिलित, दक्षिण एशिया, पूर्व एशिया, पश्चिम एशिया (मध्य-पूर्व), अफ्रीका के कुछ देशों की यात्रा।

प्रशिक्षण - आपदा प्रबन्ध, प्रशासन, ई-गवर्नेंस आदि के प्रशिक्षण प्राप्त।

सम्पर्क - 75, एश्वर्य रेसीडेंसी, तेलीबाँधा, डाकघर-रविग्राम, रायपुर, छत्तीसगढ़,

मोबाइल. - 9425307888, Email- sanjay.alung@nic.in

मानसी पब्लिकेशन्स
1569 प्रथम तल, चर्च रोड,
कश्मीरी गेट, दिल्ली-6
मो० 09810303048

भाकेछगप्राकीजाअजजा 12.11.10 मफि सअ
/////र.2/10/11,न.रा./गाँ.ज.///